CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri.

श्रीविश्वनाथकविराजप्रणीतं

पथ्यापथ्यविनिर्णयः

'पथ्या' हिन्दी व्याख्या समन्वितः

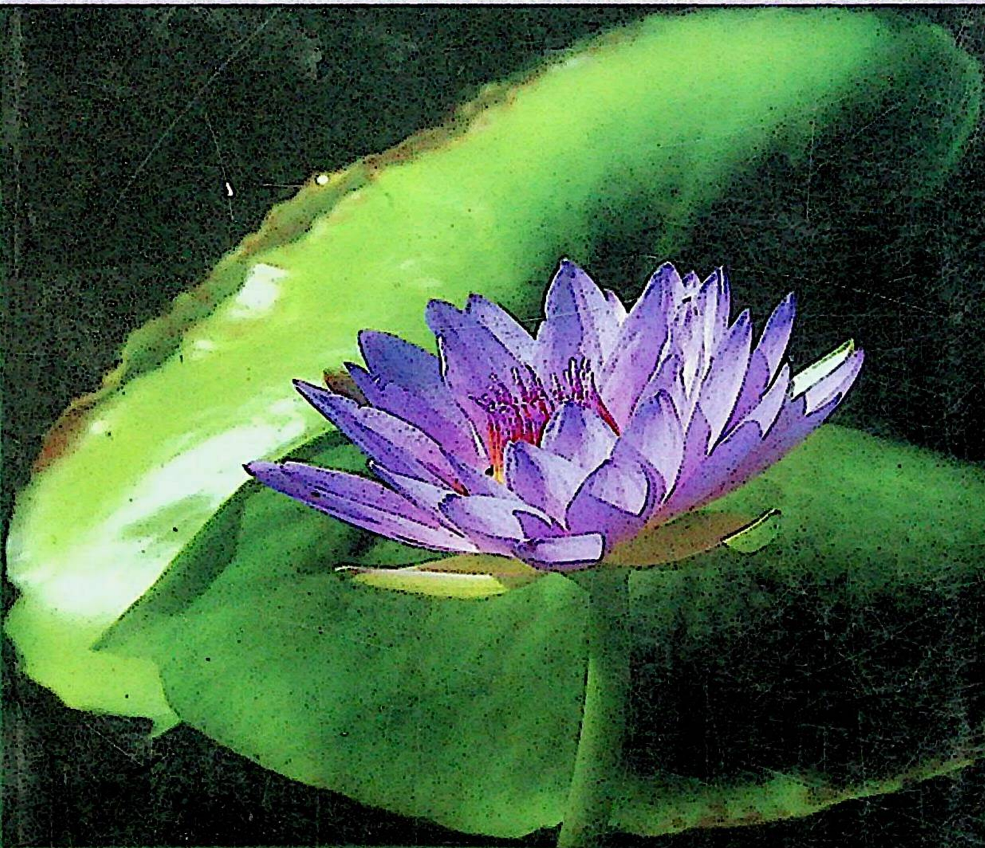

डॉ॰ ब्रह्मानन्द त्रिपाठी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

॥ श्रीः ॥

व्रजजीवन आयुर्विज्ञान ग्रन्थमाला

26

श्रीविश्वनाथकविराजप्रणीतं

पथ्यापथ्यविनिर्णयः

'पथ्या' हिन्दी व्याख्या समन्वितः

व्याख्याकार

डॉ॰ ब्रह्मानन्द त्रिपाठी

साहित्य-आयुर्वेद-ज्यौतिष-आचार्य

एम॰ ए॰, पी-एच॰ डी, डी॰ एस-सी॰ ए॰

चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान

दिल्ली

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पथ्यापथ्यविनिर्णयः

प्रकाशक
चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान
(भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रकाशक तथा वितरक)
38 यू. ए. जवाहर नगर, बंगलो रोड़
पो. बा. नं. 2113, दिल्ली - 110007
दूरभाष : (011) 23856391, 41530902

सर्वाधिकार सुरक्षित
पुनर्मुद्रित संस्करण 2015
पृष्ठ : 2+4+6+136
मूल्य : ₹ 175.00

अन्य प्राप्तिस्थान :
चौखम्बा विद्याभवन
चौक (बैंक ऑफ बड़ौदा भवन के पीछे)
पो. बा. नं. 1069
वाराणसी - 221001

❁

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन
के. 37/117 गोपाल मन्दिर लेन
पो. बा. नं. 1129
वाराणसी - 221001

❁

चौखम्बा पब्लिशिंग हाउस
4697/2, भू-तल (ग्राउण्ड फ्लोर)
गली नं. 21-ए, अंसारी रोड़
दरियागंज, नई दिल्ली - 110002

ISBN : 978-81-7084-625-7

मुद्रक :
ए. के. लिथोग्राफर्स, दिल्ली

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भूमिका

आयुर्वेदशास्त्र का प्रथम उद्देश्य है स्वस्थ पुरुष के स्वास्थ्य की रक्षा करना, यदि वह अस्वस्थ हो जाय तो उसकी चिकित्सा करके उसे स्वस्थ बनाना। प्राचीन आचार्यों ने इस चिकित्सा विधि को तीन भागों में विभक्त कर दिया—१.युक्तिव्यपाश्रय २.दैवव्यपाश्रय तथा, ३.सत्वावजय (मानसिक रोगों पर विजय प्राप्त करने का उपाय), इन सभी विधियों में पथ्यापथ्य का स्थान सर्वोपरि है, इसके पश्चात् पुनः चिकित्सा को इस प्रकार चार भागों में बाटा गया—१.भिषक्, २.द्रव्य, ३.उपस्थाता (परिचारक), ४. रोगी। इन चारों को भी अपने अपने गुणों से सम्पन्न होना परम आवश्यक है। तभी चिकित्सा में सुनिश्चितता होती है। इनमें भी भिषक् का दायित्व विशेष होता है। अतएव भिषक् (चिकित्सक) को शास्त्रज्ञ तथा चिकित्सा कर्म में कुशल होना आवश्यक है, क्योंकि भिषक् द्वारा परीक्षित औषध द्रव्य ही पथ्य होते हैं, उपस्थाता हितकर होता है, रोगी भी अपने हितकर उपदेशों के प्रति आदरभाव रखता है और उनके निर्देशों का श्रद्धापूर्वक पालन करता है, यही पथ्य परम्परा उसे जीवनदान देती है। इसी लिये सुश्रुत ने कहा है—'उभयज्ञो हि भिषग् राजार्हो भवति', उक्त चिकित्सा की चतुष्पात् सम्पत्ति चिकित्सा क्षेत्र में पथ्य कही जाती है। इसके विपरीत गुणवाले भिषक् आदि सभी अपथ्य हैं, अहितकर हैं और अस्वास्थ्यप्रद हैं, अतएव त्याज्य हैं, पाठकों को चाहिये कि वे इस अवसर पर चरक विमानस्थान अध्याय १ का पथ्यापथ्य की दृष्टि से पर्यालोचन करें तो उन्हें आहार सम्बन्धी अनेकं प्रकार के महत्वपूर्ण समाधान मिलेगें।

पथ्य का व्यापक क्षेत्र है— आहार-विहार, दिनचर्या, रात्रिचर्या, ऋतु-सन्धिचर्या, इनमें भी बालचर्या एवं वृद्धचर्या में कतिपय सुकुमारभावों का सन्निवेश होता है, प्रायः ऐसी ही चर्या गर्भिणी तथा प्रसूता की भी होती है, जिसका विवेचन यथावसर कुशल चिकित्सक के विवेक पर आधारित होता है, साथ ही चरकोक्त पथ्यापथ्य के लक्षणों के लिये देखें—च. सू. २५/४५-४९, चरक ने जो 'सर्वरसाभ्यासः', पथ्यानाम् च. सू. २५/४० में लिखा है, वह आदेश केवल पूर्णस्वस्थ पुरुषों के लिये है, न कि रोगियों के लिये।

प्रस्तुत 'पथ्यापथ्य विनिर्णय' संग्रह ग्रन्थ है । इसके संग्रहकर्ता महामहोपाध्याय विश्वनाथ कविराज है। इसमें अनेक पूर्ववर्ती ग्रन्थों से उद्धरण कुछ कुछ परिवर्तन के साथ लिये गये हैं। इसमें पथ्यों का वर्णन करते समय बीच-बीच में चिकित्सा के भी निर्देश मिलते हैं। यद्यपि पथ्य के लाक्षणिक अनेक अर्थ सम्भव है, किन्तु हमें प्रकरणोचित अर्थ ही अपेक्षित है, सम्प्रति उपलब्ध भैषज्यरत्नावली श्रीगोविन्ददास द्वारा संगृहीत है। पथ्य-अपथ्य सम्बन्धी पद्य जहाँ से लिये गये है, उस ग्रन्थ का नाम प. वि. है, आयुर्वेद के इतिहास में इस नाम के तीन ग्रन्थों का नाम आचार्य प्रियव्रत शर्मा जी के 'आयुर्वेद का वैज्ञानिक इतिहास' ग्रन्थ में मिलते हैं— १. पथ्यापथ्यविनिश्चय २. पथ्यापथ्यविवोधक, तथा 'पथ्यापथ्यविनिर्णय' जिसके अधिकांश पाठ भैषज्यरत्नावली के पाठों से मिल रहे हैं। इस ग्रन्थ का उल्लेख उक्त इतिहास में नहीं मिलता, सम्पूर्ण साहित्य का एक स्थान

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पर मिल पाना दुष्कर कार्य होता है, इसमें अनेक श्लोक छन्द की दृष्टि से अपूर्ण किन्तु अर्थ की दृष्टि से सर्वत्र पूर्ण हैं, अनेक स्थानों में एक एक पंक्ति में भी श्लोकांक दिये हैं।

ग्रन्थ का स्वरूप– रोगों के क्रम को ध्यान में रखकर इसकी रचना माधवनिदान के आधार पर की गयी है, ऐसा कहा जा सकता है, किन्तु माधवकरने जो रोगों के भेदोपभेदों का वर्णन किया है, तदनुसार इसकी परिसमाप्ति नहीं हो पायी है। इस ग्रन्थ के अन्त में दो परिशिष्ट मिलते हैं, इनमें पहला परिशिष्ट संग्रहकर्ता का प्रतीत होता है, क्योंकि उसके अन्त में इन्होंने अपना परिचय इस प्रकार दिया है–'मैं यशस्वी, विद्वानों में श्रेष्ठ श्री उमापति सेन का प्रपौत्र, वैद्य शिरोमणि श्रीतपन सेन का पौत्र तथा श्रीगौरीनरसिंह सेन का पुत्र श्रीविश्वनाथ सेन कविराज हूँ' मैने आयुर्वेदीय ग्रन्थों का सार लेकर इस ग्रन्थ की रचना की है, इसके अतिरिक्त इन्होंने देश-काल आदि का कोई परिचय देना उचित नहीं समझा, दूसरे परिशिष्ट को पूर्व टीकाकार ने जो जोड़ा है, ऐसा लगता है। तीसरा परिशिष्ट प्रस्तुत व्याखाकार द्वारा जोड़ा गया है, इसमें ग्रन्थ में आये हुए समस्त पारिभाषिक शब्दों का स्पष्ट परिचय दिया गया है; सामान्य पाठक वर्ग इन परिभाषाओं से अपरिचित होता है।

पथ्य का महत्व— प्राचीन आचार्यों ने पथ्य सेवन के महत्त्व को ध्यान में रखकर निम्नलिखित पद्यों की रचना की है—

'पथ्ये सति गदार्त्तस्य किमौषधनिषेवणैः।
पथ्येऽसति गदार्तस्य किमौषधनिषेवणैः' ॥

अर्थात् यदि रोगी पथ्य (हितकर आहार-विहार) का सेवन करता है जो फिर वह औषध सेवन क्या करेगा ? तात्पर्य यह है कि वह पथ्य सेवन करने से ही स्वस्थ्य हो जायेगा, और यदि वह पथ्य का सेवन नहीं करता है, तो फिर वह औषध सेवन करके भी क्या करेगा, क्योंकि अपथ्य सेवन करने पर औषध सेवन से भी लाभ नहीं होगा। इसी आशय का दूसरा पद्य इस प्रकार है—

'विनापि भेषजैर्व्याधिः पथ्यादेव निवर्तते।
नतु पथ्यविहीनस्य भेषजानां शतैरपि' ॥

यह प्रसंग पथ्य चर्या का पोषक है, तदनुरूप उसकी प्रशंसा की गयी है, वास्तव में पथ्य के साथ औषध प्रयोग का पक्ष भी आदरणीय है, यह अवश्य है कि स्वस्थ पुरुष को अपनी स्वास्थ्य की समृद्धि के लिये पथ्याशी, हिताशी, मिताशी होना ही चाहिये।

पथ्य का निर्णय— यह देश, काल, व्यक्ति सापेक्ष होता है। जैसे पत्रशाकों को कहीं अपथ्य कहा है और कहीं पथ्य कहा है। शाकाहारियों के लिये मांस भक्षण अपथ्य है, अरुचिकर है। चरक में अहिततम पदार्थों का वर्णन किया है— च.सू.२५/३९, फिर भी प्रकरण में वर्णित द्रव्यों का लोक में खान-पान में प्रयोग होते देखा जाता है। जैसे–'माषाः शमीधान्यानाम्', 'आलुकं कन्दानाम् 'तथा' फाणितमिक्षुविकाराणाम्'। अब आप देखिये पश्चिमी देशों में उड़द की दाल सभी दालों में श्रेष्ठ मानी जाती है, पौष्टिक भी है। आलूकन्द को अपथ्य मानना कैसे कहा जाय और 'राब' को नहीं खाना चाहिये, इसे कौन सुनेगा तथा कौन मानेगा, इसका आशय यह कदापि नहीं हैं और न शास्त्र ही मिथ्या है, इसका निर्णय चिकित्सक से पूछें, वह प्रत्येक व्यक्ति की स्थिति के अनुसार तात्कालिक निर्णय देगा, व्यक्तिशः पथ्य एवं अपथ्य का निर्णय करना बड़ा ही दुरूह विषय है। इसका ठीक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ठीक निर्णय कर पाना सबके लिये सरल नहीं है। अतः संग्रहकर्ता ने इस लघुकाय ग्रन्थ में प्रायः प्रसिद्ध रोगों के पथ्यापथ्य का विवेचन सफ़लता के साथ किया है। इससे साधारण ज्ञान वाले पुरुष भी पथ्य का चुनाव कर सकेंगे, ऐसा हमारा दृढ़ विश्वास है।

प्रस्तुत ग्रन्थ की टीका करते समय हमने प्रत्येक रोग के पथ्यापथ्य विषय को पल्लवित करने का प्रयास किया है। आशा है उक्त विषय के पल्लवन से पाठकों को यथास्थान अधिकाधिक सामग्री उपलब्ध होगी, इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये पद्यों का संग्रह न करके केवल हिन्दी में अन्यत्र वर्णित पथ्यापथ्य यहाँ दिया गया है।

चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, परिवार धन्यवाद का पात्र है, जो इस प्रकार के दुर्लभ ग्रन्थ रत्नों का प्रकाशन कर ग्रन्थ, ग्रन्थकार तथा व्याख्याकारको प्रकाशित कर आयुर्वेद की सेवा कर रहा है।

भिषजांवशंवद

डॉ. ब्रह्मानन्द त्रिपाठी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विषय सूची

विषय	पृष्ठांक
मंगलाचरण	१
ग्रन्थ रचना प्रयोजन	१
वैद्य के कर्त्तव्य	२
अपथ्यत्यागनिर्देश	३
औषध से पथ्य की श्रेष्ठता	३
चिकित्सा के पूर्व जानने योग्य विषय	४
तरुणज्वर में कर्त्तव्य	५
सन्निपातज्वर में कर्तव्य	६
तरुणज्वर में त्याज्यकर्म	६
ज्वर की तरुण आदि सीमाएँ	८
मध्यमज्वर में पथ्य	८
द्वन्द्वजज्वरों में पथ्य	९
पुराने ज्वर में पथ्य	९
अभिघातज तथा क्षतजज्वर में पथ्य	१०
औषधि गन्धज विषमज्वर में पथ्य	११
अभिचारादि ज्वरों में पथ्य	११
उत्पातादिज्वरों में पथ्य	११
कामादि से उत्पन्न ज्वरों में पथ्य	१२
भूताभिषगंज आदि ज्वरों में पथ्य	१२
आगन्तुज ज्वरों में पथ्य	१३
सतत या विषमज्वरों में पथ्य	१३
पथ्यापथ्य में मतभेद	१४
उक्त मांसों का संहेतुक समर्थन	१५
ज्वर में पत्रशाक प्रयोग	१५
ज्वर में फलशाक प्रयोग	१६
ज्वरों में दैवव्यपाश्रय चिकित्सा	१७
ज्वर में अपथ्य	१८
ज्वरमुक्त होने पर अपथ्य	१८
अतिसार रोग में पथ्य	१९
उदररोगों में पेया	२०
अतिसार नाशक यवागू	२१
अतिसार में क्वथित जल पथ्य	२२
अतिसार में अपथ्य	२२
ग्रहणीरोग में पथ्य	२३
ग्रहणीरोग में अपथ्य	२४
अर्शरोग में पथ्य	२५
अर्शरोग में अपथ्य	२६
मन्दाग्नि तथा अजीर्ण में पथ्य	२६
मन्दाग्नि तथा अजीर्ण में अपथ्य	२८
अलसक एवं विसूचिका-में पथ्य	२९
क्रिमिरोग में पथ्य	३०
क्रिमिरोग में अपथ्य	३१
पाण्डुरोग में पथ्य	३१
पाण्डुरोग में अपथ्य	३३
रक्तपित्तरोग में पथ्य	३३
रक्तपित्तरोग में अपथ्य	३५
शोषरोग में पथ्य	३६
क्षयरोग में पथ्य	३६
क्षयरोग में अपथ्य	३८
कासरोग में पथ्य	३९
कासरोग में अपथ्य	४०
श्वासरोग में पथ्य	४०
श्वासरोग में अपथ्य	४१
हिक्कारोग में पथ्य	४२
हिक्कारोग में अपथ्य	४३
स्वरभेद रोग में पथ्य	४३

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विषय	पृष्ठांक
स्वरभेदरोग में पथ्य	४४
स्वरभेदरोग में अपथ्य	४४
अरुचिरोग में पथ्य	४४
अरुचिरोग में अपथ्य	४५
वमनरोग में पथ्य	४५
वमनरोग में अपथ्य	४६
तृष्णारोग में पथ्य	४७
तृष्णारोग में अपथ्य	४८
मूर्च्छारोग में पथ्य	४८
मूर्च्छारोग में अपथ्य	४९
मदात्ययरोग में पथ्य	५०
मदात्ययरोग में अपथ्य	५१
दाहरोग में पथ्य	५१
दाहरोग में अपथ्य	५२
उन्मादरोग में पथ्य	५२
कामादिज उन्मादरोगों में पथ्य	५३
देवादिज उन्मादरोगों में पथ्य	५३
उन्मादरोगों में अपथ्य	५३
अपस्माररोग में पथ्य	५४
अपस्माररोग में अपथ्य	५४
वातरोग में पथ्य	५५
वातरोग में अपथ्य	५७
वातरक्तरोग में पथ्य	५९
वातरक्तरोग में अपथ्य	५९
ऊरुस्तम्भरोग में पथ्य	५९
ऊरुस्तम्भरोग में अपथ्य	६०
आमवातरोग में पथ्य	६१
आमवातरोग में अपथ्य	६१
शूलरोग में पथ्य	६२
शूलरोग में अपथ्य	६२

विषय	पृष्ठांक
उदावर्तरोगों में पथ्य	६३
अधोवायु के उदावर्त में पथ्य	६३
पुरीषज उदावर्त में पथ्य	६४
मूत्रज उदावर्त में पथ्य	६४
डकार, खाँसी के उदावर्त में पथ्य	६४
छींक के उदावर्त में पथ्य	६४
तृष्णा, जृम्भा के उदावर्त में पथ्य	६४
नींद, भूख, वाष्प के उदावर्त में पथ्य	६५
श्रम एवं श्वास के उदावर्त में पथ्य	६५
शुक्र के उदावर्त में पथ्य	६५
वमन के उदावर्त में पथ्य	६५
उदावर्तों में अपथ्य	६५
आनाहरोग में पथ्य	६६
आनाहरोग में अपथ्य	६६
गुल्मरोग में पथ्य	६६
गुल्मरोग में अपथ्य	६७
हृदयरोग में पथ्य	६७
हृदयरोग में अपथ्य	६७
मूत्रकृच्छ्ररोग में पथ्य	६८
मूत्रकृच्छ्ररोग में अपथ्य	६८
मूत्राघातरोग में पथ्य	७०
मूत्राघातरोग में अपथ्य	७०
अश्मरीरोग में पथ्य	७०
अश्मरीरोग में अपथ्य	७१
प्रमेहरोग में पथ्य	७१
प्रमेहरोग में अपथ्य	७२
मेदोरोग में पथ्य	७३
मेदोरोग में अपथ्य	७४
कृशतारोग में पथ्यापथ्य	७४
उदररोगों में पथ्य	७४

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विषय	पृष्ठांक	विषय	पृष्ठांक
उदररोगों में अपथ्य	७५	विस्फोटकरोग में अपथ्य	९१
शोथरोग में पथ्य	७६	मसूरिकारोग में पथ्य	९१
शोथरोग में अपथ्य	७७	मसूरिकारोग में अपथ्य	९२
वृद्धिरोग में पथ्य	७८	क्षुद्ररोगों में पथ्यापथ्य	९३
वृद्धिरोग में अपथ्य	७८	मुखरोगों में पथ्य	९३
गलगण्ड आदि में पथ्य	७९	मुखरोगों में अपथ्य	९४
गलगण्ड आदि में अपथ्य	७९	कर्णरोगों में पथ्य	९४
श्लीपदरोग में पथ्य	८०	कर्णरोगों में अपथ्य	९५
श्लीपदरोग में अपथ्य	८०	नासारोगों में पथ्य	९५
विद्रधिरोग में पथ्य	८१	नासारोगों में अपथ्य	९६
विद्रधिरोग में अपथ्य	८१	नेत्ररोगों में पथ्य	९६
व्रणशोथ आदि में पथ्य	८१	नेत्ररोगों में अपथ्य	९७
व्रणशोथ आदि में अपथ्य	८३	शिरोरोगों में पथ्य	९७
भग्नरोग में पथ्य	८३	शिरोरोगों में अपथ्य	९८
भग्नरोग में अपथ्य	८४	प्रदररोगों में पथ्यापथ्य	९९
भगन्दररोग में पथ्य	८४	योनिरोगों में पथ्यापथ्य	९९
भगन्दरोग में अपथ्य	८४	गर्भिणी के लिये पथ्य	९९
उपदंशरोग में पथ्य	८५	गर्भिणी के लिये अपथ्य	१००
उपदंशरोग में अपथ्य	८५	सूतिका के लिये पथ्य	१०१
शूकरोग में पथ्य	८५	सूतिका के लिये अपथ्य	१०१
शूकरोग में अपथ्य	८६	सूतिकारोग में पथ्यापथ्य	१०१
कुष्ठरोग में पथ्य	८६	प्रसवकाल में पथ्य	१०२
कुष्ठरोग में अपथ्य	८७	बालरोगों में पथ्यापथ्य	१०२
शीतपित्तादि में पथ्य	८८	पारिगर्भिकरोग में पथ्यापथ्य	१०२
शीतपित्तादि में अपथ्य	८८	बालग्रहरोग में पथ्यापथ्य	१०२
अम्लपित्तरोग में पथ्य	८८	विषरोगों में पथ्य	१०३
अम्लपित्तरोग में अपथ्य	८९	विषरोगों में अपथ्य	१०४
विसर्परोग में पथ्य	८९	संकररोगों में पथ्यापथ्य	१०४
विसर्परोग में अपथ्य	९०	वातजरोगों में पथ्य	१०४
विस्फोटकरोग में पथ्य	९०	वातजरोगों में अपथ्य	१०६

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विषय	पृष्ठांक
पित्तजरोगों में पथ्य	१०७
पित्तजरोगों में अपथ्य	१०८
कफजरोगों में पथ्य	१०९
कफजरोगों में अपथ्य	११०
ग्रीष्मऋतु में पथ्य	११०
ग्रीष्मऋतु में अपथ्य	११२
वर्षाऋतु में पथ्य	११२
वर्षाऋतु में अपथ्य	११३
शरद्ऋतु में पथ्य	११३
शरदऋतु में अपथ्य	११३
हेमन्त, शिशिर में पथ्य	११४
हेमन्त, शिशिर में अपथ्य	११४
वसन्तऋतु में पथ्य	११५
वसन्तऋतु में अपथ्य	११६
वैद्यों के लिये निर्देश	११७
प्रस्तुत ग्रन्थोक्त रोग सूची	११८
(प्रथमं परिशिष्ट)	
मधुर रस के गुण	११८
मधुर रस का अतियोग	११८
अम्ल रस के गुण	११९
अम्ल रस का अतियोग	११९
लवण रस के गुण	११९
लवण रस का अतियोग	११९
कटु रस के गुण	१२०
कटु रस का अतियोग	१२०
तिक्त रस के गुण	१२०
तिक्त रस का अतियोग	१२०
कषाय रस के गुण	१२०
कषाय रस का अतियोग	१२१
ग्रन्थकर्ता का परिचय	१२१

विषय	पृष्ठांक
(द्वितीयं परिशिष्ट)	
स्नेहपान की व्यवस्था, लक्षण	१२२
पञ्चकर्म	१२२
वमन, विरेचन काल	१२२
वमन का पूर्वकर्म	१२३
विरेचन प्रयोग	१२३
बस्तिपरिचय	१२४
फलवर्ति प्रयोग	१२४
नस्यकर्म	१२४
धूमपान	१२५
गण्डूष प्रयोग	१२५
कवल प्रयोग	१२५
प्रतिसारण प्रयोग	१२६
स्वेदन प्रयोग	१२७
लेपन प्रयोग	१२७
रक्तस्रावणविधि	१२७
नेत्रप्रसादनकर्म	१२८
सेचनकर्म	१२८
आश्चोतन कर्म	१२८
पिण्डी प्रयोग	१२८
बिड़ालकलेप	१२८
तर्पणप्रयोग	१२८
पुटपाक प्रयोग	१२८
अंजन प्रयोग	१२८
(तृतीय परिशिष्ट)	
दिनचर्या	१३०
दन्तधावन	१३०
दातूनों की श्रेष्ठता	१३०
दातून का निषेध	१३०
अञ्जन प्रयोग	१३०

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विषय	पृष्ठांक	विषय	पृष्ठांक
धूमपान	१३०	सुरा परिचय	१३३
धूमपान के अयोग्य व्यक्ति	१३०	वारुणी का लक्षण	१३३
ताम्बूल सेवन का समय	१३१	आसव-अरिष्ट भेद	१३३
राजनिघण्टु में ताम्बूल वर्णन	१३१	तर्पण	१३४
ताम्बूलसेवन निषेध	१३१	आश्च्योतन विधि	१३४
उबटन प्रयोग	१३१	नेत्रतर्पण	१३४
उबटन का निषेध	१३१	पुटपाक प्रयोग	१३४
व्यायाम	१३१	पुटपाक विधि	१३४
व्यायाम का निषेध	१३१	रसधारणकाल	१३४
स्नान कर्म	१३१	सिरावेधपरिचय	१३५
स्नानकर्म का निषेध	१३१	उष्णोदक विधि	१३५
प्रसाधन कर्म	१३२	उष्णोदक के गुण	१३५
रात्रि यात्रा निषेध	१३२	मण्डनिर्माणविधि	१३५
हितकर निर्देश	१३२	भक्तनिर्माणविधि	१३५
सर्वत्र आत्मभाव रखें	१३२	यवागूनिर्माणविधि	१३५
ऋतुसन्धिविचार	१३२	विलेपीनिर्माणविधि	१३६
चिकित्सा के चार पाद	१३२	पेया-विधि	१३६
चिकित्सक के लक्षण	१३२	यूष-विधि	१३६
औषधद्रव्य के लक्षण	१३२	खडयूषविधि	१३६
परिचारक के लक्षण	१३२	काम्बलिक विधि	१३६
रोगी के लक्षण	१३३	त्रिविधदेश लक्षण	१३६
वातादि में पथ्य	१३३	आनूपदेश	१३६
शुक्तपरिचय	१३३	जागंलदेश	१३६
सीधुपरिचय	१३३	साधारणदेश	१३६

————*

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

॥श्रीः॥

पथ्यापथ्यविनिर्णयः

ग्रन्थकर्तुर्मङ्गलाचरणम्

श्रित्वा रजःसत्त्वतमांसि विश्वं निर्माति पाति क्षिपति स्वयं यः ।
इन्द्रादिवृन्दारकवृन्दवन्द्यः पायादपायान्मनुजान् स ईशः ॥ १ ॥

महामहोपाध्याय विश्वनाथ कविराज ग्रन्थारम्भ में मङ्गलाचरण करते हैं– जो भगवान सदाशिव रजोगुण, सत्त्वगुण तथा तमोगुण का आश्रय लेकर स्वयं संसार की रचना, पालन एवं विनाश करते हैं, इन्द्र आदि देव समूह द्वारा प्रणम्य वे (शिव) सदैव रोगों से मनुष्यों की रक्षा करें ॥ १ ॥

वक्तव्य– अन्यत्र सृष्टि, पालन तथा विनाश के देवों का क्रम इस प्रकार है– ब्रह्मा सृष्टि, विष्णु पालन तथा शिव विनाश (संहार)। उक्त मंगला चरण की भावना निम्नलिखित पद्य से भी पुष्ट होती है–

निरुपादानसम्भारमभित्तावेव तन्वते ।
जगच्चित्रं नमस्तस्मै कलाश्लाघ्याय शूलिने ॥

वास्तव में शैव सम्प्रदाय के लोग अपने आराध्य देव को सर्वतन्त्र स्वतन्त्र मानकर उन्हें कर्तुम्, अकर्तुम् अन्यथा कर्तुम् मानते हैं । 'भावो हि विन्द्यते देवस्तस्माद् भावो हि कारणम् ।'

व्याख्याकर्तुर्मङ्गलाचरणम्

सर्वज्ञाननिधिः परात्परतरः श्रीविश्वनाथोगुरु-
र्यं नत्वा निजजीवनं सुखमयं कुर्वन्ति दीर्घायुषः ।
क्ष्वेडश्चापि सुधायते प्रतिदिनं यस्यानुकम्पावशात्
सोऽयं साम्बशिवः करोतु कुशलं सर्वापदां नाशनः ॥
चिकित्सासारभूतेऽस्मिन् पथ्यापथ्यविनिर्णये ।
छात्राणां सुखबोधार्थं 'पथ्या' व्याख्यां तनोम्यहम् ॥

ग्रन्थरचना प्रयोजन

आलोक्य वैद्यतन्त्राणि यत्नादेष निबध्यते ।
व्याधितानां चिकित्सासु पथ्यापथ्यविनिर्णयः ॥२॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आयुर्वेदीय प्राचीन संहिताओं का भली भाँति निरीक्षण कर प्रयत्नपूर्वक प्रस्तुत पथ्यापथ्यविनिर्णय की रचना की जा रही है, जिससे रोगियों को उनके चिकित्सा काल में यह ठीक प्रकार से बतलाया जा सके किस रोग में यह द्रव्य पथ्य है और किस में यह अपथ्य है ॥ २ ॥

वक्तव्य— पथ्य-अपथ्य का निर्णय करना योग्य चिकित्सक पर निर्भर होता है, जिस रोगी को पथ्य-अपथ्य का निर्देश करना होता है, उस स्थिति में अनेक बातों का विचार करना पडता है, उसके बाद चिकित्सक इस निर्णय पर पहुँच पाता है, कि इस रोगी के लिये इस रोग में ये पदार्थ पथ्य हैं और ये अपथ्य हैं, इसके लिये विचारणीय विषय हैं—देश, काल, रोग, प्रकृति, रोग की सम्प्राप्ति, दोषविशेष की स्थिति तथा अन्य दोष की उत्पत्ति होने की सम्भावना आदि।

इनके अतिरिक्त पथ्यापथ्य के पक्षपाती आचार्यों का तो मानना है कि रोग के अनुरूप चिकित्सा न करने पर भी उत्पन्न रोग 'पथ्यादेव निवर्तते' केवल पथ्य सेवन करने से ही शान्त हो जाता है और यदि उत्तमोत्तम चिकित्सा करने पर भी रोगी अपथ्य सेवन करता हो तो वह स्वस्थ नहीं होता, इसका आशय मात्र इतना ही है कि सभी को हितभुक् तथा मितभुक् होना ही चाहिये, इसका अर्थ यह कदापि नहीं होता कि आप चिकित्सा के अन्य सिद्धान्तों की उपेक्षा करदें। अपने अपने स्थान पर आयुर्वेद के सभी सिद्धान्त समादरणीय हैं। अतएव वाग्भट ने कहा है—'आयुर्वेदोपदेशेषु विधेयः परमादरः'।

वैद्य के कर्तव्य

भिषक् सर्वेषु रोगेषु निर्दिष्टानि यथायथम्।
निदानपथ्यापथ्यानि त्रीणि यत्नाद्विचिन्तयेत् ॥ ३ ॥
पूर्वं सर्वगदे कुर्य्यान्निदानपरिवर्ज्जनम्।
तेनैव रोगाः शीर्यन्ते शुष्कनीरा इवाङ्कुराः ॥ ४ ॥

चिकित्सक को चाहिये कि वह प्रत्येक रोगी की चिकित्सा करने के पहले उस उस रोग में कहे गये निदान, पथ्य, अपथ्य इन तीनों का भलीभाँति विचार करले। तदनन्तर वह चिकित्सा करना प्रारम्भ करे। सर्व प्रथम वह सभी रोगों में 'निदानपरिवर्जन' अर्थात् जिन कारणों से रोग की उत्पत्ति हुई हो उनको छोड़ दे। (रोगी को उनका सेवन करना छुड़ा दे) ऐसा कर देने से रोग उस प्रकार नष्ट हो जाते हैं, जैसे— पानी के सूख जाने से वृक्षों तथा फसलों के अंकुर सूखकर नष्ट हो जाते है ॥ ३-४ ॥

वक्तव्य— आयुर्वेद की आधार शिला त्रिदोष सिद्धान्त है, अतएव प्राचीन काल में प्रसिद्ध ज्वर आदि कतिपय रोगों के निदानों का वर्णन संहिता ग्रन्थों में मिलता है, अतएव भगवान् पुनर्वसु आत्रेय ने कहा है—

'विकारनामाकुशलो न जिह्रीयात् कदाचन।
नहि सर्वविकाराणां नामतोऽस्ति ध्रुवा स्थितिः॥ (च.सू.१८।४४०)

इस स्थिति में सभी रोगों के निदान भी उपलब्ध नहीं है। प्रस्तुत ग्रन्थकार ने इस ग्रन्थ में उन रोगों का वर्णन किया है, ज़िनका वर्णन माधवनिदान में हुआ है। यदि अन्य रोगों के पथ्य-अपथ्य का विचार करना हो तो त्रिदोष सिद्धान्त के अनुसार करें।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पथ्यापथ्य विचार— पूर्ववर्ती संहिताओं में पथ्य - अपथ्य का विस्तृत विचार नहीं किया गया है, अतएव इस ग्रन्थ की रचना की गयी है। **निदान परिवर्जन** — यह सभी रोगों का एक उत्तम चिकित्सा सूत्र है।

अपथ्य त्याग का निर्देश

रुक्षु सर्वास्वपथ्यानि यथास्वं च विवर्जयेत् ।
ता ह्यपथ्यैर्विवर्द्धन्ते दोहदैरिव वीरुधः ॥ ५ ॥

सभी रोगों के चिकित्सा काल में जिस रोग में जो द्रव्य अपथ्य हों, उनका त्याग करना चाहिये, क्योंकि उन अपथ्य पदार्थों का यदि सेवन किया जाता है तो उनसे वे रोग उस प्रकार बढ़ने लगते हैं, जिस प्रकार जल, खाद आदि डालने से लता वृक्ष, गुल्म आदि बढ़ जाते हैं ॥ ५ ॥

वक्तव्य— 'दोहद' गर्भवती स्त्री की गर्भकाल में होने वाली प्रवल इच्छा है, यह अनेक प्रकार की होती है— कुछ खाने की इच्छा, देव दर्शन की इच्छा, तीर्थ यात्रा आदि की इच्छा, इसकी पूर्ति से गर्भ एवं गर्भिणी के स्वास्थ्य की वृद्धि होती है। ऐसा ही दोहद लता वृक्ष आदि का भी होता है , लता आदि के दोहद हैं - जल, खाद आदि की प्राप्ति का होना, यहाँ 'दोहदैरिव वीरुधः' यह उपमा 'वीरुध' के पक्ष में तो संगत है, किन्तु रोग ऐसा नहीं चाहते कि हमारी वृद्धि हो और न रोगी ही चाहता है कि मेरे रोग की वृद्धि हो ।

कवि समय प्रसिद्धि को आधार मानकर आचार्य विश्वनाथ ने साहित्य दर्पण में इस प्रकार कहा है— 'रमणियों के पाद प्रहार से अशोक पुष्पों का खिलना और उनके मुख से निकले हुए मद्य के स्पर्श से बकुल (मौलसिरी) के फूलों का विकसित होना आदि वृक्ष लता प्रभृति का दोहद माना गया है। देखें —सा. द. ७ ।२४ ।, लोक प्रसिद्धि में रोगों का दोहद स्वीकार नहीं किया गया है; वीरुध' आदि का दोहद साहित्य शास्त्र में वर्णित है, अन्यत्र नहीं'।

औषध से पथ्य की श्रेष्ठता

विनापि भेषजैर्व्याधिः पथ्यादेव निवर्तते ।
न तु पथ्यविहीनस्य भेषजानां शतैरपि ॥ ६ ॥

औषध द्रव्यों के प्रयोग के बिना भी पथ्य सेवन करने वाले रोगी का रोग ठीक हो सकता है, यदि रोगी अनेक औषध द्रव्यों का सेवन कर रहा हो, किन्तु पथ्य सेवन न करता हो तो उसका रोग दूर नही होता है ॥ ६ ॥

वक्तव्य— यह पद्य पथ्य प्रशंसक है। वास्तविकता होने पर भी सर्वत्र ऐसा प्रभाव नहीं देखा जाता, वास्तव में पथ्य तथा औषध सेवन ये एक दूसरे के षोष्य पोषक हैं । ऐसा ही मत लोलिम्बराज का भी है, देखें—

'पथ्ये सति गदार्तस्य किमौषधनिषेवणैः ।
पथ्येऽसति गदार्तस्य किमौषधनिषेवणैः' ॥ (वैद्यजीवन)

पथ्य— यह एक समूह वाचक शब्द है, इसका अर्थ है— हितकर आहार एवं औषध आदि पदार्थ, जो स्वास्थ्यवर्धक हैं, यथा—अप्रियस्य च पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अपथ्य— अयोग्य, अनुचित, असंगत, अहितकर पदार्थों तथा वचनों को अपथ्य कहते हैं। उक्त पथ्य के विपरीत को भी अपथ्य मानना चाहिये। कभी कभी ऐसा भी देखा जाता है कि जो द्रव्य शास्त्र में अपथ्य कहे गयें हैं तथापि प्रतिदिन के सेवन करने से जो सात्म्य अनुकूल हो गये हैं, वे अपथ्य होने पर भी पथ्य देखे, सुने जाते हैं। जैसे–ग्रीष्म ऋतु के अतिरिक्त अन्य दिनों में दिन में सोना अपथ्य है, किन्तु जो रात्रिकालीन सेवा में लगे हैं, उनको दिन में सोने का अभ्यास पड़ गया है, उन्हें वह दिन में सोना हानि-कारक नहीं होता, साहित्यिक दृष्टि से उक्त लोलिम्बराज कृत पद्य 'लाटानुप्रास' अलंकार का उत्तम उदाहरण है।

चिकित्सा के पूर्व जानने योग्य विषय

दोषान्दूष्यान्देशकालौ सात्म्यं सत्त्वं बलं वयः ।
प्रकृतिं भेषजं वह्निमाहारं च प्रयत्नतः ॥७॥
निरीक्ष्य मतिमान् वैद्यश्चिकित्सां कर्त्तुमुद्यतः ।
पथ्यानि योजयेन्नित्यं यथास्वं सर्वरोगिषु ॥८॥

चिकित्सा प्रारम्भ करने के पहले चिकित्सक को दोष (वात, पित्त, कफ), दूष्य (रस आदि सात धातुऐं), देश (आनूप, जांगल, साधारण), काल ('नक्तं दिनर्तुभुक्तां शैर्व्याधिकालो यथामलम्' । अ. हृ. नि. १।११), सात्म्य ('हेतुव्याधिविपर्यस्तविपर्यस्तार्थकारिणाम्, औषधान्नविहाराणामुपयोगं सुखावहम्, विद्यादुपशयं व्याधेः स हि सात्म्यम्' ॥ अ. हृ. नि. १।६-७।), सत्त्व ('सत्त्वसंज्ञेन मन उच्यते'। च. सू. १।५५ की चक्रपाणि टीका), बल (यह तीन प्रकार का होता है, देखें– च. सू.११।३६ (सहज, कालज, युक्तिकृत), अवस्था (बाल, युवा, वृद्ध), प्रकृति (स्वभाव), औषध, अग्निबल या शक्ति, आहार का परिमाण इन सब का प्रयत्नपूर्वक विचार करके सभी रोगियों में यथोचित पथ्य द्रव्यों का प्रयोग करें ॥ ७-८ ॥

वक्तव्य— ऊपर चिकित्सा के पहले अथवा पथ्य तथा अपथ्य निर्देश करने के पहले जिन भावों की परीक्षा करने का ग्रन्थकार का निर्देश है, उनमें सत्त्व प्रकृति तथा आहार परीक्षा का भी महत्व पूर्ण स्थान है।

सत्व परीक्षा—

'सत्त्वमात्माशरीरं च त्रयमेतत् त्रिदण्डवत् ।
लोकस्तिष्ठति संयोगात् तत्र सर्वं प्रतिष्ठितम्' ॥ (च.सू.१।४६)

शरीर रूपी भवन को स्थिर रखने के लिये ये (सत्त्व, आत्मा, शरीर) तीनों त्रिदण्ड के समान आधारभूत पदार्थ हैं। इनमें आत्मा तो विकार रहित है, मन ही शरीर का प्रेरक होने के कारण उसका नियन्ता है, अतः सभी स्थितियों में 'सत्त्व' परीक्षा का विशेष महत्त्व माना गया है। यह 'सत्त्व' बलभेद से प्रवर, मध्यम तथा अवर तीन प्रकार का होता है। इनमें प्रवर सत्त्व उत्तम, मध्यम सत्त्व मध्यम, हीन सत्त्व वाले हीन होते हैं। इनके विस्तृत विवेचन के लिये देखें –च. वि. ८। इसमें अन्य अनेक प्रकार की परीक्षाओं का उल्लेख भी दिया गया है।

प्रकति परीक्षा— प्रकृति, स्वभाव तथा निसर्ग ये शब्द परस्पर पर्यायवाची हैं। अतएव कहा गया है–'स्वभावो मूर्ध्नि वर्तते', इसका यह अर्थ कभी न करें, कि इसकी तुलना में अन्य भाव

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अकिंचन होते है। यह एक विचार सरणि है, विषय को प्रस्तुत करने का एक विशिष्ट प्रकार है, यह प्रकृति वात, पित्त, कफ भेद से तीन प्रकार की होती है, अतएव मनुष्य भी वात प्रकृतिक, पित्त प्रकृतिक तथा कफप्रकृतिक होते हैं, पुनः इसके भेद दो प्रकार से किये गये हैं–१. देह प्रकृति और मनः प्रकृति। प्रकृति की उत्पत्ति के सम्बन्ध में सुश्रुत का मत महत्त्वपूर्ण है। देखें–सु. शा. ४ ।६३ । इसी के पहले गद्य ६२ में सुश्रुत ने सात प्रकार की प्रकृतियों की भी चर्चा की है, वे सात प्रकृतियाँ इस प्रकार हैं–१. वातप्रकृति, २. पित्तप्रकृति, ३. कफप्रकृति, ४. वातपित्तप्रकृति, ५ वातकफप्रकृति, ६. पित्तकफप्रकृति तथा ७. समदोषप्रकृति। चरक ने 'वातलाद्याः सदातुराः', कहा है। देखें- च.सू.७ ।४० । इसके स्पष्टीकरण के लिये देखें– च. वि. ६ ॥ १५ ॥

आहारशक्ति परीक्षा— हमारा शरीर भोजन पर आधारित रहता है, क्योंकि 'कलावन्नगताः प्राणाः', कलियुग में प्राणों का आधार अन्नमय कोष ही है, अग्निमान्द्य, आमाजीर्ण, यकृद्रोग, संग्रहणी आदि में आहार शक्ति कम हो जाती है, इसके विपरीत भस्मक आदि रोगों में आहार शक्ति बढ़ जाती है। इन स्थितियों में आहार शक्ति के साथ अग्नि परीक्षा अवश्य करें।

तरुणज्वर में कर्तव्य

वमनं लङ्घनं काले यवागूः स्वेदनानि च ।
कटुतिक्तौ रसौ चेति पाचनं तरुणज्वरे ॥ ९ ॥

तरुण (नये) ज्वर, में उचित समय पर (विशेष करके कफज ज्वर में), वमन, लंघन (लघुभोजन) यवागू (पतली खिचड़ी या दलिया), विविध प्रकार के स्वेदनों का प्रयोग (जिससे रोगी को पसीना आ जाय), कटु रसों तथा तिक्त रसों का एवं ज्वर पाचन औषधियों का प्रयोग कराना चाहिये ॥९ ॥

वक्तव्य — यह पद्य ज्वर में उस प्रकार के पथ्य आहार द्रव्यों का उल्लेखन न करके पथ्य (हितकारक) चिकित्सकीय विषयों का उल्लेख कर रहा है। इस ग्रन्थ में रोगों का जो क्रम दिया गया है, वह प्रायः माधवनिदान के अनुरूप है, तथापि माधवनिदान में नामतः 'तरुणज्वर' का उल्लेख नहीं हुआ है, चक्रपाणिदत्त ने अपने 'चक्रदत्त' में इस का लक्षण इस प्रकार दिया है–

आसप्तरात्रं तरुणं ज्वरमाहुर्मनीषिणः ।
मध्यं द्वादशरात्रन्तु पुराणमत उत्तरम्' ॥ (च. ज्वर. ४८)

इसका आशय है— ज्वर उत्पन्न होने के दिन से लेकर सात दिन तक के ज्वर को तरुणज्वर, बारह दिन तक मध्यमज्वर, इसके बाद इसे पुराण (जीर्ण) ज्वर कहा जाता है । वास्तव में जिसे चिकित्सक जीर्ण ज्वर या अति जीर्णज्वर कहते हैं, उसके लक्षण इस प्रकार देखे जाते हैं –

'त्रिसप्ताहे व्यतीते तु ज्वरो यस्तनुतां गतः।
प्लीहाग्निसादं कुरुते स जीर्णज्वर उच्यते ॥'

अर्थात् २१ दिन बीत जाने पर जब ज्वर का वेग कम होकर प्लीहा (तिल्ली) वृद्धि तथा अग्निमान्द्य हो जाय उसे जीर्णज्वर कहते हैं।

ज्वरों की सम्प्राप्ति— इसके मूल कारण हैं –१. मिथ्या आहार एवं २. मिथ्या विहार। क्रमशः परिचय– असमय में न्यूनाधिक मात्रा में अपनी प्रकृति के प्रतिकूल पदार्थों का भोजन मिथ्या आहार है, असमर्थ होने पर भी जो पुरुष अपनी शक्ति से अधिक कर्मों (चलना, फिरना आदि) को

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

करते रहता है, वह मिथ्याविहार है। इसकी वास्तविक स्थिति का निर्णय रोगी को देखकर ही हो सकता है।

स्वेदन— ज्वर का प्रथम लक्षण है; 'स्वेदावरोध'। स्वेदनों के प्रयोग से पसीना आने लग जाता है, तो ज्वर का प्रकोप शान्त हो जाता है। अतः स्वेदन कर्म इसमें 'पथ्य' है।

सन्निपातज्वर में कर्तव्य

सन्निपाते त्विदं सर्वं प्राक् चैवामकफापहम्।
अवलेहोऽञ्जनं नस्यं गण्डूषश्चायसः क्रिया ॥ १० ॥
पादयोर्हस्तयोर्मूले कण्ठकूपे च शङ्खयोः।
स्वेदेषु च कुलत्थानां कणानां चूर्णघर्षणम् ॥ ११ ॥

तीनों दोषों का जब तर-तम भाव से प्रकोप हो जाता है, तो उसे सन्निपात ज्वर कहते हैं। इसमें भी उक्त तरुण ज्वर में कहे गये पथ्यों का प्रयोग तथा आमदोष एवं कफ दोषनाशक चिकित्सा पथ्य (हितकर) होती है और ज्वरचिकित्सा प्रकरण में कथित अवलेहों, अञ्जनों, नस्यों, गण्डूषों तथा अयसः क्रिया (लौहशलाका को तपाकर) हाथ, पैरों के मूल में, कंठ में, कनपटियों में करनी चाहिये अर्थात् दागना चाहिये, पसीना आने पर कुलथी के सूखे बारीक चूर्ण को मसलना चाहिये, ये सभी कर्म इसमें पथ्य होते हैं ॥ १०-११ ॥

वक्तव्य— अष्टांगावलेह, मातुलुङ्गादिनस्य, सैन्धवादिनस्य, शिरीषादि अञ्जन, आदि का भी क्रमशः प्रयोग करें। जब देखें एक चिकित्सा से लाभ नहीं हो रहा है, तब दूसरी चिकित्सा प्रारम्भ करें, किन्तु क्रिया संकर (एक साथ अनेक योगों का प्रयोग कभी) न करें। यह निर्देश उस अवसर के लिय है, जब चिकित्सा विधियाँ परस्पर भिन्न (शीत-उष्ण, वामक-विरेचक) प्रकार की हों, जहाँ समान प्रकृति की चिकित्साओं का निर्देश किया गया है, उनका प्रयोग एक साथ भी किया जा सकता है।

कुलत्थचूर्णघर्षण— इसका चूर्ण उष्ण, वात तथा कफनाशक होता है, इस प्रकार के गुणधर्म वाले अन्य चूर्णों का भी प्रयोग इस कार्य के लिये किया जा सकता है। कुलथी का चूर्ण स्वेद (पसीना) को सुखा तो देता है किन्तु यह कुछ प्रयोग काल में सट भी जाता है, अतः इसे सूखे वस्त्र से तत्काल पोंछ देना चाहिये, अतः उक्त सभी विधियाँ सन्निपातज्वर में पथ्य हैं।

तरुणज्वर में त्याज्य कर्म

स्नानं विरेकं सुरतं कषायं व्यायाममभ्यञ्जनमह्निनिद्राम्।
दुग्धं घृतं वैदलमामिषं च तक्रं सुरां स्वादु गुरु द्रवं च ॥१२॥
अन्नं प्रवातं भ्रमणं च क्रोधं त्यजेत् प्रयत्नात्तरुणज्वरार्त्तः।
तदेव तु पयः पीतं तरुणे हन्ति मानवम् ॥१३॥

तरुण (नवीन) ज्वर में स्नान, विरेचनकारक औषधद्रव्य, स्त्रीसहवास अर्थात् मैथुन, कषाय (काढा या क्वाथ), किसी प्रकार का व्यायाम (शरीर को थकाने वाला कर्म), अभ्यञ्जन (तेल आदि की मालिश), दिन में सोना, दूध, घी, दालों के सूप, मांसभक्षण, मट्ठा, सभी प्रकार के मद्य, मधुर रस

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रधान पदार्थ (मिठाई आदि), गुरु (देरमें पचने वाले) पदार्थ, अधिक पेय पदार्थ, अन्न (भोज्य पदार्थ), पुरवाई हवा का सेवन, इधर उधर घूमना तथा क्रोध करना इन भावों का प्रयत्न पूर्वक त्याग करना चाहिये। तरुणज्वर में दूध को पीने से वह मनुष्य को मार डालता है ॥ १२-१३ ॥

वक्तव्य— तरुणज्वर में उक्त त्याज्य कर्मों को 'अपथ्य' समझना चाहिये, क्यों कि ये 'पथ्य' के विपरीत होते हैं। इन भावों का निषेध आयुर्वेद में अन्यत्र भी मिलता है। यथा - परिषेक (स्नान), प्रदेह (उबटन), स्नेहपान, संशोधन (वमन, विरेचन), दिन में सोना, मैथुन, व्यायाम, शीतल जल को पीना, क्रोध, प्रवात सेवन तथा भोजन इनका सेवन तरुण ज्वर रोगी न करें। देखें–सु. उ. ३९।१५६-१५८।, उक्त त्याज्य भावों का यदि वह सेवन करता है, तो उसे ये कष्ट भोगने पड़ते है – शोष, वमन, मद, मूर्च्छा, भ्रम, तृष्णा तथा अरुचि आदि।

आचार्य हारीत ने उक्त त्याज्य भावों के सेवन करने से होने वाली व्यापत्तियों का इस प्रकार वर्णन किया है–'व्यायामा .... प्रवर्तनम्' देखें–भा. प्र. म. १।१९-२०। इसका आशय है– व्यायाम करने से ज्वर की वृद्धि, मैथुन से स्तब्धता, मूर्च्छा तथा मृत्यु, स्नेहपान आदि से मूर्च्छा, वमन, मद, अरुचि, होती है, गुरु (देर में पचने वाले) अन्न का सेवन करने तथा दिन में सोने से विष्टब्धता, दोषों का कुपित होना, अग्नि का मन्द पड़ जाना, खरता (तीष्णता), मुख-नासिका आदि, स्रोतो–मार्गो से जल आदि का स्राव होना, ये लक्षण होते है। देखें–चक्रदत्त ज्वर चिकित्सा प्रकरण–

'नवज्वरे दिवास्वप्नस्नानाभ्यङ्गान्नमैथुनम्।
क्रोधप्रवातव्यायामकषायांश्च विवर्जयेत्॥

अर्थ स्पष्ट है, तरुणज्वर में पञ्च कषायों में से किस कषाय (क्वाथ) का निषेध करना चाहिये, इसका समाधान देखें–'चतुर्भागावशिष्टस्तु यः षोडशगुणाम्भसा। यः कषायः कषायश्च स वर्ज्यस्तरुणे ज्वरे' ॥ चक्रपाणि ने तो और भी निर्देश दिया है–'तरुण (नये) ज्वर में सीधे ज्वर नाशक प्रधान औषध द्रव्य का प्रयोग भी नहीं करना चाहिये, जल या पेय। आदि का संस्कार करने में यदि औषध का प्रयोग किया जाता है, तो उससे हानि नहीं होती है'। इसी विषय को अन्यत्र 'कृत' अर्थात् संस्कारित अथवा 'अकृत' असंस्कारित, शब्दों द्वारा भी कहा गया है। सीधे शब्दों में इस प्रकार समझें, 'कृत' उस दाल, शाक आदि को कहते हैं– जिसमें मसाले पड़े हों तथा छौंका या बघारा गया हो। इसके विपरीत 'अकृत' है।

तरुणज्वर में दुग्धपान निषेध–

'जीर्णज्वरे कफे क्षीणे क्षीरं स्यादमृतोपमम्।
तदेव तरुणे पीतं विषवद्धन्ति मानवम्॥ (चक्र०)

उक्त १२वें पद्य में निर्दिष्ट 'तदेव----मानवम्', पंक्ति चक्रपाणि से प्रभावित है। चक्रदत्त में दिये गये उक्त पाठ से ज्वर में दूध की उपयोगिता तथा उसका निषेध सहेतुक प्रतीत होता है।

मूल पाठ पर विचार – १२ वॉ पद्य 'इन्द्रवज्रा' वृत्त है। इसी के आगे१३ वॉ पद्य कौन सा वृत्त है, इसे ग्रन्थकार या सम्पादक ही बतला सकते है। हमारे विचार से यह पाठ ऐसा तो नहीं था? 'निहन्ति मोहात्तरुणज्वरार्तं पीतं हि दुग्धं मनुजं क्षणेन'। इस स्थिति में यह वृत्त 'उपजाति' कहा जायेगा। अर्थ की दृष्टि से दोनों पाठों में कोई विशेष अन्तर नहीं है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ज्वर की तरुण आदि सीमाएँ

आसप्तरात्रं तरुणं ज्वरमाहुर्मनीषिणाः ।
मध्यं द्वादशरात्रं च पुराणमत उत्तरम् ॥ १४ ॥

ज्वर चिकित्सा कुशल विद्वानों का मत है कि ज्वर के आरम्भ होने के दिन से सात रात्रियों तक ज्वर तरुण, बारह रात्रियों तक मध्यम इस अवधि के पश्चात् वह पुराना पड़ जाता है, ऐसा कहा है ॥ १४ ॥

वक्तव्य– यह ज्वर की कालमान परिभाषा है, इस प्रकार की परिभाषाएँ दोष-दूष्य आदि की परिस्थिति के अनुसार बदलती हुई भी देखी जाती हैं। फिर भी इनमें विशेष अन्तर नहीं होता। भावप्रकाश में उक्त पद्य इस प्रकार प्राप्त है - 'आ सप्तरात्रात्तरुणं ज्वरमाहुर्मनीषिणः । द्वादशाहमभिव्याप्य मध्यं जीर्णं ततः परम् ॥ भा. प्र. म. १ ।९८ । इसका भी आशय पूर्ववत् है । इस सम्बन्ध में जतूकर्ण का मत है - 'जीर्णस्त्रयोदशे दिवसे', चरक 'ज्वरितं षडहेऽतीते', सुश्रुत - 'सप्तरात्रात् परं केचित्', चक्रपाणि चक्रदत्त में - 'सप्तरात्रेण पच्यन्ते' इस सम्बन्ध में प्रायः सभी प्राचीन आर्चाय सहमत हैं कि प्रथम सप्ताह में ज्वर अपनी उग्रस्थिति (तरुण अवस्था) में रहता है। अब पुराण या जीर्णज्वर का परिचय प्रस्तुत किया जा रहा है– जतूकर्ण का मत है – १२ दिन, इससे दूने (२४) दिन अथवा २१ दिन बीतने पर जो ज्वर हलका पड़ जाने पर भी शरीर में बना रहता है, वह ज्वर १२ दिन के बाद जीर्णज्वर कहा जाता है, यद्यपि सुश्रुत ने औषधदान काल का विचार करते हुए निम्न पद्य का उल्लेख किया है – 'सप्तरत्रात्परं ---- निश्चिताः' । सु.उ.३९ ।११९ । तथापि इस पद्य से 'आसप्तरात्रं तरुणं' के आशय की पुष्टि हो रही है। वास्तव में उक्त प्रकार का कालविभाजन रोगचिकित्सा की दृष्टि से ही किया गया है ।

मध्यमज्वर में पथ्य

पुरातनाः षष्टिकशालयश्च वार्त्ताकुशोभाञ्जनकारवेल्लम् ।
वेत्राग्रमाषाढफलं पटोलं कर्कोटकं मूलकपूतिके च ॥ १५ ॥
मुद्गैर्मसूरैश्चणकैः कुलत्थैर्मकुष्ठकैर्वा विहितश्च यूषः ।
पाठामृतावास्तुकतण्डुलीयजीवन्तिशाकानि च काकमाची ॥ १६ ॥
द्राक्षाकपित्थानि च दाडिमानि वैकङ्कतान्येव पचेलिमानि ।
लघूनि सात्म्यानि च भेषजानि पथ्यानि मध्यज्वरिणाममूनि ॥ १७ ॥

एक वर्ष से अधिक पुराने साठी तथा शाली धान्य के चावल, आगमें भूँजा हुआ बैगन, सहजन की फलियाँ, करेला, विशेष कर जंगली करेला, वेत्राग्र (बेत का नया अंकुर, आषाढ फल (पलाशबीज) परबल, कर्कोटक (खेखसा), बालमूलक (कच्ची मुलायम मूली), पोय या पोई के पत्तों का शाक (यह वात- पित्त नाशक है), मूगं, मसूर, चना, कुलथी (गहत या घौत), मोठ, इन दालों का मात्र सूप, पाठा (पाठी या पाढी), गिलोय, बथुआ, चौलाई जीवन्ती (डोडी) तथा मकोय ये पत्र शाक हैं। किशमिश या मुनक्का, कंपित्थ (कैथ), दाड़िम (अनार), तथा वैकंकत (कंटाई) के पके हुए फल पथ्य होते हैं। लघु (सुपाच्य) पदार्थ एवं जो रोगी को सात्म्य (अनुकूल) हों ऐसे औषध द्रव्य मध्यम ज्वर रोगियों के लिये पथ्य होते है ॥ १५ -१७ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

द्वन्द्वजज्वरों में पथ्य

दाडिमामलमुद्गानां यूषश्चानिलपैत्तिके ।
ह्रस्वमूलकयूषेण योजयेत् कफवातिके ।
पटोलनिम्बयूषस्तु पथ्यः पित्तकफात्मिके ॥ १८ ॥
कफपित्तपरीतस्य ग्रीष्मेऽसृक्पित्तिनस्तथा ।
मद्यनित्यस्य न हिता यवागूस्तमुपाचरेत् ।
यूषैरम्लैरनम्लैर्वा जाङ्गलैर्वा रसैर्हितैः ॥ १९ ॥

वात-पित्त ज्वर में दाडिम (अनार) एवं आवला का रस और मूंग का यूष देना चाहिये, यह पथ्य होता है अथवा मूगं की दाल में अनार, ऑवला डालकर बनाया गया यूष रोगी को दें। कफ-वातज ज्वर में ह्रस्वमूलक (छोटी मुलायम मूली) का यूष पीने के लिये दें। ग्रीष्मऋतु (गर्मियों) में कफपित्तज तथा रक्तपित्त वाले रोगी को तथा जो प्रतिदिन मद्यपान करता हो, इस प्रकार के रोगियों को यवायू का सेवन न करायें। ऐसे रोगियों को अम्लपदार्थ (खटाई) से रहित अथवा अम्ल पदार्थों से युक्त मूंग आदि (उपर्युक्त) दालों का यूष दे अथवा जाँगलदेशीय प्राणियों के मांस रसों का सेवन करायें, ये पथ्य होते हैं ॥ १८–१९ ॥

वक्तव्य– पथ्यापथ्य व्यवस्था का विचार करते हुए अन्य ग्रन्थों का भी परिशीलन कर लेना चाहिये। अत एव यहाँ भैषज्यरत्नावली से कतिपय पथ्य निर्देशक पद्य उद्धृत किये जा रहे हैं–

'श्रमोपवासानिलजे हितो नित्यं रसौदनः ।
मुद्गयूषौदनश्चापि देयः कफसमन्विते ॥
स एव सितया युक्तः शीतः पित्तज्वरे हितः ।
रक्तशाल्यादयः शस्ताः पुराणाः षष्टिकैः सह ॥
यवाग्वोदनलाजार्थे ज्वरितानां ज्वरापहाः ।
मुद्गान्मसूरांश्चणकान्कुलत्थान्समकुष्ठकान् ॥
आहारकाले यूषार्थे ज्वरिताय प्रदापयेत् ।
पटोलपत्रं वार्ताकुं कुलकं काखेल्लकम् ॥
कर्कोटकं पर्पटकं गोजिह्वां बालमूलकम् ।
पत्रं गुडूच्याः शाकार्थे ज्वरिताय प्रदापयेत् ॥

पथ्य के सम्बन्ध में विशेष निर्देश– उसी पथ्य का निरन्तर सेवन करने से अथवा रुचिकर न होने से यदि उसके प्रतिरोगी को द्वेष हो गया हो तो उसी पथ्य को विविध प्रकार से बनाकर रोगी को दें, जिससे हितकर आहार के प्रति रोगी को रुचि होने लगे ।

पुराने ज्वर में पथ्य

विरेचनं छर्दनमञ्जनं च नस्यं च धूमोऽप्यनुवासनं च ।
शिराव्यधः संशमनं प्रदेहोऽभ्यङ्गोऽवगाहः शिशिरोपचारः ॥ २० ॥
एणः कुरङ्गो हरिणो मयूरो लावः शशस्तित्तिरिकुक्कुटौ च ।
क्रौञ्चः कुरङ्गः पृषतश्चकोरः कपिञ्जलो वर्त्तककालपुच्छौ ॥ २१ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गवामजायाश्च पयो घृतं च हरीतकीपर्वतनिर्झराम्भः ।
एरण्डतैलं सितचन्दनं च द्रव्याणि सर्वाणि पुरेरितानि ।
ज्योत्स्नाप्रियालिङ्गनमप्ययं स्याद्गणः पुराणज्वरिणां सुखाय ॥ २२ ॥

पुराने ज्वर वालों के लिये पथ्य द्रव्यों के गण का वर्णन किया जा रहा है– वमन, विरेचन, अंजन, नस्य, धूमपान, अनुवासन बस्तिप्रयोग, सिरावेध, संशमनकारक औषधों का प्रयोग, लेप, तेल मालिश, अवगाहन (द्रोणी अवगाहन– टब में बैठकर नहाना), विविध प्रकार के शीतल उपचार, एण (काला बारहसिंघा), कुलिंग (गौरैया), हिरन, मोर, लवा, खरगोश, तीतर, मुर्गा, क्रौञ्च (कुरर) पक्षी, ताँबा के रंग वाला हिरन, पृषत् (चित्तीदार हिरन), चकोर, कपिंजल (पपीहा) ,वर्तक (बटेर), कालपुच्छ (काली पूंछ का हिरण) इन प्राणियों का मांस, गाय अथवा बकरी का दूध तथा घी, हरीतकी, पहाड़ी झरनों का जल, एरण्ड का तेल, सफेद चन्दन, इस ज्वर प्रकरण में पहले कहे गये सभी पथ्य पदार्थ, चाँदनीरात तथा अपनी पत्नी का आलिंगन ये सभी पदार्थ ज्वर रोगियों को सुख प्रदान करते हैं ॥२०- २२ ॥

वक्तव्य– ज्वर चिकित्सा प्रकरण में जिन पथ्य द्रव्यों का वर्णन शास्त्रकारों ने इधर-उधर कहा है, उन सबका यहाँ संग्रह कर दिया गया है। सिरावेध करते या कराते समय रोगी के स्वास्थ्य का अवश्य ध्यान कर लेना चाहिये। यदि सिरावेध आवश्यक ही हो तो, इसे थोड़े-थोड़े दिनों का अन्तराल देकर कराएँ। इसे 'फस्त खुलवाना' भी कहा जाता है ।

संशमन परिभाषा– ' न शोधयति यद्दोषान् समान्नोदीरयत्यपि, शमीकरोति च क्रुद्धान् तत् संशमनमुच्यते' ॥ डल्हण सु. सू. ३९ ।७ की टीका। प्रस्तुत रोग को शान्त करना तथा अप्रस्तुत रोग को न उभाड़ने वाले पदार्थ संशमन होते हैं। इसी प्रसंग में सुश्रुत ने वात, पित्त, कफ दोषों के संशमनकारक औषध द्रव्यों का वर्णन भी किया है। देखें – सु.सू. ३९ ।७-९ । स्नान तथा शीतल उपचारों का प्रयोग भी चिकित्सक की देख रेख में करना, कराना चाहिये।

प्रियालिंगन– पुराणज्वरी अपनी प्रिया का मात्र आलिंगन करे। इसमें स्त्री सहवास पूर्णतया निषिद्ध है। पुराणज्वर परिचय हमने १४ वें श्लोक के वक्तव्य में दे दिया है।

अभिघातज तथा क्षतज ज्वर में पथ्य

अभिघातसमुत्थाने पानाभ्यङ्गौ च सर्पिषः ॥ २३ ॥
क्षतजे व्रणजे चापि क्षतव्रणचिकित्सितम् ॥ २४ ॥

अभिघातज (शरीर के अवयवों में चोट लगने अथवा मानसिक अभिघात से उत्पन्न) ज्वर में मात्रानुसार घृतपान तथा उसी का अभ्यंग (मालिश) लाभकारक होता है। क्षतज (तलवार आदि के कारण उत्पन्न) तथा व्रणज (फोड़ा की उत्पत्ति के समय होने वाले) ज्वर में क्षतज को भरने वाली तथा व्रणशामक चिकित्सा पथ्य (हितकर) होती है ॥ २३ -२४ ॥

वक्तव्य– 'अभिघात शब्द का अर्थ स्पष्ट है, अतः उसकी व्याख्या आवश्यक नहीं है। क्षतजे– क्षतज का अर्थ रक्त है। यथा– 'क्षतात्। जायते इति क्षतजः', जिस किसी कारण से शरीर में से रक्त निकले वह भले ही, तलवार, बन्दूक, भाला, आदि की चोट ही क्यों न हो वह 'क्षतज' है। व्रणजे– साधारण बोलचाल में 'व्रण' का अर्थ है– फोड़ा, यह जब उभरने लगता है, उस समय

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इसमें वात दोष के कारण पीड़ा ,पित्त दोष के कारण पाक और कफदोष के कारण पूय (मवाद) पैदा हो जाता है । इस काल में रोगी को ज्वर हो जाता है । इसकी शान्ति के लिये प्रारम्भ में विम्लापन (व्रण को बैठाने का उपाय) नहीं बैठा तो पुल्टिस आदि के प्रयोग से व्रण को पकाने के उपाय, तदन्तर पकजाने पर शोधन,रोपण आदि चिकित्सा इसमें हितकर होती है,गम्भीर व्रणों में तो पकजाने पर चीरा लगाकर पूय को निकलवाना भी पथ्य (चिकित्सा) है ।

औषधिगन्धज तथा विषमज्वर में पथ्य

औषधीगन्धविषजे विषपित्तप्रसाधनम् ॥ २५ ॥

औषधियों की गन्ध से तथा स्थावर विषद्रव्यों की गन्ध से उत्पन्न ज्वर में पित्तशामक तथा विषदोष शामक चिकित्सा हितकर होती है ॥ २५ ॥

वक्तव्य– चरक तथा सुश्रुत ने समस्त स्थावर एवं जंगम पदार्थों को 'औषधद्रव्य माना है'। देखें–च. सू. २६ ।१२ तथा सु. सू. ४१ ।५ ।, अतएव मधुकोषकार ने वृद्धसुश्रुत के वचन को इस प्रकार उद्धृत किया है –'तीव्रौषधिगन्धघ्राणजे', देखें –मा. नि. ज्वरप्रकरण। इसे सुश्रुत में भी देखें–'ओषधीपुष्पगन्धाच्च ...ज्वरो दोषैः प्रवर्तते'। सुउ. ३९ ।२१-२२ । इसकी टीका करते हुए आचार्य डल्हण लिखते हैं–'ओषधीशब्दस्यादौ । विषशब्दो लुप्तो द्रष्टव्यः'। इसके आगे पुनः वे लिखते हैं 'औषधीगन्धविषजौ विषपित्तप्रसाधनैः। सुउ. ३९ । २६८ । उक्त २५ वां पद्यार्ध सुश्रुत की पंक्ति से सर्वथा समान है ।

अभिचारादि ज्वरों में पथ्य

अभिचाराभिशापोत्थे जपहोमादि भेषजम् ॥ २६ ॥

मन्त्र-तन्त्र के प्रयोग से तथा गुरु,ब्राह्मण एवं पूज्यजनों के शाप से उत्पन्न ज्वर में जप,होम आदि शान्ति कारक प्रयोग पथ्य होते हैं ॥ २६ ॥

वक्तव्य– आज का वैज्ञानिक समाज अभिचार एवं अभिशाप को अपनी कसौटी पर कसकर देखना चाहता है। जब उसे इसका कोई प्रत्यक्ष प्रमाण दिखलायी नहीं देता तो वह इसे नहीं मानता। संयोगवश जब वह स्वयं इसके चक्कर में फँसजाता है, तब विवश हो जाता है । सच तो यह है कि इस विषय के ज्ञाता आज कम रह गये हैं और ढोंग करने वाले अधिक हो गये हैं । अत : एव समाज का विश्वास भी इस ओर से हटता जा रहा है ।

उत्पातादि ज्वर में पथ्य

दानस्वस्त्ययनातिथ्यैरुत्पातग्रहपीडजौ ॥ २७ ॥

उत्पात (संकट, भूचाल आदि आकस्मिक घटना) तथा ग्रहों (सूर्य आदि ग्रहों के संकटसे अथवा ग्रहण काल से उत्पन्न संकट) से उत्पन्न ज्वर में दानदेना,स्वस्तिवाचन कराना तथा अतिथियों का सत्कार करना पथ्य होता है ॥ २७ ॥

वक्तव्य– यह 'दैवव्यपाश्रय' चिकित्सा का क्षेत्र है , इसप्रकार की चिकित्सा का आश्रय आज का समाज उस स्थिति में लेता है, जब वह अन्य प्रकार की चिकित्सा विधियों से निराश हो जाता है। आयुर्वेद का मत है कि उत्पात तथा ग्रहपीड़ा से उत्पन्न न केवल ज्वर में अपितु सभी रोगों में उक्त चिकित्सा विधि का प्रयोग आरम्भ में ही कर लेना चाहिये।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कामादि से उत्पन्न ज्वर में पथ्य

कामशोकभयोद्भूते सर्वा वातहरी क्रिया ।
आश्वासनं चैव चेतोहर्षदायीनि यानि च ॥ २८ ॥
विशेषतः पुनश्चात्र कामक्रोधसमुत्थिते ।
भयशोकसमुद्भूते कामक्रोधोक्तमौषधम् ।
क्रोधोत्थिते पित्तहरं कामजे कामहृत्क्रिया ॥ २९ ॥

कामज, शोकज तथा भयज ज्वर में वातनाशक चिकित्सा का प्रयोग करना चाहिये, साथ ही रोगी को आश्वासन दें। यथा-कामज्वर में पति को पत्नी समागम का, पत्नी को पंति समागम का, शोकज्वर में–जिस कारण से शोक की उत्पत्ति हुई हो, उस-उस विषय की शीघ्र पूर्ति होने या करने का आश्वासन दें और भयजज्वर में–हम ऐसा उपाय करेंगे, कि अब तुम्हें उससे भयभीत होने की आवश्यकता नहीं है, इत्यादि और उसके हृदय को प्रसन्न रखने के जो भी सम्भव उपाय हों उन सबको करें, अब फिर से यहाँ उनकी विशेषचिकित्सा का वर्णन किया जा रहा है– काम, क्रोध, भय तथा शोक के कारण उत्पन्न ज्वर में चिकित्साशास्त्रों में वर्णित उन-उन औषध योंगों का प्रयोग करायें। विशेषरूप से क्रोधजज्वर में पित्तदोष शामक तथा नाशक चिकित्सा करें और कामजज्वर में काम के आवेग या आवेश को शान्त करने का उपाय करें ॥ २८-२९ ॥

वक्तव्य– काम, क्रोध, शोक, भय ये सभी मानसिक विकार हैं। चिकित्साशास्त्र में इन रोगों की गणना मानसिक रोगों में की गयी है। इनकी चिकित्सा का नाम है–'सत्त्वावजय', अर्थात् मन पर उस प्रकार का प्रभाव डालें, जिससे रोगी स्वयं स्वस्थ होने का प्रयत्न करने लगे, इसका चिकित्सा सूत्र गीता में इस प्रकार मिलता है–

'उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत् ।
आत्मैव ह्यात्मनोबन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः' ॥

कामज, क्रोधज आदि ज्वरों के निदान तथा लक्षण 'माधवनिदान' आदि ग्रन्थों में देखें। इन्हें देखकर आपको निर्णय करने में सुविधा होगी, इस प्रकार के रोग मानसिक असन्तुलन के कारण ही होते हैं। अतः जितात्मा पुरुषों में ये विकार होते ही नहीं हैं। किसी भी रोग की चिकित्सा रोग मुक्ति होने तक ही करनी चाहिये, उसके पश्चात् चिकित्साकालीन उन प्रयोगों को न करें, जैसे-कामजज्वर में कामनाशक क्रिया तथा मदात्यय रोग में मद की शांन्ति के लिये पुनः मद्य का पान, आदि, देखें–च. चि. ३ ।११५ तथा अ. हृ. नि. २ ।४२ ।

भूताभिषंगज आदि ज्वरों में पथ्य

भूताभिषङ्गजे भूतबन्धावेशनताडनम् ।
मनः क्षोभसमुत्पन्ने मनसः सान्त्वनानि च ॥ ३० ॥

भूतों (भूत, प्रेत, पिशाच दानव, शिव तथा शिव के गण, इन) में से किसी के साथ पूरा सम्पर्क होना या मेल होना या आसक्ति का होना, इसे भूताभिषंग कहते हैं। इन कारणों से उत्पन्न ज्वर में उस भूत को मन्त्र-तन्त्र द्वारा अपने बन्धन में डालना, यदि भूतावेशज ज्वर हो तो रोगी को मारना, पीटना या उसे त्रास देना या भयभीत करना और यदि मनकी अस्थिरता के कारण ज्वर उत्पन्न हुआ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हो तो उसके विचलित मन को समझाने बुझाने द्वारा उसे स्थिर करने का प्रयास करना ये सब उपाय उस उस ज्वर में पथ्य होते हैं ॥ ३० ॥

वक्तव्य— इसका वर्णन देखें—च.चि.३ ।११४ तथा अ.हृ.नि.२ ।४४ -४५, भूताभिषंग से न केवल ज्वररोग की ही उत्पत्ति होती है, अपितु इससे उन्मादरोग भी हो जाता है। यहाँ भूत शब्द से देव, दानव, गन्धर्व, यक्ष, पितर, सर्प, राक्षस, पिशाच आदि ग्रहों का ग्रहण किया जाता हैं। इनका परिचय सु.उ.६० ।२०-२२, में विस्तार से देखें। सुश्रुत विषय को स्पष्टकरते हुए लिखते हैं, यहाँ 'देव' शब्द से देवताओं के अनुचर अथवा उनके समान गुण-धर्म वालों का ग्रहण करना चाहिये, क्योंकि मनुष्य का शरीर अपवित्र होता है , अतः उसके साथ देवताओं का साक्षात् सम्बन्ध नहीं हो सकता। देखें —सु.उ.६० ।२१ । जो वैद्य अज्ञानतावश ऐसा कहते हैं कि इनका आवेश मनुष्यों के शरीरों में होता है, उन्हे भूतविद्या के विषय में अज्ञानी समझना चाहिये, क्योंकि देवगण कभी भी मनुष्यों के साथ उठते, बैठते नहीं (यद्यपि संवेश का अर्थ शयन करना होता है , किन्तु यहाँ उठना, बैठना या सहवास करना आदि का ग्रहण करलेना चाहिये) वास्तव में यहाँ 'संविशन्ति' का अर्थ है' आवेश करना ।

आगन्तुज ज्वरों में पथ्य

श्रमे क्षये च भुञ्जीत घृताभ्यक्तरसौदनम् ।
अध्वश्रान्तेषु चाभ्यङ्गं दिवा स्वप्नं च कारयेत् ॥
इत्यागन्तुज्वरे पूर्वैर्भिषग्भिः पथ्यमिष्यते ॥ ३१ ॥

अधिक परिश्रम करने के कारण तथा रस आदि धातुओं के क्षीण होने के कारण उत्पन्न ज्वर में घी मिलाकर मांस रस के साथ भात खाने के लिये दें। यह उक्त ज्वरों में पथ्य होता है। अधिक रास्ता चलने के कारण उत्पन्न ज्वर रोग में अभ्यंग (तेल की मालिश, उबटन) करना तथा दिन में शयन करना पथ्य होता है। इस प्रकार आगन्तुजज्वरों में प्राचीन आयुर्वेदविद् चिकित्सकों ने पथ्य का निर्देश किया है ॥ ३१ ॥

वक्तव्य— श्लोक २३ से ३१ तक के विविध आगन्तुज ज्वरों में तदनुसार पथ्य निर्देश किया गया है। पूर्वैर्भिषग्भिः— इस पद का अर्थ है—प्राचीन अर्थात् अनुभवी वैद्यों ने, सभी लोक-व्यवहारों में अनुभवी पुरुषों का सम्मान होता है। अतएव आयुर्वेदीय क्षेत्र में भी 'वृद्धवैद्योपदेश' का सर्वत्र सम्मान है। 'दिवास्वप्नं च कारयेत्—यद्यपि ग्रीष्मकाल के अतिरिक्त अन्य दिनों में दिन में नहीं सोना चाहिये, किन्तु यहाँ यह विशेष वचन है, अतएव उक्त परिस्थिति में दिन में सोना हितकर है, न कि हानिकर।

सतत या विषम ज्वरों में पथ्य

सततं विषमं चापि क्षीणस्य सुचिरोत्थितम् ।
ज्वरं सम्भोजनैः पथ्यैर्लघुभिः समुपाचरेत् ॥ ३२ ॥
मुद्गान् मसूरांश्चणकान् कुलत्थान् समकुष्ठकान् ।
आहारकाले यूषार्थं ज्वरिताय प्रदापयेत् ॥ ३३ ॥
लावान् कपिञ्जलानेणान् पृषतान् शरभान् शशान् ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कालपुच्छान् कुरङ्गांश्च तथैव मृगमातृकान् ॥
मांसार्थे मांससात्म्यानां ज्वरितानां प्रदापयेत् ॥ ३४ ॥

रस आदि धातुओं के क्षीण हो जाने के कारण तथा चिरकाल से उत्पन्न सतत अथवा विषम ज्वर में हलके (सरलता से पचजाने वाले) पथ्य (हितकर) भोजनों को खिलाकर चिकित्सा करनी चाहिये। पथ्य एवं लघु पदार्थ–मूगां, मसूर, चना, कुलथी, मोठ, इनका यूष बनाकर भोजन के समय पीने के लिये रोगी को दें या दिलायें, मांससात्म्यानां–जिन्हें मांस भक्षण या मांसरस का सेवन अनुकूल होता हो, ऐसे सतत या विषमज्वर रोगियों को निम्नलिखित प्राणियों का मांस खाने के लिये दिलायें। लावा, तीतर, कालाहरिण, चितकबराहरिण, शरभ, (आठ पैरों वाला हरिण), खरगोश, कालीपूँछ वाला हरिण, कुरङ्गः ईषत्ताम्रः स्याद्धरिणाकृतिको महान्। आप्टे तथा मृगियों के मांसो को दें ॥ ३२–३४ ॥

वक्तव्य– अन्यत्र पथ्यापथ्य प्रकरण में एक पद्य इसप्रकार मिलता है–'मुद्गान् मसूरांश्चवाणकान् कुलत्थान् समकुष्ठकान्, यूषार्थं यूषसात्म्यानां ज्वरितानां प्रदापयेत् ॥

महर्षि वाग्भट ने सन्तत, सतत, अन्येद्युष्क,तृतीयक तथा चतुर्थक इन पाँचों को विषमज्वर का ही भेद माना है। देखें – अ.हृ.नि.२ ।५७। इस दृष्टि से इन सब की संज्ञा मात्र को विषमज्वर मानना चाहिये। अथवा सन्तत आदि सभी विषमज्वरों में उक्त पथ्यों का प्रयोग करना चाहिये। सुश्रुत ने इन ज्वरों के जो मौलिक भेद दिये हैं, उन पर चिकित्सा अथवा पथ्य विधान के पूर्व विचार कर लेना परम आवश्यक है, रस धातु पर आश्रित दोष 'सन्ततज्वर' को रक्तधातु पर 'सततज्वर' को, मांसधातु पर आश्रित दोष 'अन्येद्युष्कज्वर' को मेदो धातु पर आश्रित दोष 'तृतीयकज्वर' को और मज्जा तथा अस्थि धातु पर आश्रित दोष 'चतुर्थ कज्वर' को उत्पन्न कर देता है। देखें– सु.उ. ३९ ।६७। साहित्यिक दृष्टि से सतत तथा सन्तत ये पर्यायवाची शब्द माने गये हैं, यदि हम उक्त पथ्यों का विषमज्वरों में प्रयोग करेंगे तो थोड़ा इनमें तर-तम भेद से कुछ अन्य पदार्थों का मिश्रण करना होगा, जिसका निर्णय यथावसर किया जा सकता है। मूंग आदि दालों को तथा लाव आादि प्राणियों को जांगल देश से लेना चाहिये।

पथ्यापथ्य में मतभेद

सारसक्रौञ्चशिखिनः कुक्कुटांस्तित्तिरींस्तथा।
गुरूष्णत्वान्न शंसन्ति ज्वरे केचिच्चिकित्सकाः ॥ ३५ ॥

सारस, कुररपक्षी, मोर, मुर्गा, तथा तीतर के मांस, गुरु (देर में पचने वाले) एवं उष्ण वीर्य वाले होते हैं। अतः कुछ चिकित्सक इनको ज्वर रोगी के लिये अपथ्य समझकर इनका निषेध करते हैं ॥ ३५ ॥

वक्तव्य– अन्यत्र उक्त पाठ इस प्रकार उपलब्ध होता है–

'कुक्कुटाँश्च मयूरांश्च तित्तिरक्रौञ्चवर्तकान्।
गुरूष्णत्वान्नशंसन्ति ज्वरे केचिच्चिकित्सकाः ॥'

इस पद्य में वर्तक (बटेर) का अधिक ग्रहण हुआ है। जब कि इसके गुण-धर्मों का वर्णन भावमिश्र ने इस प्रकार किया है– 'वर्तकोऽग्निकरः शीतो ज्वरदोषत्रयापहः'। भा.प्र.मांसवर्ग।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वास्तव में रोगी की वर्तमान स्थिति को देखकर अनुभवी चिकित्सक तत्काल जिस पथ्य का निर्देश करता है, वह अधिक समीचीन होता है और पथ्य के अतिरिक्त अन्य पदार्थ अपथ्य होते हैं।

उक्त मांसों का सहेतुक समर्थन

ज्वरितानां प्रकोपं तु यदा याति समीरणः ।
तदैतेऽपि हि शस्यन्ते मात्राकालोपपादिताः ॥ ३६ ॥

जब ज्वर रोगियों का वातदोष प्रकुपित हो जाता है, तब उक्त सारस आदि पक्षियों का मांस अथवा मांसरस उचित मात्रा में उचित समय (भोजन काल) पर देना चाहिये, वह पथ्य होता है ॥३६ ॥

वक्तव्य– उक्त पद्य का ही आशय हमें निम्न पद्य में प्राप्त हो रहा है –

'लङ्घनेनानिलबलं ज्वरे यद्यधिकं भवेत् ।
भिषङ्मात्राविकल्पज्ञो दद्यात् तानपि कालवित् ॥'

उक्त पद्य की अपेक्षा यह पद्य अधिक युक्तियुक्त है। ध्यान दें–वात दोष के प्रकोप में यहां अति लंघन को कारण माना गया है, शेष श्लोक समानार्थक है, मात्रा तथा काल का विचार करने वाला चिकित्सक इस स्थिति में उक्त मांसों का प्रयोग करा सकता है, क्योंकि गुरु तथा उष्ण गुणवाले पदार्थ वात दोष का शमन करते हैं।

ज्वर में पत्रशाक प्रयोग

बालमूलकवास्तूकतण्डुलीयकपर्पटान् ।
तिक्तशाकं पटोलं च गुडूची पल्लवान्यपि ॥ ३७ ॥
मारिषं निम्बपत्रं च कालशाकं च दार्विकम् ।
चाङ्गेरी चापि जीवन्ती माचिकास्यान्निषण्णकैः ॥
पत्रशाकप्रियाणां च ज्वरितानां प्रदापयेत् ॥ ३८ ॥

जिन ज्वर रोगियों को पत्रशाक अच्छे (रुचिकर) लगते हों, उन्हें निम्नलिखित शाकों को पथ्य के रूप में सेवन करायें। कोमल मूली के पत्ते, बथुआ, चौलाई, पितपापड़ा, तिक्तशाक, (वरुणवक्ष की पत्तियाँ, पर्यायमुक्तावली), पत्र सुंदर वृक्ष की पत्तियाँ, (मेदिनी कोष), खैर वृक्ष की पत्तियाँ, (त्रिकाण्डशेष कोष), परबल की पत्तियाँ, गुरुच या गिलोय की नयी पत्तियाँ, मरसा, का शाक, नीम की पत्तियाँ, काल शाक (नाड़ी का शाक), दार्विक (दार्वी पत्रिका (गोभी) शाक), चांगेरी (लोनियाँ शाक), जीवन्ती, काली मकोय, निषण्णक (चौपतिया इसी को सुनसुनिया शाक भी कहते हैं) ॥३७-३८ ॥

वक्तव्य– आयुर्वेद में ६ प्रकार के शाकों का उल्लेख मिलता है, यथा–१.पत्र, २.पुष्प, ३.फल, ४.नाल, ५.कन्द तथा ६.संस्वेदज। इनके सामूहिक गुणों का वर्णन इस प्रकार है–

'प्रायः शाकानि सर्वाणि विष्टम्भीनि गुरूणि च। रूक्षाणि बहुवर्चांसि सृष्टविण्मारुतानि च ॥ शाकं भिनत्ति वपुरस्थि निहन्ति नेत्रं वर्णं विनाशयति रक्तमथापि शुक्रम् । प्रज्ञाक्षयं च कुरुते पलितं च नूनं हन्ति स्मृतिं गतिमिति प्रवदन्ति तज्ज्ञाः॥ ३ ॥ शाकेषु सर्वेषु वसन्ति रोगास्ते हेतवो देह-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विनाशनाय। तस्माद् बुधः शाकविवर्जनन्तु कुर्यात्तथाऽम्लेषु स एव दोषः॥ भा. प्र. शाकवर्ग ।

इस प्रकार भावप्रकाश में सामान्य पत्र शाकों का वर्णन मिलता है । यह सृष्टि गुण दोषमयी है। अत एव उन्हें सामान्य वचन समझना चाहिये, विशेष गुणों का निर्देश आगे किया है, उनका भी अवलोकन करें।

पथ्यापथ्य विवेचन करते समय चरक सूत्रस्थान अध्याय २५ में कहे गये हिततम तथा अहिततम पदार्थों का भी विवेचन करलेना चाहिये, साथ ही निम्न पद्य का भी अनुसन्धान इस प्रसगं में अवश्य करलें

'किञ्चिद्दोषप्रशमनं किञ्चिद्धातुप्रदूषणम् ।
स्वस्थवृत्तौ मतं किञ्चित्त्रिविधं द्रव्यमुच्यते '॥ (च.सू.१ ।६७)

इसमें 'किंचित्' शब्द का तात्पर्य यह है कि वह द्रव्य पूर्णरूपेण दोष या दोषों का शामक नहीं होता अपितु अपनी शक्ति के अनुसार वह कार्य करता है। यहाँ दोष शब्द से दोषों द्वारा दूषित रसादि धातुओं का भी ग्रहण कर लेना चाहिये। यह स्थिति धातु प्रदूषण तथा स्वस्थवृत्त के सम्बन्ध में भी है, इस दृष्टि से प्रत्येक द्रव्य तीन प्रकार का प्रभाव दिखलाता है, महर्षि चाणक्य के अनुसार सभी पत्र शाक अग्राह्य हैं, अर्थात् वे रोग कारक हैं, यथा-'शाकेन रोगा वर्द्धन्ते',। व्याकरण सम्प्रदाय में एक राजा था, जिसे सभी शाक अत्यत्न प्रिय थे, अतएव उसका नाम था- 'शाकपार्थिव'। देखें-सूत्र सं.७३९ की व्याख्या में वार्तिक 'शाकपार्थिवादीनां सिद्धये.', आगे श्लोक में पत्रशाकों के सेवन का निषेध भी किया है।

ज्वर में फलशाक प्रयोग

वृन्ताकं पीलुकर्कोटपटोलं कारवेल्लकम् ।
फलशाककृते देयं सर्वं निःस्नेहमेव च ॥ ३९ ॥

बैगन, (भंटा), पीलु, ककोड़ा, परबल, करेला, फलों का शाक जिन्हें प्रिय हो, उन रोगियों को इनका शाक स्नेह रहित पकाकर देना या दिलाना चाहिये ॥ ३९ ॥

वक्तव्य— अन्यत्र पत्र तथा फल शाकों की पथ्य के लिये गणना एक साथ की हुई इस प्रकार मिलती है- 'पटोलपत्रं वार्ताकुं कुलकं कारवेल्लकम् । कर्कोटकं पर्पटकं गोजिह्वां बालमूलकम्। पत्रं गुडूच्याः शाकार्थं ज्वरितानां ज्वरापहम्' ॥ पत्रशाक- परबल के कोमल पत्ते, पित्तपापड़ा, गाजवाँ, मूली की कोमल पत्ती तथा गिलोय के पत्ते। फलशाक-बैगन, कुलक (यह अनिर्णीत है, वै. श. सिन्धु कोष में इसके अनेक पर्याय दिये हैं, जिनमें-मरुबकवृक्ष (दौना या दवना का शाक) अथवा परबल की लता लिखा है, इन दृष्टियों से इसकी गणना पत्रशाक में करनी चाहिये, भावमिश्र ने दमनक के नामों में एक नाम 'कलपत्रक' दिया है तथा 'पटोल' के पर्यायों में 'कुलक' शब्द का स्पष्ट उल्लेख है। शाक में मीठे परबल के फलों का उपयोग होता है, इसकी एक वन्य जाति भी पायी जाती है जो स्वाद में तिक्त होती है, चिकित्सा में इसी के पंचाग का अधिकांश प्रयोग होता है, करेला के फल, ककोड़ा, बालमूली (कोमलमूली) ।

अब विचारणीय यह है, कि 'पटोलपत्रं' से परबल के पत्ते और 'कुलकं' से परबल के फल

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लेना यही अर्थ प्रसंगोचित होगा, अन्यथा दोनों समानार्थक शब्दों के प्रयोग की क्या आवश्यकता थी ?

ज्वरों में दैवव्यपाश्रय चिकित्सा

विष्णोर्नामसहस्रस्य पठनं श्रवणं श्रुतेः ।
देवानां ब्राह्मणानां च गुरूणामपि पूजनम् ॥४० ॥
ब्रह्मचर्यं तपो होमः प्रदानं नियमो जपः ।
साधूनां दर्शनं सत्यं रत्नौषधिविधारणम् ॥
मङ्गलाचरणं चेति वर्गः सर्वान् ज्वरान् जयेत् ॥ ४१ ॥

सभी प्रकार के ज्वरों में पथ्य– विष्णुसहस्रनाम का पाठ करना, वेदपाठ को सुनना (यहाँ दोनों का स्वयं पाठ करना अथवा ब्राह्मणों से पाठ करवाकर उन्हें ध्यान से सुनना यह अर्थ कर लेना चाहिये) देवता, ब्राह्मण तथा गुरु (पूज्य) जनों की पूजा (स्वागत, सम्मान, प्रणाम) करना, ब्रह्मचर्य, तप, होम, यथाशक्ति दान, नियम, जप, साधुओं, सन्तों का दर्शन, सत्यभाषण करना, औषध द्रव्यों तथा रत्नों को धारण करना एवं सदा मंगलकारक आचरण करना, इन शुभ कर्मों से सभी प्रकार के ज्वरों की शान्ति हो जाती है ॥ ४०-४१ ॥

वक्तव्य– इन कर्मों के प्रति जिसकी आस्था तथा श्रद्धा होती है, उसी को इनशुभ कर्मों का प्रतिफल मिलता है, न कि नास्तिकों को, किन्तु जब अपने प्राणों पर संकट आ जाता है, तब नास्तिक भी आस्तिक होते देखे गये हैं, उक्त विषयों के आचरण का जो प्रभाव होता है, उसी से रोग शान्ति होती है । अतः यहाँ प्रभाव का परिचय प्रस्तुत किया जा रहा है ।

प्रभाव का वर्णन– जिस प्रकार रस, गुण, वीर्य, विपाक में 'बड़हल' नामक फल 'आँवला' के समान त्रिदोष नाशक होता है और उसी के समान कहा गया 'बड़हल' आँवला के समान त्रिदोषनाशक नहीं होता, ऐसा क्यों ? इसका उत्तर है– यह आँवला का अपना प्रभाव है, कहीं यह भी देखा जाता है कि केवल कोई द्रव्य अपने प्रभाव से ही कार्य कर डालता है । यथा– सहदेवी की जड़ को सिर पर बाँध देने मात्र से वह ज्वर को नष्ट कर देती है, यह प्रभाव केवल औषध द्रव्यों में ही नहीं पाया जाता अपितु मणि, मन्त्र आदि को धारण करने से, देवता, गुरु, माता, पिता, सन्तों तथा महापुरुषों के आशीर्वचनों में भी आस्तिक बुद्धि रखने से देखा, सुना एवं पाया जाता है ।

यह प्रभाव प्रयोगशाला में परीक्षण का विषय नहीं है और न अन्धविश्वास का ही विषय है । इसकी विशेष जानकारी के लिये च. सू. २६ । ६७-७२ तथा सु. सू. ४० । १९-२१ तक देखें ।

प्रभाव का लक्षण– जहाँ दो या उससे अधिक द्रव्यों में रस (गुण), वीर्य, विपाक की समानता देखी जाय (जैसा कि ऊपर कहा गया है, किन्तु उनके कर्मों में परस्पर विशेषता हो, वह उस द्रव्य का 'प्रभाव' ही माना जाता है, धारण करने योग्य हीरा, नीलम, पुखराज आदि मणियों को धारण करने पर जो विविध प्रकार के शुभ-अशुभ फल देखे जाते हैं, वह उन मणियों का ही प्रभाव है । अतएव प्रभाव को 'अचिन्त्य' कहा गया है । ठीक यही स्थिति यहाँ उक्त विष्णुसहस्रनाम आदि के प्रभाव की भी है, वैदिककाल में जंगिड़ आदि स्थावर मणियों के प्रभाव की भी ऐसी ही चर्चा है ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ज्वर में अपथ्य

अधिवासनकर्म्माणि रक्तस्रग्वस्त्रधारणम् ।
वमिवेगं दन्तकाष्ठमसात्म्यमतिभोजनम् ॥ ४२ ॥
विरुद्धान्यन्नपानानि विदाहीनि गुरूणि च ।
दुष्टाम्बुक्षारमम्लानि पत्रशाकं विरूढकम् ॥ ४३ ॥
नलदाम्बु च ताम्बूलं कालिन्दं लैकुचं फलम् ।
ओडीमत्स्यं च पिण्याकं छत्रकं पिष्टवैकृतम् ।
अभिष्यन्दीनि चैतानि ज्वरितः परिवर्जयेत् ॥ ४४ ॥

अधिवासनकर्म (अपने शरीर, वस्त्र तथा केश आदि को सुगन्धित पदार्थोंको सुवासित करना), लाल फूलों की माला तथा लालवर्ण के वस्त्रों को धारण करना, वमन के उत्पन्न वेग या वेगों को रोकना, दातून करना, अपनी प्रकृति के प्रतिकूल तथा अधिक भोजन करना, विरुद्ध आहारों तथा पेयों का सेवन करना, विदाहकारक तथा गुरु (देर में पचने वाले) आहारों का सेवन करना, दूषित जल को पीना, क्षार पदार्थों, अम्ल पदार्थों, पत्रशाकों, चना आदि, अंकुरित अन्नों का सेवन न करें, खस का जल (यह शीतल होता है), पान का सेवन, तनबूज, बड़हर, ओडी नामक मछली, तिल की खली, छत्रक (संस्वेदज शाक-खुमी, अंगरेजी में -मशरूम), पीठी द्वारा बनायें गये खाद्य पदार्थ तथा अभिष्यन्द कारक (दोष, धातु, मल तथा स्रोतों को गीला करने वाले) आहार पदार्थों का ज्वर रोगी सेवन न करे ॥ ४२-४४ ॥

वक्तव्य— अधिवासनकर्म, लालमाला तथा लाल वस्त्रों को धारण करने का रोगी पर दुष्प्रभाव पड़ता है। ये शृंगार साधन स्वस्थ अवस्था में किये जाते हैं। लाल माला आदि का धारण रंग-विरंगे माला या वस्त्रों का उपलक्षण मात्र है। इसीप्रकार प्रयुक्त 'वमिवेगं' शब्द अधारणीय सभी प्रकार के वेगों का प्रतिनिधिस्वरूप है, इनको नहीं रोकना चाहिए, विरुद्ध अन्नपान– इनकी विस्तृत जानकारी के लिये देखें– च.सू. २६ ।८०-८१ । गुरूणि इसके लिये देखें– 'गुरूणाम-र्धसौहित्यं' । च. सू.५ ।७ । पत्रशाकं– इसका परिचय इसी ग्रन्थ के श्लोक ३७ तथा ३८ में दिया है। शास्त्रीय वचनों का लोकव्यवहार में समन्वय स्थापित करना पड़ता है, अन्यथा सामञ्जस्य नहीं बैठेगा, चरक ने जिन पदार्थों को 'अहिततम' कहा है, उनका भी प्रयोग जहाँ होता है और जो करते हैं, उन्हें वे पदार्थ सात्म्य हो जाते हैं, अतएव हानि नहीं करते, दूसरे लोगों को वे हानि पहुँचाते ही हैं।

विरूढकम्— अंकुरित चना, मोठ, मूंग, गेहूँ आदि अन्नों के सेवन का यहाँ निषेध किया है । अष्टांगहृदयनिदानस्थान, अध्याय २ ।८ तथा सु. उ. ४२ ।७८ । में भी इसके सेवन से पेट में क्रिमियों की उत्पत्ति हो जाती है, लिखा है।

ज्वरमुक्त होने पर अपथ्य

व्यायामं च व्यवायं च स्नानं चङ्क्रमणानि च ।
ज्वरमुक्तो न सेवेत यावन्नो बलवान् भवेत् ॥ ४५ ॥

ज्वर रोग से मुक्त हो जाने पर भी जब तक पुरुष (स्त्री आदि) पूर्ण स्वस्थ न हो जाय तब तक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वह व्यायाम (किसी प्रकार का भी शारीरिक परिश्रम), व्यवाय (स्त्री सहवास, स्त्री हो तो पुरुष सहवास), स्नान तथा चंक्रमण (इधर-उधर घूमना), इनका सेवन न करें ॥ ४५ ॥

वक्तव्य— उक्त पद्य अन्यत्र भी देखा जाता है। इसके अतिरिक्त ज्वरमुक्त रोगी को, स्नान नहीं करना चाहियें, इसमें कारण दिया हुआ है, यदि उक्त रोगी स्नान करने लगता है तो उसे पुनः ज्वर हो जाता है, इसलिये वह स्नान न करे, इतना ही नहीं, जब तब बल, वर्ण, जठराग्नि तथा शरीर की स्थिति स्वाभाविक रूप में न हो जाय तब तक ज्वरकाल में जो अपथ्य कहे गये हैं, उन सब का परहेज करे। रोग मुक्ति के बाद स्नानमुहूर्त ज्योतिषी से पूछें अथवा स्वयं देखें– मुहूर्तचिन्तामणि 'नक्षत्र प्रकरण, श्लोक ४० ।

ज्वर में सामान्य पथ्य— ज्वर में यवागू, भात तथा खील (लाई) बनाने के लिये पुराने लाल चावल और साठी के चावलों का प्रयोग करना चाहिये, क्योंकि ये सभी ज्वरनाशक होते हैं।

वातजज्वर में पथ्य— किसी प्रकार के परिश्रम, उपवास (लंघन) तथा वातदोष के कारण उत्पन्न ज्वर में रोगी को मांसरस के साथ भात खाने के लिये दें।

पित्तजज्वर में पथ्य— इसमें मूंग के यूष के साथ पुराने चावलों के भात में मिश्री मिलाकर उसे कुछ शीतल हो जाने पर रोगी को दें।

कफजज्वर में पथ्य— मूंग के यूष के साथ पुराने चावलों का भात खाने के लिये रोगी को दें।

द्वन्द्वजज्वरों में पथ्य— वातपित्तजज्वर में मूंग तथा आँवलों का यूष हितकर होता है। कफवातज ज्वर में छोटी मूली का यूष पीने के लिये दें और पित्तकफज्वर में नीम तथा तिक्त परबल की पत्तियों का यूष बनाकर रोगी को दें, ये पथ्य होते हैं।

ज्वर में पथ्य की आवश्यकता— खाने के प्रति रुचि हो या न हो किन्तु भोजन के समय में रोगी को हितकारक पदार्थ अवश्य दें, वह उन्हें खाये, क्योंकि भोजन के समय में कुछ न खाने से या तो रोगी क्षीण हो जाता है, अथवा मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। इन अंशो के लिये आप 'चक्रदत्तज्वरचिकित्सा' प्रकरण देखें।

ज्वरातिसार— इस रोग में ज्वर तथा अतिसार, में कहे गये पथ्यों का उस प्रकार सेवन करना चाहिये, जिस प्रकार इनकी सम्मिलित चिकित्सा की जाती है, ज्वर रोग के पथ्यों का परिस्थिति के अनुसार उक्त प्रकरण में वर्णन कर दिया गया है, अतिसार रोग के पथ्यों की चर्चा अगले प्रकरण में प्रस्तुत है।

अतिसार रोग में पथ्य

वमनं लङ्घनं निद्रा पुराणाः शालिषष्टिकाः ।
विलेपी लाजमण्डश्च मसूरतुवरीरसः ॥४६॥
शशैणलावहरिणकपिञ्जलभवा रसाः ।
सर्वे क्षुद्रझषाः शृङ्गी खुड्डीशो मधुरालिका ॥ ४७ ॥
तैलं छागघृतक्षीरे दधि तक्रं गवामपि ।
दधिजं वा पयोजं वा नवनीतं गवाजयोः ॥ ४८ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नवं रम्भापुष्पफलं क्षौद्रं जम्बुफलानि च ।
भव्यं महार्द्रकं विश्वं शालूकं च विकङ्कतम् ॥ ४९ ॥
कपित्थं बकुलं बिल्वं तिन्दुकं दाडिमद्वयम् ।
तालकं कञ्चटदलं चांगेरी विजयारुणा ॥ ५० ॥
जातीफलं च ह्रीवेरं जीरकं गिरिमल्लिका ।
कुस्तुम्बुरु महानिम्बः कषायः सकलो रसः ॥ ५१ ॥
अन्नपानानि सर्वाणि दीपनानि लघूनि च ।
नाभेर्द्व्यङ्गुलतोऽधस्तात्शस्त्रेणार्द्धशशाङ्कवत् ।
दाहो वंशास्थिमूले च पथ्यवर्गोऽतिसारिणाम् ॥ ५२ ॥

वमन कराना (यह विलोम चिकित्सा है), लंघन कराना (यह संमन चिकित्सा है), दिन में सोना (यह पाचन चिकित्सा है), पुराने शालीधान्यों तथा साँठी धान्यों का प्रयोग, विलेपी, लाजमण्ड (खीलों को उबालकर इनका माँड पीना), मसूर तथा अरहर की दालों का जूस, खरगोश, काला हिरन, लवा पक्षी, हिरन, कपिञ्जल (तीतर), इनके मांस रस, सभी प्रकार की छोटी मछलियाँ, सिंगी मछली, खुड्डीश मछली, मधुरालिका मछली इनका अथवा इनमें से किसी एक का मांस रस, तेल (तिल का), बकरी का घी तथा दूध, गाय का दूध, दही, घी तथा मट्ठा, गाय अथवा बकरी के दूध या दही से निकाला गया नवनीत (मक्खन), केला के वृक्ष के नये फूल, फल, मधु (शहद), जामुन के फल, लिसोढ़ा, अदरख, सोंठ, भसींडा (कमल का कन्द), विकंकत (कंटाई), कैथ, मौलासिरी की छाल, कच्चे बेल की गिरी, तेंदू, दोनों दाड़िम (खट्टा छोटा, बड़ा अनार), ताड़ का फल, कंचटदल (जल चौलाई), लोनियाँ शाक, भाँग,मजीठ, जायफल, सुगन्धबाला, जीरा, कुरैया की छाल, नेपाली धनियाँ (तिमूर के बीज), बकायन इन सबका क्वाथ अथवा स्वरस, अग्निवर्धक तथा सुपाच्य, सभी प्रकार के आहार तथा पेय पदार्थ, नाभि से दो अंगुल नीचे तथा पृष्ठवंश की हड्डी के मूल भाग में शस्त्र से अर्धचन्द्र के समान दाग देना ये सभी अतिसार रोगियों के लिये पथ्य हैं ॥ ४६–५२ ॥

वक्तव्य— अतिसार के मूलतः छः भेद होते हैं– (१). वातज, (२). पित्तज, (३) कफज, (४). सन्निपातज, (५). शोकज तथा (६). आमज, यह चरक का मत है, सुश्रुतोक्त शोकज अतिसार अत्यन्त दुःसाध्य माना गया है। इसमें दोनों की सम्प्राप्तियाँ भिन्न-भिन्न हैं, इसी दृष्टि से पथ्य-अपथ्य का भी विवेचन कर लेना चाहिये, इसका एक सूत्र है– 'द्रवमन्नमतीसारी----वर्जयेत्', इस का अभिप्राय है, 'लाजमण्ड' चक्रदत्तोक्त पानीयत्रय तथा षडंगपानीय आदि द्रवों को छोड़कर अन्य सामान्य द्रव पदार्थों का सेवन नहीं करना चाहिये। चक्रपाणि ने चक्रदत्त में वातकफजअतिसार तथा वातपित्तज अर्थात् द्वन्द्वज अतिसारों के पथ्यक्रम का भी निर्देश किया है, इन पर भी पथ्यविचार काल में ध्यान देना चाहिये ।

उदर रोगों में पेया

अम्बष्ठादिमधुयुतं पिप्पल्यादिसमन्वितम्
पृश्निपर्णीबलाबिल्वबालकोत्पलधान्यकैः ॥
सनागरैः पिबेत् पेयां साधितामुदरामयी ॥ ५३ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अम्बष्ठादिगण के द्रव्यों के क्वाथ रस में से पेया तयारकर उसमें मधु मिलाकर अतिसार के रोगी को दें अथवा पिप्पल्यादिगण के द्रव्यों के क्वाथ रस से पेया तयार कर उसमें मधुमिलाकर उक्त रोगी को दें अथवा पिठवन, खिरेटी, बेलगिरी, नेत्रवाला, नीलकमल, धनियाँ तथा सोंठ द्रव्यों के क्वाथ रस द्वारा बनयी गयी पेया उदर (अतिसार) रोगी को दें, यह पथ्य होती है ॥ ५३ ॥

वक्तव्य— उक्त पद्य के अर्थ को स्पष्ट करने के लिये यहाँ दो गणों को कहा जा रहा है।

अम्बष्ठादिगण— अम्बष्ठा (पाठा), मुलेठी, लाजवन्ती, पारस पीपल, पलाश, धमासा, लोध, धाय के फूल, कच्चे बेल की गिरी, सोनापाठा, कमल का केसर, यह गण पक्व अतिसारनाशक तथा पित्तविकारों में हितकर है। देखें— अ.हृ. सू. १५ ।३८-३९ ।

पिप्पल्यादिगण— पिप्पली, पिप्पलीमूल, चव्य, चित्रक, नागर, कालीमिर्च, गजपिप्पली, हरेणुका, बड़ी इलायची, अजमोद, इन्द्रजौ, पाठा, जीरा, सरसों, महानिम्बफल, हींग, भार्गी, मूर्वा, अतीस, वच, वायविडंग, कुटकी, यह कफदोषनाशक, तथा आमपाचन है। देखें–सु. सू. ३८। २२-२३ ।

आमपरिचय—

'जठरानलदौर्बल्यादविपक्वस्तु यो रसः।
स आम संज्ञको देहे सर्वदोषप्रकोपकः' ॥

पेया परिभाषा— आहार द्रव्य से चौदह गुने पानी द्वारा तयार की गयी अत्यन्त पतली थोड़ी सी सीठी से युक्त पेय द्रव को विद्वान् लोग पेया करते हैं।

अतिसार नाशक यवागू

**अरलुत्वक्प्रियंगुश्च मधुकं दाडिमाङ्कुरान् ।
आबाध्य पिष्ट्वा दधनि यवागूं साधयेद्द्रवाम् ।
एषा सर्वानतीसारान् हन्ति पक्वा न संशयः ॥ ५४ ॥**

सोनापाठा की छाल, फूलप्रियंगु, मुलेठी, दाड़िम वृक्ष के सुकोमल अंकुर इन सबको समान मात्रा में लेकर कूट-पीसकर दही के घोल में मिलाकर पतली यवागू (खिचड़ी) पकाकर तैयार करें। इस यवागू का सेवन सभी प्रकार के अतिसारों को नष्ट करती है, इसमें सन्देह नहीं है ॥ ५४ ॥

वक्तव्य— 'आबाध्य पिष्ट्वा दधनि' पद्यांश व्याकरण की दृष्टि से शुद्ध होने पर छन्दः शास्त्र की दृष्टि से दोषपूर्ण है। यदि उक्त पाठ को 'आपोथ्य दध्नि सञ्चूर्ण्य कर दिया जाय तो अर्थ की अक्षुण्णता रहकर छन्दोदोष का निराकरण हो जायेगा।

यवागू निर्माण विधि— ऊपर दिये गये पद्य द्वारा इसकी निर्माणविधि स्पष्ट नहीं हो रही है, आहार द्रव्य (चावल आदि) की अपेक्षा छः गुना अधिक जल डालकर 'यवागू' का पाक किया जाता है, इसे पतली खिचड़ी कहा जाता है, उक्त विधान में चावल, दाल, (मूंग या उड़द या तिल) की मात्रा निश्चत करने का भार चिकित्सक अथवा परिचारक पर छोड़ दिया जाता है, इसमें जो पानी डाला जाता है, उसे पहले अतिसारनाशक औषध द्रव्य डालकर पका लेना चाहिये ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अतिसार में क्वथित जल पथ्य

दशांशं षोडशांशं वा शतांशं वा श्रृतं जलम् ।
सुशीतं पाचनं ग्राहि दीपनं दोषनाशनम् ॥ ५५ ॥
यथा यथा श्रृतं तोयमतीसारी च यः पिबेत् ।
तथा तथा लभेत्सौख्यमारोग्यं तु तथैव च ॥ ५६ ॥

पानी को पकाते-पकाते जब वह दशांश (दसवाँ हिस्सा), सोलहवाँ हिस्सा, सौवाँ हिस्सा शेष रह जाय तब उसे उतार कर छान लें, यह जल दोषपाचक, पतले मल को बाँधने वाला, जठराग्नि को प्रदीप्त करने वाला, वात आदि दोषों का नाशक होता है। जैसे-जैसे अधिक खौलाये (औटाये) हुए जल को जो अतिसार का रोगी पीता है, वैसे-वैसे उस रोगी को शारीरिक सुख एवं स्वास्थ्य लाभ होता है ॥ ५५-५६ ॥

वक्तव्य— सामान्य रूप से चतुर्थांश तथा अष्टमांश जल को ज्वर तथा अतिसार में देने से लाभ होते देखा गया है। उक्त श्लोक का परिमाण उत्तरोत्तर अधिक है, इनका भी प्रयोग अवश्य करके लाभान्वित होना चाहिये। आहार का समय हो जाने पर और भूख लगने पर सुपाच्य अन्न, औषधद्रव्यों के क्वाथ रस से बनायी गयी पेया पीने के लिये दें।

अतिसार में अपथ्य

स्वेदोऽञ्जनं रुधिरमोक्षणमम्बुपानं स्नानं व्यवायमपि जागरधूमनस्यम् ।
अभ्यञ्जनं सकलवेगविधारणानि रूक्षाण्यसात्म्यमशनं च विरुद्धमन्नम् ॥ ५७ ॥
गोधूममाषयववास्तुककाकमाची निष्पावकन्दमधुशिग्रुरत्नालपूगम् ।
कूष्माण्डतुम्बिबदरं गुरु चान्नपानं ताम्बूलमिक्षुगुडमद्यमुपोदिका च ॥ ५८ ॥
द्राक्षाम्लवेतसफलं लशुनं च धात्री दुष्टाम्बु मस्तु गृहवारि च नारिकेलम् ।
सस्नेहनं मृगमदोऽखिलपत्रशाकं क्षारः सराणि सकलानि पुनर्नवा च ॥
इर्वारुकं लवणमम्लमपि प्रकोपो वर्गोऽतिसारगदपीडितमानवेषु ॥ ५९ ॥

स्वेदन कर्म, अंजन लगाना, रक्तमोक्षण अर्थात् सिरावेध करना, अधिक जल पीना, अधिक स्नान करना, स्त्रीप्रसगं, रात्रि में जागना, धूमपान करना, नस्य प्रयोग, अभ्यंग (तेल मालिस कराना) अधारणीय (मल, मूत्र आदि के) वेगों को रोकना, रूक्षताकारक तथा अपनी प्रकृति के प्रतिकूल पदार्थों को खाना, विरोधी आहारों को खाना, गेहूँ, माष (उड़द), जौ, इन अन्नों को, बथुआ, मकोय, निष्पाव (भटवांस या लोभिया) की फली, आलू आदि सभी कन्द शाक, मीठा सहिजन, आम, सुपारी, कोहड़ा (पेठा), तुम्बी (तुमड़ी या लौकी), बेर, गुरु (देर में पचने वाले) खाने-पीने की वस्तुएँ, ताम्बूल (पान), ईख, गुड़, मद्य (तथा उसके भेद), पोई की पत्तियों का शाक, मुनक्का, अमलबेत का फल, लहसुन, आवलाँ, दूषित जल, दही का पानी, घर में रखा हुआ पुराना जल, नारियल, तेल आदि का भोज्य पदार्थों में प्रयोग, कस्तूरी, सभी प्रकार के पत्रशाक, सभी प्रकार के क्षार पदार्थ, सभी सर (दस्तावर) पदार्थ, पुनर्नवा, ककड़ी या खीरा, अधिक नमक, अधिक अम्ल (खट्टे) पदार्थ-ये सभी पदार्थ अतिसार रोग पीड़ित मनुष्यों के लिये अपथ्य हैं ॥ ५७-५९ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वक्तव्य— आयुर्वेद का ज्योतिषशास्त्र से घनिष्ठ सम्बन्ध है। देखें— रक्तमोक्षण, वमन एवं विरेचन मुहूर्त, मु. हू. चि. नक्षत्र प्रकरण श्लोक ३०। तुम्बि— साधु लोग जिसका कमण्डलु बनाते हैं, उसे तुम्बि या तुमड़ा कहते हैं, यह मधुर एवं तिक्त भेद से दो प्रकार का होता है, मीठे का शाक बना लिया जाता है और जो तीता होता है, उसका कमण्डलु बना लेते हैं। सराणि—सर उन द्रव्यों को कहते हैं, जो रेचक (मल प्रवर्तक) होते हैं। क्षारः— पिप्पली, क्षार, लवण (नमक) इन द्रव्यों का वैसे भी अधिक सेवन करने का महर्षि आत्रेय ने निषेध किया है। देखें—च. वि. १।१५।

अन्य अपथ्य— अतिसार रोगी को स्नान, मालिश, जल में बैठना (द्रोणी अवगाहन), गुरु, स्निग्ध, अधिक भोजन, व्यायाम, आग सेंकना या अन्य प्रकार से स्वेदन कराना आदि निषिद्ध हैं।

ग्रहणी रोग में पथ्य

निद्राछर्द्दनलङ्घनं चिरभवा ये शालयः षष्टिका
मण्डो लाजकृतो मसूरतुवरीमुद्गप्रसूता रसाः।
निःशेषोद्धृतसारमेव दधि यत्सक्षीरजातं गवां
छाग्या वा नवनीतमेव दधिजं तद्वत् पयस्सम्भवम् ॥६०॥
छागान्याज्यपयोदधीनि तिलजं तैलं सुरा माक्षिकं
शालूकं बकुलं च दाडिमयुगं नव्यानि भव्यानि च।
रम्भायाः कुसुमं फलं च तरुणं बिल्वं च शृङ्गाटकं
चाङ्गेरी विजया कपित्थकुटजाजाजी कसेरूणि च ॥६१॥
तक्रं काञ्चटसौनिषण्णदलकं जाती फलं जाम्बवं
धन्याकानि च तिन्दुकानि च महानिम्बोऽरुणापेलवम्।
क्रव्याल्लावशशैणतित्तिरिरसाः क्षुद्रा झषाः सर्वशः
खुड्डीशो मधुरालिका च खलिशः सर्वः कषायोरसः ॥६२॥
नाभेर्द्व्यङ्गुलकादधोर्धशशिवद्वंशास्थिमूले तथा।
दाहः प्रज्वलितायसा च कथितं पथ्यं ग्रहण्यातुरे ॥६३॥

दिन के समय सोना, वमन, लंघन (उपवास), पुराने शाली तथा साँठी धान्यों के चावलों लाजाओं (खीलों) का माँड़, मसूर, अरहर, मूंग इनमें से किसी भी दाल का यूष, गाय के दूध को गरम करके उसकी मलाई को सब निकाल कर उस दूध को जमा दें, वह दही अथवा मक्खन निकाले हुए दूध का दही, अथवा बकरी के दूध या दही से निकाला हुआ मक्खन, घी, दूध, दही, तिल का तेल, मद्य, मधु, शालूक (कमल कन्द), मौलसिरी की छाल, दोनों प्रकार (खट्टे तथा मीठे) दाड़िम, नये (ताजे) लिसोढ़े के फल, केले के फूल, कच्चे बेल की गिरी, सिंघाड़ा का फल, लोनियाँ शाक, भाँग की पत्तियाँ, कच्चे कैथ का गूदा, कुटज की छाल, जीरा, कसेरू के फल, मठ्ठा (छाँस), जलचौलाई, चौपत्तिया के ताजे पत्ते, जायफल, जामुन के फल, धनियाँ, तेंदू, बकायन, मजीठ की कोमल छाल, कच्चे मांस को खाने वाले प्राणियों के मांस, लवा, खरगोश, कालाहरिण, तीतर इनके मांस रस, सभी छोटी मछलियों के मांसरस, खुड्डीश, मधुरुलिका तथा खालिश नामक मछलियों के मांसरस, सभी प्रकार के कसैले द्रव्यों के क्वाथरस, नाभि के दो अंगुल नीचे तथा पृष्ठवंशास्थि

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

की जड़ में गरम किये हुए लोहे की सींक से अर्धचन्द्र की भाँति दागना ये सभी ग्रहणी रोग वालों के लिये पथ्य होते हैं ॥ ६०-६३ ॥

वक्तव्य— उक्त पद्य में गाय के दूध का वह दही ग्राह्य है, जिससे मलाई या मक्खन निकाल लिया हो कहा गया है, और बकरी के दूध या दही से निकाला हुआ मक्खन तथा घी, दूध, दही सभी का ग्रहण करने का निर्देश दिया है। इस पर विचार करें। दाडिमयुगमूल— शब्द 'दाडिम' ही है, अनार तो मधुर रस प्रधान होता है, यह उसी का विशिष्ट रूप है, वास्तव में कषाय रस ग्राही होता है, अतः अतिसार एवं ग्रहणीरोग में कषायरस प्रधान द्रव्यों का पथ्य के रूप में संग्रह किया है।

छागान्याज्यपयोदधीनि— बकरी के घी, दूध, दही रोगी को उसी स्थिति में दें जब वे पच जाते हों, अन्यथा न दें। **मांस एवं मांसरस**— मांस रस की तुलना में मांस देर में पचता है, रोगी को जो मांस रस दिया जाता है, वह सादा होना चाहिये।

तक्र— निर्माणभेद से इसके ५ भेद माने गये हैं— १. घोल, २. मथित, ३. तक्र, ४. उदश्वित्, ५. छच्छिका। इनके लक्षण भावप्रकाश में देखें। ग्रहणी रोग में जिस तक्र को पथ्य कहा गया है, उसकी निर्माणविधि इस प्रकार है— जिस दही में उसका चौथाई जल डालकर मथा जाय उसे तक्र कहते हैं। यह मल को बाँधता है।

ग्रहणी रोग में पथ्य— इसमें प्रतिदिन उन अन्न-पानों का प्रयोग करें, जो शीघ्र पचने वाले तथा जठराग्नि को प्रदीप्त करने वाले हों, इसके विपरीतगुण वाले पदार्थों को छोड़ दें। पथ्य— पुराने शालीधान्य के चावल, मसूर, जौ, जांगलदेश के प्राणियों के मांसरस, मद्‌गुर शृंगी नामक मछलियों के मांसरस, मट्ठा, कच्चे बेल की गिरी, दाड़िम, सिंघाड़ा, बकरी का दूध, बैंगन, कसेरू, इनका सेवन करें।

ग्रहणी रोग में अपथ्य

रक्तस्रुतिं जागरमम्बुपानं स्नानं स्त्रियं वेगविनिग्रहं च।
नस्याञ्जनस्वेदनधूमपानं श्रमं विरुद्धाशनमातपं च ॥ ६४ ॥
गोधूमनिष्पावकलायमाष यवार्द्रकच्छत्रकराजमाषान्।
उपोदिका वास्तुककाकमाची कूष्माण्डतुम्बीमधुशिग्रुकन्दान् ॥ ६५ ॥
ताम्बूलमिक्षुं बदरं रसाल-मेर्व्वारुकं पूगफलं रसोनम्।
धान्याम्लसौवीरतुषोदकानि दुग्धं गुडं मस्तु च नारिकेलम् ॥ ६६ ॥
पुनर्नवाबार्हतवैणवानि सर्वाणि शाकानि च पत्रवन्ति।
दुष्टाम्बु गोवारि कुरङ्गनाभिं क्षारं समस्तानि सराणि चापि ॥ ६७ ॥
द्राक्षामथाम्लं लवणं सरं च गुर्वन्नपानं सकलं च पूपम्।
वैद्यश्चिकित्सन् ग्रहणीविकारं विवर्जयेत् सन्ततमप्रमत्तः ॥ ६८ ॥

रक्तस्रुति (सिरावेध), रात्रि में जागना, अधिक जल का पीना, स्नानकरना, स्त्रीसहवास, मल-मूत्र आदि अधारणीय वेगों को रोकना, नस्य प्रयोग करना, अंजन लगाना, स्वेदन कर्म (पसीना लाने के उपायों का प्रयोग), धूमपान, किसी प्रकार का परिश्रम करना, विरुद्ध पदार्थों का सेवन करना, धूप सेंकना, गेहूँ, निष्पाव (लोविया), मटर, उड़द, जौ, अदरख, छत्रक (भुँइ छत्ता या मशरूम), राजमाष,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(बड़ा लोभिया), पोई का शाक, बथुआ, मकोय की पत्तियों का शाक, कुम्हड़ा, तुम्बी (तुमड़ी), मीठा सहजन, आलू आदि कन्द शाक, पान, ईख, बेर, आम, ककड़ी, सुपारी, लहसुन, धान्याम्ल (काँजी), सौवीर (काँजी का भेद), तुषोदक (तुष युक्त जौ की काँजी), दूध, गुड़, दही का पानी, नारियल, (गोला की गिरी), पुनर्नवा, बड़ी कटेरी के फल, बाँस की कली या अंकुर तथा सभी पत्रशाक, दूषित जल, गोमूत्र, कस्तूरी, क्षार, सभी प्रकार के मलभेदक पदार्थ, मुनक्का, अम्ल (खट्टे) पदार्थ, नमक, सभी प्रकार के विरेचक तथा गुरु (देर में पचने वाले), अन्न-पान, सभी प्रकार के मालपुआ आदि (घी तेल में पके हुए) पदार्थ। ग्रहणीरोग की चिकित्सा करता हुआ वैद्य सावधान होकर उक्त अपथ्य द्रव्यों का सदैव परहेज कराये ॥६४-६८॥

वक्तव्य— ऊपर के श्लोक ६७ में 'समस्तानि सराणि'— शब्द से ग्रन्थकार ने सभी विरेचक औषधियों का निषेध कर दिया। उसके बाद 'सरं च गुर्वन्नपानं'—उन आहार तथा पेय पदार्थों का भी निषेध किया है, जो 'सर' मल को निकालने में सहायक होते हैं, अन्यत्र ग्रहणी रोग में अपथ्यों का वर्णन संक्षेप में इस प्रकार दिया गया है।

अपथ्य— दिन में सोना, रात में जागना, तीक्ष्ण मद्य, देर में पचने वाले आहार तथा अभिष्यन्द कारक सभी पदार्थों का सेवन इसमें अपथ्य होता है, अतः इनका सावधानी के साथ परहेज करना चाहिये।

अर्श रोग में पथ्य

विरेचनं लेपनमस्त्र मोक्षः क्षाराग्निशस्त्राचरितं च कर्म्म।
पुरातना लोहितशालयश्च सषष्टिकाश्चापि यवाः कुलत्थाः ॥६९॥
गोधाखुलोपाकगवोष्ट्रकूर्म्मश्वावित्कुलिङ्गाजखरोतुकीशाः।
तरक्षुचाषाश्वश्रृगालकाका येऽन्येऽपि मांसात् प्रसहाश्च तेऽपि ॥७०॥
पटोलपत्तूररसोनवह्निपुनर्नवाशूरणवास्तुकानि।
जीवन्तिका दन्तशठा सुरा च शुण्ठीर्वयस्था नवनीततक्रम् ॥७१॥
कक्कोलधात्री रुचकं कपित्थमौष्ट्रानि मूत्राज्यपयांसि चापि।
भल्लातकं सर्षपजं च तैलं गोमूत्रसौवीरतुषोदकानि ॥
वातापहं यच्च यदग्निकारि तदन्नपानं हितमर्शसेभ्यः ॥७२॥

विरेचन कारक औषधियों का प्रयोग, अर्शनाशक लेपों का प्रयोग, रक्तमोक्षण (सिरावेधकर्म), क्षार प्रयोग, अग्निकर्म, शस्त्रकर्म, पुराने लाल शालीधान्य तथा साठी के चावल, जौ, कुलथी की दाल, गोह, चूहा, लोमड़ी, नीलगाय, ऊँट, कछुआ, साही, गौरैया, बकरी, गदहा, बिल्ली, बानर, चीता, चील, घोड़ा, सियार, कौआ तथा प्रसह पक्षी आदि के मांस, परबल, शालिंच शाक, लहसुन, चित्रक के जड़ की छाल, पुनर्नवा, सूरन (जिमीकन्द), बथुआ, जीवन्ती शाक, दन्तशठ (जम्बीरी नीबू), मद्य, सोंठ, हरड़, मक्खन, मट्ठा, कंकोल, आँवला, नीबू, कैथ, ऊँट का मूत्र, घी, दूध, भिलावा के फल, सरसों का तेल, गोमूत्र, काँजी, तुषोदक (अंकुर सहित जौ की काँजी) जो जो बात दोषनाशक तथा जठराग्निवर्धक अन्न (खान)-पान है, वह सब अर्श (बवाशीर) के रोगियों के लिये हितकर होता है ॥६९-७२॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वक्तव्य-- 'लेपन' इसका प्रयोग अर्शों को सुखाकर गिरा देने के लिये किया जाता है। रक्तमोक्षण से दूषित रक्त निकलकर मस्से मुरझा जाते है । क्षार, अग्नि तथा शस्त्र का प्रयोग अर्शों की प्रधान चिकित्सा है। कुशल चिकित्सक द्वारा क्षार प्रयोग अर्श तथा भगन्दर रोगों की चिकित्सा बड़ी कुशलता से करते हैं। इसमें अग्नि तथा शस्त्र प्रयोग की विभीषिका से रोगी भी आश्वस्त रहता है, यह अर्शरोग की उत्तम चिकित्सा है, इसका प्रयोग कर्माभ्यास करने पर ही करें।

प्रसह पक्षी— कौआ, गीध, उल्लू, चील्ह, बाज, नीलकण्ठ, भास (गीध का भेद), क्रौञ्च (कुरर) इत्यादि पक्षियों की प्रसह संज्ञा है। प्रसह का अर्थ है– दूसरों से जबरदस्ती छीन कर खाने वाले पक्षी ।

मांसात्प्रसहश्च-- इस पद में 'मांसात्' शब्द 'प्रसह' शब्द का विशेषण है, यथा– 'मांसादाः च अमूनि प्रसहाः' - मासात्प्रसहाः कर्मधारय समास, मांसात् का अर्थ है– मांस भक्षण करने वाला।

अर्श रोग में अपथ्य

आनूपमामिषं मत्स्यं पिण्याकं दधि पिष्टकम् ।
माषान् करीरं निष्पावं बिल्वं तुम्बीमुपोदिकाम् ॥ ७३ ॥
पक्काम्रं शालुकं सर्वं विष्टम्भीनि गुरूणि च ।
आतपं जलपानानि वमनं बस्तिकर्म च ॥ ७४ ॥
प्राच्यवन्त्यपरान्तोत्थनदीनां सलिलानि च ।
विरुद्धानि च सर्वाणि मारुतं पूर्व्वदिग्भवम् ॥ ७५ ॥
वेगरोधं स्त्रियं पृष्ठयानमुत्कटकासनम् ।
यथास्वं दोषलं चान्नमर्शसः परिवर्ज्जयेत् ॥ ७६ ॥
यत् पथ्यं यदपथ्यं च वक्ष्यते रक्तपित्तिनाम् ।
रक्तार्शोरोगिणां तत्तदपि विद्याद्विशेषतः ॥ ७७ ॥

रक्तपित्त के रोगियों को जो जो आहार, विहार पथ्य हैं और जो जो अपथ्य हैं, जिन का वर्णन आगे यथास्थान किया जायेगा वे सभी पथ्य रक्तार्श (खूनी बबासीर) के रोगियों के भी विशेष रूप से पथ्य तथा अपथ्य होते हैं ॥ ७७ ॥

वक्तव्य— शास्त्रीय विषयों के वर्णन में इसे समास या संक्षेप शैली कहते है। इस शैली का उपयोग ग्रन्थ के विस्तारभय से किया जाता है। इसके पथ्यों -अपथ्यों का वर्णन आगे यथास्थान देखें ।

मन्दाग्नि तथा अजीर्ण में पथ्य

श्लेष्मके वमनं पूर्वं पैत्तिके मृदु रेचनम् ।
वातिके स्वेदनं चाथ यथावस्थं हित च यत् ॥ ७८ ॥
नानाप्रकारो व्यायामो दीपनानि लघूनि च ।
बहुकालसमुत्पन्नाः सूक्ष्मा लोहितशालयः ॥ ७९ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विलेपी लाजमण्डश्च मण्डोमुद्गरसः सुरा ।
एणो वर्ही शशो लावः क्षुद्रमत्स्याश्च सर्वशः ॥ ८० ॥
शालिंचशाकं वेत्राग्रं वास्तूकं बालमूलकम् ।
लशुनं वृद्धकूष्माण्डं नवीनकदलीफलम् ॥ ८१ ॥
शोभाञ्जनं पटोलं च वार्ताकुं नलदाम्बु च ।
कर्कोटकं कारवेल्लं बार्हतं च महार्द्रकम् ॥ ८२ ॥
प्रसारिणी मेषशृङ्गं चाङ्गेरी सुनिषण्णकम् ।
धात्रीफलं नागरङ्ग दाडिमं यावपर्पटाः ॥ ८३ ॥
अम्लवेतसजम्बीरमातुलुङ्गानि माक्षिकम् ।
नवनीतं घृतं तक्रं सौवीरकतुषोदके ॥ ८४ ॥
धान्याम्लं कटुतैलं च रामठं लवणर्द्रकम् ।
यवानी मरिचं मेथी धान्यकं जीरकं दधि ॥ ८५ ॥
ताम्बूलं तप्तसलिलं कटुतिक्तौ रसावपि ।
मन्दानलेऽप्यजीर्णेऽपि पथ्यमेतन्नृणां भवेत् ॥ ८६ ॥

कफदोष के प्रकोप से उत्पन्न मन्दाग्नि तथा अजीर्ण रोगों में सर्वप्रथम वमन कराना चाहिये, पित्तदोष के प्रकोप से उत्पन्न मन्दाग्नि तथा अजीर्ण रोगों में रोगी को मृदुविरेचन का प्रयोग कराएँ तथा वातदोष के प्रकोप से उत्पन्न मन्दाग्नि तथा अजीर्ण रोगों में रोगी को स्वेदन (पसीना उत्पन्न) कराना चाहिये और भी परिस्थितिवश जो उसके लिये हितकर हो वह वह उपाय करे। जैसे– अनेक प्रकार के व्यायाम (दण्ड, बैठक, कुस्ती, दौड़ना आदि), जठराग्नि को प्रज्वलित करने के लिये अग्निवर्धक (चित्रकादि चूर्ण, हिंग्वष्टक चूर्ण आदि) तथा हलके (सुपाच्य) भोजन, बहुत पुराने बारीक लालशाली के चावलों की विलेपी (लपसी), पुराने धान के खीलों का माँड, चावलों का माँड, मूंग का यूष, मद्य (पुरानी मदिरा), कालाहिरन मोर, खरगोश, लवा पक्षी, सभी प्रकार की छोटी मछलियों के मांसों, का रस, शालिंचशाक, वेत का अंकुर, बथुआ, कोमल मूली, लहसुन, पुराना बड़ा पेठा (कोहड़ा), नये केले के फल, सहजन, परबल, बैगन, खस का जल, ककोड़ा (खेखसा), करेला, बड़ी कटेरी का फल, अदरख, प्रसारिणी, मेंढ़ासिंगी, चांगेरी (लोनिया), सुनिषण्णक (चौपतिया या सुनसुनिया), आँवला, नारंगी (सन्तरा), दाड़िम, यावपर्पट (जुआर के पापड़), अमलबेत, जम्बीरी नीबू, बिजौरा नीबू, मधु, नवनीत (मक्खन), घृत, मट्ठा, सौवीरक (काँजी भेद), तुषोदक (तुष सहित जौ की काँजी), धान्याम्ल, सरसों का तेल, हींग, नमक, अदरख, अजवाइन, कालीमिर्च, मेथी, धनियाँ, जीरा, दही, पान, उबाला हुआ जल, कडुआ तथा तिक्त रस वाले पदार्थ, ये सभी अग्नि के मन्द पड़ जाने पर तथा अजीर्ण रोग में मनुष्यों के लिये हितकर होते हैं ॥ ७८-८६ ॥

वक्तव्य– ऊपर के पद्यों में मन्दाग्नि तथा अजीर्ण रोगियों के लिये पथ्य निर्देश किया गया है। अब यहाँ मन्दाग्नि परिचय प्रस्तुत है– कफ, पित्त तथा वातदोषों की अधिकता से तथा इन तीनों की समता से जठराग्नि ४ प्रकार की होती है, कफ दोष की अधिकता होने से १.मन्दाग्नि, पित्तदोष की अधिकता होने से २. तीक्ष्णाग्नि, वातदोष की अधिकता होने से ३. विषमाग्नि कफ, पित्त तथा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वात दोष की समानता होने से ४. समाग्नि होती है, इन चारों में समाग्नि सर्वश्रेष्ठ मानी गयी है, इनके लक्षणों को भावप्रकाश मध्यम खण्ड के ६ठे अधिकार में देखें।

इनसे भिन्न तथा अत्यन्त कष्टकारक एक भस्मक भेद भी है, इसकी उत्पत्ति तब होती है, जब रूक्ष अन्नों का प्रतिदिन भोजन करने से कफ दोष का ह्रास हो जाता है और वात तथा पित्त दोष बढ़ जाते हैं, तो इस स्थिति में उक्त रोग हो जाता है, इसमें कफवर्धक आहारों-विहारों का सेवन करना-कराना चाहिये।

अजीर्ण निदान— अधिक जल पी लेने से, विषम भोजन कर लेने से, अधारणीय वेगों को रोकने से, निद्रा की गड़बड़ी से, समय पर उचित मात्रा में मनुष्य द्वारा खाया गया भोजन भी नहीं पचता है। इसके अतिरिक्त ईर्ष्या, भय, क्रोध, लोभ, रोग, तथा दीनता से पीड़ित पुरुष के आहार का भली-भाँति परिपाक नहीं होता, जिनके कारण अजीर्णरोग की उत्पत्ति हो जाती है। देखें-सु. सू. ४६।५००-५०१।

अजीर्ण के भेद— १. कफदोष से आमाजीर्ण, २. पित्तदोष से विदग्धाजीर्ण, ३. वातदोष से विष्टब्धाजीर्ण, ४. रसशेष से रसशेषाजीर्ण, ५. 'दिनपाकि' नामक अजीर्ण', ६. 'प्रतिवासर' नामक अजीर्ण मानते हैं, इसमें ५वें तथा ६ठे को अजीर्ण कहना उसके साथ बलात्कार मात्र है, आप इनके साहित्य को सुश्रुत के उक्त प्रकरण में देखें।

मन्दाग्नि तथा अजीर्ण में अपथ्य

विरेचनानि विण्मूत्रवायुवेगविधारणम्।
अध्यशनं समशनं जागरं विषमाशनम् ॥ ८७ ॥
रक्तस्रुतिं शमीधान्यं मत्स्यं मांसमुपोदिकाम् ॥
जलपानं पिष्टकं च जाम्बवं सर्वमालुकम् ॥ ८८ ॥
कूर्च्चिकां मोरटं क्षीरं किलाटं च प्रपानकम्।
तालास्थि सस्यं तद्वालं स्नेहनं दुष्टवारि च ॥ ८९ ॥
विरुद्धासात्म्यपानान्नं विष्टम्भीनि गुरूणि च।
अग्निमान्द्येऽप्यजीर्णे च सर्वाणि परिवर्जयेत् ॥ ९० ॥

सभी प्रकार के विरेचन, मल, मूत्र तथा अधोवायु के वेगों का रोकना, पहले खाया हुआ भोजन न पचा हो तब तक फिर भोजन कर लेना, इसे अध्यशन कहते हैं, समशन, (हितकर एवं अहित कर अन्न या आहार को एक साथ खाना), रात्रि में जागना, विषमाशन (बहुत अधिक या बहुत थोड़ा अथवा विना समय का भोजन), रक्तस्रुति (सिरावेध), शमीधान्य, (शिम्बी धान्य-उड़द, मूगं, राजमाष. तिल, कुलथी आदि), मछली, मांस, पोई का शाक, अधिक जल पीना, पीठी के बने हुए पदार्थ, जामुन के फलों का खाना, सभी प्रकार के आलू (कन्दशाक), कूर्चिका (यह दो प्रकार से बनायी जाती है— १. फटे हुए या फाड़े गये दूध से और २. तक्रकूर्चिका), मोरट, क्षीर, किलाट, आम तथा इमली आदि पना या पन्ना पेयरस, ताड़ फल की मींगी, ताड़ के फल, ताड़ की बाली, सभी स्नेहन (घी-तेल में पकाये गये) पदार्थ, दूषित जल, विरुद्ध तथा असात्म्य पेय एवं आहार, विष्टम्भ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(कब्ज) कारक एवं देर में पचने वाले सभी आहार पदार्थों को मन्दाग्नि तथा अजीर्ण रोग में त्याग दें ॥ ८७-९० ॥

वक्तव्य— यदि पाचक अग्नि सम है, तो उसकी सुरक्षा करें, विषम हो तो वातशामक चिकित्सा करें, तीक्ष्णाग्नि हो तो पित्त शामक चिकित्सा करें और मन्दाग्नि हो तो कफ दोष का शोधन करें। उक्त चार प्रकार की अग्नियों का विचार हम श्लोक ७८-८६ के वक्तव्य में कर चुके हैं।

भोजन के तीन प्रकार— १. समशन, २. विषमाशन, ३. अध्यशन। इनका विस्तृत विवरण देखें—सु.सू. ४६ ।५०८-५०९। भोजन के ये सभी भेद अहितकर है। इनके सम्बन्ध में सुश्रुत के इसी क्रम में कहे गये ५१० से ५१३ तक के पद्यों का अवलोकन भी कर लें।

१. दधिकूर्चिका— दही तथा दूध को एक साथ पकाने पर जो सार भाग उपलब्ध होता है, उसे दधिकूर्चिका कहते हैं।

२. तक्रकूर्च्चिका— मठा के साथ दूध को पकाने पर जो सारभाग प्राप्त होता है, उसे तक्रकूर्चिका कहते हैं।

मोरट के लक्षण— जेज्जट के मतानुसार फटे हुए दूध को कपड़ा में बाँध कर जो रस नीचे टपकता है, उसे मोरट कहते हैं।

क्षीर परिचय— सामान्य रूप से 'क्षीर' का अर्थ दूध होता है, किन्तु यहाँ क्षीर शब्द से पीयूष 'पेवस' या 'बिगौत' का अर्थ ग्रहण किया गया है। यहाँ क्षीर विशेष का यह 'पीयूष' पर्याय पारिभाषिक है, नकि 'पीयूषममृतं सुधा' से सम्बन्धित है। इसका लक्षण है— 'क्षीरं तत्कालसूताया घनं 'पीयूषमुच्यते'। भा. प्र. नि. दुग्धवर्ग, अर्थात् तत्काल ब्याई हुई गाय, भैंस आदि के गाढ़े दूध को पीयूष कहते हैं।

किलाट या किलाटक— फटे हुए दूध को पकाकर जब उसे पिण्ड के आकार का बना लिया जाता है, तो उसे किलाट कहते हैं।

पथ्यापथ्यसूत्र— अजीर्ण रोगी तथा अग्निमान्द्य रोगी देर में पचने वाले सभी आहारों को त्याग दें, रात्रि में भोजन न करें, वे दोनों सुपाच्य तथा हलके पदार्थों का ही सेवन करें।

अलसक एवं विसूचिका में पथ्य

फलवर्तिं वमिं स्वेदं लङ्घनं चापतर्पणम्।
विशेषादलसे कुर्याद्विषूच्यां त्वतिसारिवत् ॥
पाष्र्योर्दाहोऽतिवृद्धायां सम्यग्दीपनपाचनम् ॥ ९१ ॥

फलवर्ती (इसे मलशोधकवर्ती भी कहते हैं), वमन, स्वेदन (पसीना कराने के उपाय), लघंन (उपवास या लघु भोजन), अपतर्पण (तृप्ति का अभाव अर्थात् उतना भोजन करें तिसमें तृप्ति होना शेष रह जाय), इन पथ्यों का प्रयोग विशेष करके अलसक रोग में करें, विसूची रोग में अतिसार में कहे गये पथ्यों का प्रयोग करें, इसमें विशेष पथ्य इस प्रकार कहे गये हैं— यदि विसूचिका रोग अधिक बढ़ गया हो तो दोनों एड़ियों में कुशल चिकित्सक दाह करें और अग्निवर्धक तथा आमदोष पाचक औषधों का प्रयोग करें ॥ ९१ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वक्तव्य— विसूची रोग को साधारण-बोल चाल में 'हैजा' और अलसक को 'गुम हैजा' कहते हैं। इन दोनों के निदान क्रमशः इस प्रकार देखें—माधवनिदान अग्निमान्द्यादिनिदान ६।१६-१८ तथा अलसक १९-२० वही। फलवर्ति का प्रयोग करते समय पहले गुद मार्ग को घी तेल आदि से चिकना करके अँगूठा प्रमाण की बनायी गई उस बत्ती का प्रवेश गुदछिद्र के भीतर करा दें, इससे मल निकल जाता है। वमन, तथा स्वेदन कर्म करा देने से मल निकलने लग जाता है। इनका प्रयोग भी परिस्थिति के अनुसार ही करें।

क्रिमिरोग में पथ्य

आस्थापनं कायशिरोविरेचनं धूमः कफघ्नानि शरीरमार्जना।
चिरन्तना वैणवरक्तशालयः पटोलवेत्राग्ररसोनवास्तुकम् ॥ ९२ ॥
हुताशमन्दारदलानि सर्षपा नवीनमोचं बृहतीफलान्यपि।
तिक्तानि नालीकदलानि मौषिकं मांसं विडङ्गं पिचुमर्द्दपल्लवम् ॥ ९३ ॥
पथ्या च तैलं तिलसर्षपोद्भवं सौवीरशुक्तं च तुषोदकं मधु।
पचेलिमं तालमरुष्करं गवां मूत्रं च ताम्बूलसुरा मृगाण्डजम् ॥ ९४ ॥
औष्ट्राणि मूत्राज्यपयांसि रामठं. क्षाराजमोदा खदिरं च वत्सकम्।
जम्बीरनीरं सुषवी यवानिका साराः सुराह्वागुरुशिंशपोद्भवाः ॥ ९५ ॥
तिक्तः कषायः कटुको रसोऽप्ययं वर्गो नराणां कृमिरोगिणां सुखः ॥ ९६ ॥

आस्थापन (निरूहण) बस्ति, कायविरेचन, शिरोविरेचन, धूमपान, कफनाशक पदार्थ, शरीर को स्वच्छ (साफ सुथरा) रखना, पुराने बाँस के चावल, लाल चावल, परबल, बेत के नये अंकुर लहसुन, बथुआ, चीता, तथा मदार के पत्ते, सरसों, कले के नवीन फल, बड़ी कटेरी के फल, तिक्त रस वाले अन्य फल, नाड़ीशाक (काल शाक) के पत्ते, चूहा का मांस, वायविडंग , नीम के कोमल पत्ते, हरड़, तिल तथा सरसों का तेल, सौवीर (काँजी), शुक्त (सिरका), तुषोदक (तुष सहित जौ की कांजी), मधु, पके हए ताड़ के फल, भिलावा के फल, गोमूत्र, पान, मदिरा, मृगाण्डज (कस्तूरी), ऊँटनी का मूत्र, घी तथा दूध, हींग, विविध प्रकार के क्षार, अजमोद, खैरसार(कत्था), कुटज की छाल, जम्बीरी नीबू का रस, सुषवी (कलौंजी या मंगरैला), अजवाइन, देवदारु, अगुरु तथा शीशम वृक्षों के सार (गोदं), तिक्त, कषाय एवं कटु रस ये सभी पदार्थ क्रिमिरोगियों के लिए पथ्य होते हैं॥ ९२-९६ ॥

वक्तव्य— कटु तथा तिक्त रस प्रधान भोजन एवं कफदोष नाशक औषध द्रव्य क्रिमियों को नष्ट करते हैं । साथ ही साथ ये पदार्थ रुचिवर्धक एवं जठराग्नि को प्रदीप्त भी करते हैं, इस प्रकार क्रिमिरोग में पथ्यों का वर्णन अन्यत्र प्राप्त होता है, समाज में कटु एवं तिक्त शब्दों के प्रयोग सही प्रकार से नहीं देखे जाते, आप उन्हें इस प्रकार समझें— कटु—सोठ, मरिच, पीपल तथा हरा या लाल मिर्चा और तिक्त— नीम तथा कुटकी आदि।

आस्थापन बस्ति— कारण भेद से निरूहण बस्ति कई प्रकार की होती है, तदनुसार आचार्यों ने उनके नाम निर्धारित किये हैं। निरूहणबस्ति का ही दूसरा नाम 'आस्थापनबस्ति' है। इसका यह नाम दोषों तथा धातुओं को अपने-अपने स्थान पर स्थापित कर देने के कारण ही रखा गया

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है। इसके कार्यों के अनुरूप ये अन्य नाम हैं– दोषहर, संशमन, शोधन, लेखन तथा पिच्छिल बस्ति। उपर्युक्त 'क्षार' शब्द से सभी प्रकार के क्षारों का अर्थ ग्रहण कर लेना चाहिये।

क्रिमिरोग में अपथ्य

छर्दिं च तद्वेगविधारणं च विरुद्धपानाशनमह्निनिद्राम्।
द्रवं च पिष्टान्नमजीर्णतां च घृतानि माषान् दधि पत्रशाकम् ॥ ९७ ॥
मांसं पयोऽम्लं मधुरं रसं च कृमीन् जिघांसुः परिवर्जयेच्च ॥ ९८ ॥

वमन कराना, उभडे हुए वमन के वेग को रोकना, विरुद्ध अन्न (आहार), पान (पेय पदार्थ), दिन में सोना (यह कफ वर्धक होता है), पेय पदार्थों का अधिक सेवन करना, पीठी द्वारा बने हुए पदार्थों का सेवन, अजीर्णकारक पदार्थों को खाना, गाय, भैंस आदि प्राणियों के घृतों को खाना, उड़द, दधि, पत्रशाक, मांस, दूध, अम्लपदार्थ एवं मधुर रसों(गुड़ आदि) का सेवन क्रिमियों का विनाश करने का इच्छुक पुरुष त्याग दे॥ ९७-९८॥

वक्तव्य– क्रिमिरोग में पथ्य का वर्णन करते हुए काय तथा शिरोविरेचन का निर्देश किया गया था। अनेक स्थानों में 'रेचन' शब्द का अर्थ वमन, विरेचन दोनों लिया गया है। उसमें 'रिचिर् विरेचने धातु का प्रयोग प्रधान कारण है। अस्तु कहीं चिकित्सक ऐसा प्रयोग कर बैठें, इसलिये अपथ्य वर्णन में छर्दि (वमन) का निषेध किया गया है। इसके आगे 'तद्वेगविधारणं वाक्य का प्रयोग अधारणीय वेगों को न रोका जाय इस दृष्टि से किया गया है। पत्रशाकम्– इसका विशेष विवेचन पत्रशाक प्रकरण में कर दिया गया है। क्रिमीन् जिघांसुः– इन अपथ्यों का प्रयोग उत्पन्न क्रिमिनाश का इच्छुक पुरुष छोड़ दे, इसका आशयं यह है कि इन पदार्थों का अधिक सेवन करने से क्रिमि उत्पन्न हो जाते हैं। ये क्रिमि आजीवन साथ नहीं छोड़ते। यहाँ ९८ वें पद्य की मात्र दो पंक्तिया ही प्राप्त हैं।

अन्यत्र प्राप्त अपथ्य– सभी प्रकार के दूध, दही, घी, मांस, पत्रशाक, विशेष करके खट्टा एवं मीठा रस इन का सेवन क्रिमिरोग में अपथ्य होता है।

पाण्डुरोग में पथ्य

छर्दिर्विरेचनं जीर्णयवगोधूमशालयः।
मुद्गाढकीमसूराणां यूषा जाङ्गलजारसाः ॥ ९९ ॥
पटोलं वृद्धकूष्माण्डं तरुणं कदलीफलम्।
जीवन्तीक्षुरमत्स्याक्षी गुडूची तण्डुलीयकम् ॥ १०० ॥
पुनर्नवा द्रोणपुष्पी वार्ताकुं लशुनद्वयम्।
पक्वाम्रमभया बिम्बी शृङ्गी मत्स्या गवां जलम् ॥ १०१ ॥
धात्री तक्रं घृतं तैलं सौवीरकतुषोदके।
नवनीतं गन्धसारो हरिद्रा नागकेशरम् ॥ १०२ ॥
यवक्षारो लोहभस्म कषायाणि च कुङ्कमम्।
दाहश्चरणयोः सन्धौ नाभेश्च द्व्यङ्गुलादधः ॥ १०३ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मस्तके हस्तयोर्मूले मध्ये च स्तनकक्षयोः ।
यथादोषमिदं पथ्यं पाण्डुरोगवतां भवेत् ॥ १०४॥

वमन तथा विरेचन कराना, एक वर्ष से अधिक पुराने जौ, गेहूँ, शालीधान्य, इनकी रोटी एवं भात, मूँग, अरहर, तथा मसूर इन दालों का यूष, जांगल प्रदेश में रहने वाले प्राणियों (पशु-पक्षियों) के मांस रस, परबल, पुराना कोहड़ा या पेठा (जिसकी मिठाई बनती है), कच्चा केले का फल, जीवन्ती (डोड़ी), तालमखाना, मत्स्याक्षी, गिलोय या गुरुच, चौलाई, पुनर्नवा, द्रोणपुष्पी (गूमा), बैगन या भंटा, दोनों प्रकार के लहसुन (सामान्य लहसुन तथा एक पुतिया लहसुन), पका हुआ आम, हरड़, बिम्बी (कुंदरू), सिंगी मछली, गोमूत्र, आँवला, मट्ठा, घी, तेल, सौवीरक, (काँजी), तुषोदक (तुष सहित जौ की काँजी), मक्खन, गन्धसार (चन्दन), हल्दी, नाग केसर, जवाखार, लौहभस्म तथा मण्डूरभस्म, सभी प्रकार के कषायरस प्रधान द्रव्य, कुंकुम (केसर), दोनों चरणों की सन्धियों में तथा नाभि के दो अंगुल नीचे, मस्तक में, हाथों के निचले भाग में, स्तनों तथा दोनों काँखों के बीच में दाह करना चाहिये, दोषों की स्थिति को देखकर पाण्डुरोग (कामला, हलीमक आदि) में उक्त पदार्थ पथ्य होते हैं ॥९९-१०४॥

वक्तव्य— पाण्डुरोग शब्द से लिज रोगों का अर्थ ग्रहण किया जाता है, वे हैं— कामला, कुम्भकामला, हलीमक तथा पानकी, इनके लक्षण निदान ग्रन्थों में यथास्थान देखें। ऊपर कहे गये पथ्य पदार्थ इन सभी में प्रयुक्त होते हैं । इनका ठीक-ठीक उपदेश यथावसर चिकित्सक देता है। आप भी चिकित्सक हैं, विचार कीजिये, कहाँ किसका उपयोग समुचित होगा।

लशुनद्वयम्— लशुन कन्द सुप्रसिद्ध है, दूसरा लशुन फल है, यह कभी कभी लशुन के पत्तों के बीच में निकलने वाली दण्ड में फल के रूप में एकाधिक संख्या में पाये जाते है। विज्ञकृषक इनका संग्रह कर बेच देते हैं जो सामान्य लशुन से अधिक गुणकारक तथा मूल्यवान् होते हैं।

हरिद्रा— आजकल पाण्डु (पीलिया) रोगियों को हल्दी का परहेज करा दिया जाता है। यह अन्धानुकरण मात्र है। देखें—'हरिद्रा. . . वर्ण्या त्वग्दोषमेहास्रशोथपाण्डुव्रणापहा। भा. प्र. हरीतक्यादिवर्ग १९६-१९७ ॥ इसके अतिरिक्त चरक में 'कटुकाद्यघृत' तथा हरिद्रादिघृत में हरिद्रा का प्रयोग किया गया है। देखें— च. चि. १६ ।४७-४९ तथा ५३, तदनन्तर चक्रदत्त' में पाण्डु, कामला आदि की चिकित्सा में हरिद्रा का उदारतापूर्वक प्रयोग है। पाण्डुरोग का उत्तम औषध योग 'पुनर्नवामण्डूर है। इसमें भी हरिद्रा का प्रयोग किया गया है, देखें—च. चि. १६ ।९३-९६। रसेन्द्रसारसंग्रह में 'निशालौह' का प्रयोग प्रशस्त है। इसके घटक हैं, दोनों हल्दी, त्रिफला, कुटकी, लोहभस्म इन द्रव्यों को समान भाग लें। अतः इससे यह सिद्ध होता है कि इस रोग में हरिद्रा लाभदायक है नकि हानिकारक, इस भ्रान्ति को दूर कर देना चाहिये ।

अन्यत्र पथ्य निर्देश— पुराने जौ, गेहूँ, शालीधान्य, पुनर्नवा, मूंग, अरहर, इनका यूष, जांगलदेश के पशु-पक्षियों का मांस, परबल, पका हुआ कोहड़ा, कच्चा केला, मछलियों में मद्गुर, तथा शृंगी नामक मछलियाँ, मट्ठा, आँवला, हरड़, घी, लहसुन, पका हुआ आम, बैगन, गुरुच, हल्दी, इस प्रकार के अन्य पदार्थ भी पाण्डुरोग में चिकित्सकों ने पथ्य कहे हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पाण्डुरोग में अपथ्य

रक्तस्रुतिं धूम्रपानं वमिवेगविधारणम् ।
स्वेदनं मैथुनं शिम्बी पत्रशाकानि रामठम् ॥ १०५ ॥
माषोऽम्बुपानं पिण्याकस्ताम्बूलं सर्षपाः सुरा ।
मृद्भक्षणं दिवा स्वप्नं तीक्ष्णानि लवणानि च ॥ १०६ ॥
सह्यविन्ध्याद्रिजातानां नदीनां सलिलानि च ।
सर्वाण्यम्लाानि दुष्टाम्बु विरुद्धान्यशनानि च ॥
गुर्वन्नं च विदाहीनि पाण्डुरोगवतां विषम् ॥ १०७ ॥

सिरावेध कराकर रक्त को निकलवाना, धूमपान, वमन के आये हुए वेग को रोकदेना, उत्पन्न अधारणीय वेगों को रोकना, पसीना कराने के उपाय करना, मैथुन (स्त्री या पुरुष सहवास), शिम्वी धान्यों का सेवन करना, सभी पत्रशाक, हींग, उड़द का सेवन, अधिक जल पीना, पिण्याक (तिल की खली), पान, सरसों, सुरा (मद्य), मिट्टी खाना, दिन में सोना, तीक्ष्णक्षार आदि का सेवन, सभी प्रकार के नमक, सह्याचल, विन्धाचल से उत्पन्न नदियों के जल, सभी प्रकार के खट्टे पदार्थ, दूषित जल, विरुद्ध अन्न (भोजन), देर में पचने वाले सभी भक्षपदार्थ तथा विदाहकारक सभी पदार्थ पाण्डुरोगियों के लिये विष के समान हानिकारक होते हैं ॥ १०५-१०७ ॥

वक्तव्य— पाण्डुरोग में स्वाभाविक रूप से रक्ताल्पता हो जाती है । इस स्थिति में शिरावेध कराकर रक्त निकालना सर्वथा अनुचित होता है ।

स्वेदन निषेध– 'पाण्डुमेही रक्तपित्ती तृषार्तः क्षतक्षीणो दुर्बलोऽजीर्णभुक्तः, । दकोदरी गर्भिणी पीतमद्यो नैते स्वेद्या यश्च मत्तोऽतिसारी' ॥ सह्यपर्वत से निकल कर बहने वाली वेणा, गोदावरी आदि नदियों का जल प्रायः कुष्ठआदि रोगकारक होता है । इसीलिये उक्त जलों का निषेध किया गया है । इसके विपरीत गंगा, सतलज, सरयू, यमुना, आदि नदियों का जल गुणों में श्रेष्ठ होता है ।

अन्यत्र अपथ्य चर्चा— धूमपान, अधारणीय वेगों को रोकना, स्वेदन, मैथुन, मद्यपान, दिन में सोना, मिट्टी खाना, हींग, उड़द, सरसों, तीक्ष्ण अम्ल तथा लवण का सेवन, देर में पचने वाले आहारों का सेवन, अधिक जल का पीना, सभी प्रकार के पत्रशाक, तथा सभी शिम्बीधान्य, पाण्डुरोग में अपथ्य होते हैं ।

रक्तपित्त रोग में पथ्य

अधोगते छर्द्दनमूर्ध्वनिर्गमे विरेचनं स्यादुभयत्र लङ्घनम् ।
पुरातनाः षष्टिकशालिकोद्रव प्रियंगुनीवारयवप्रसातिकाः ॥ १०८ ॥
मुद्गा मसूराश्चणकास्तुवर्यो मकुष्ठकाश्चिङ्गटवर्मिमत्स्याः ।
शशः कपोतो हरिणैणलावशरालिपारावतवर्त्तकाश्च ॥ १०९ ॥
बकोरभ्राश्च सकालपुच्छाः कपिञ्जलाश्चापि कषायवर्गः ।
गवामजायाश्च पयो घृतं च घृतं महिष्याः पनसं प्रियालम् ॥ ११० ॥
रम्भाफलं कञ्चटतण्डुलीय पटोलवेत्राग्रमहार्द्रकाणि ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पुराणकूष्माण्डफलं च पक्क तालानि तद्बीजजलानि वासाः ॥ १११ ॥
स्वादूनि बिम्बानि च दाडिमानि खर्ज्जूरधात्रीमिशिनारिकेलम् ।
कशेरुशृङ्गाटमरुष्कराणि कपित्थशालूकपरूषकाणि ॥ ११२ ॥
भूनिम्बशाकं पिचुमर्द्दपत्रं तुम्बी कलिङ्गानि च लाजसक्तुः ।
द्राक्षा सिता माक्षिकमिक्षवश्च शीतोदकं चौद्भिदवारि चापि ॥ ११३ ॥
सेकोऽवगाहः शतधौतसर्पिरभ्यङ्गयोगः शिशिरप्रदेहः ।
हिमानिलश्चन्दनमिन्दुपादाः कथा विचित्राश्च मनोनुकूलाः ॥ ११४ ॥
धारागृहं भूमिगृहं सुशीतं वैडूर्यमुक्तामणिधारणं च ।
रम्भोत्पलाम्भोरुहपत्रशय्या क्षौमाम्बरं चोपवनं सुशीतम् ॥ ११५ ॥
प्रियंगुकाचन्दनरूषिताना मालिङ्गनं चापि वराङ्गनानाम् ।
पद्माकराणां सरितां ह्रदानां चन्द्रोदयानां हिमवद्दरीणाम् ॥ ११६ ॥
सुशीतलानां गिरिनिर्झराणां स्तुतिः प्रशस्तानि च कीर्तितानि ।
प्रकृष्टनीरं हिमबालुका च मित्रं नृणां शोणितपित्तरोगे ॥ ११७ ॥

अधःमार्ग से निकलने वाले रक्तपित्त रोग में वमन कराना और ऊपरी मार्ग से निकलने वाले रक्तपित्त रोग में विरेचन कराना (इस प्रकार की चिकित्सा को विलोम चिकित्सा कहते हैं।) उक्त दोनों मार्गों से निकलने वाले रक्तपित्त रोग में लंघन (उपवास या लघु भोजन) कराना चाहिये। एक वर्ष से अधिक पुराने सांठी तथा शालीधान्य, कोदों (मडुवा), प्रियंगु, नीवार (मुनिअन्न), जौ, तिन्नी, मूंग, मसूर, चना, अरहर, मोठ, ये अन्न, चिंगट तथा वर्मी नामक मछलियाँ, खरगोश, कबूतर हिरण, कालाहिरण, लवापक्षी, शरालिपक्षी, पारावत (परेवा), बटेर, बगुला, उरभ्र, (भेड़ा), कालीपूछं वाला मृग, तीतर, कषाय रस प्रधान औषध गण, गाय और बकरी का दूध, तथा घी, और भैंस का घी, कटहल, चिरौंजी, केला के फल, जल चौलाई, चौलाई, परबल, बेत का नया अंकुर, अदरख, पुराना (पका हुआ) कोहड़ा, (पेठा), पके हुए ताड़ के फल, ताड़ के बीज, ताड़ का रस, (ताड़ी), अडूसा, मीठा, कुंदरू, दाड़िम (अनार), खजूर, आँवला, सौंफ, नारियल की गिरी, कसेरू, सिंघाड़ा, भिलावा के बीज, कैथ, भसींडा, फालसा, चिरायता, नीम के पत्ते, तुम्बी (तुमड़ा, गोल लौकी), तरबूज, खीलों का सत्तू, मुनक्का, मिश्री, मधु, ईख, शीतलजल, उद्भिद (भूमि को फोड़कर निकला हुआ) जल, स्नान, जल में अवगाहन, शतधौतघृत, अभ्यंग (उबटन), शीतल औषधों का लेप, शीतल वायु का स्पर्श, चन्दन का लेप, चन्द्रमा की चाँदनी, विविध प्रकार की मन पसन्द कथाएँ, जिसमें फुँहारे लगे हों, शीतल भूमिगृह (तहखाने) का निवास, वैदूर्य, मुक्ता, मणियों का धारण करना, केला तथा कमलों के पत्तों की शीतल शय्या, रेशमी वस्त्रों को धारण करना, शीतल बगीचा में निवास करना, सुगन्ध प्रियंगु तथा चन्दन आदि सुशीतल द्रव्यों के लेपों की लगायी हुई मदमत्त वनिताओं का केवल आलिंगन करना, कमलों से युक्त नदियों, तालाबों, चन्द्रोदय काल का, शीतल गुफाओं का, अत्यन्त शीतल पहाड़ों से गिरने वाले झरनों का, उत्तम शीतल जल तथा शीतल बालू या कपूर का सेवन करना रक्त पित्तरोग में पथ्य (हितकर) होता है ॥ १०८-११७ ॥

वक्तव्य— रक्तपित्तरोग का साध्य-असाध्य विचार करते हुए सुश्रुत ने लिखा है– 'ऊर्ध्व

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

साध्यमधो याप्यमसाध्यं युगपद्गतम्' ॥ सु. उ. ४५ ।६ । अर्थात् ऊपर से निकलने वाला रक्तपित्त साध्य होता है, अधोमार्ग से निकलने वाला याप्य होता है और ऊपर तथा नीचे के मार्गों से एक साथ निकलने वाला असाध्य होता है । इसी दृष्टि से पथ्यापथ्य का भी प्रयोग किया जाता है । इसी दृष्टि से ग्रन्थकार ने प्रारम्भ के आधे श्लोक में इसकी पथ्यचिकित्सा का निर्देश करके आगे पथ्य द्रव्यों का निर्देश किया है । रक्तातिसार तथा रक्तार्श में भी इन पथ्यों का प्रयोग करना चाहिये । इस प्रकरण में प्रियंगु का दो बार प्रयोग हुआ है, जरा इस पर ध्यान दें–

'प्रियंगु शब्द का प्रयोग कर्पूरादि वर्ग में तथा धान्यवर्ग में हुआ है । निश्चित ही ये दो भिन्न द्रव्य हैं । इनमें प्रथम 'प्रियंगु, को दूसरे से अलग करने के लिए ही 'गन्धप्रियंगु' कहा है । इस प्रसंग में प्रयुक्त पहला प्रियंगु-कंगुनी है, जो वर्ण भेद से चार प्रकार की होती है, यथा काली, लाल, सफेद तथा पीली, इनमें पीली सर्वोत्तम होती है। इसी को कुमाऊनी भाषा में 'कौणी' कहते हैं 'प्रियङ्गुकाचन्दन' पद्य में प्रयुक्त प्रियंगु ही गन्धप्रियङ्गु है ।

वासा प्रयोग— आचार्य चक्रपाणि ने अपने द्वारा रचित 'चक्रदत्त' ग्रन्थ में रक्तपित्त रोग में वासा (अडूसा) के प्रयोग का महत्त्व दिखलाते हुए लिखा है–

'वासायां विद्यमानायामाशायां जीवितस्य च ।
रक्तपित्ती क्षयी कासी किमर्थमवसीदति' ॥

अर्थात् जब तक अडूसा उपलब्ध है तब तक जीवित रहने की आशा रखने वाले, रक्तपित्त, क्षय तथा कास रोग के रोगी क्यों दुःखी रहते है । उन्हें वासा का सेवन कर स्वास्थ्य लाभ करना चाहिये ।

अन्यत्र उपलब्ध पथ्य— पुराने शालीधान्य, गेहूँ, जौ, मूंग, मसूर, चना, अरहर, पुराना कोहड़ा, केले का फल, परबल, वेत के अंकुर का अग्रभाग, कटहर तथा ताड़ का फल, बेल, दाड़िम, खजूर आँवला, मुनक्का, गूलर, फालसा, नारियल, कैथ, कसेरू, गाय, भैंस, बकरी का घी, बकरी का दूध, खरगोश, कालाहरिण, चितकबरा हिरन, बकरा, बगुला, कबूतर आदि का मांस, ईख का रस, शीतल जल, चन्दन का लेपन, चाँदनी रात, मन के अनुकूल बातचीत, कथा, सुरीला गाना-बजाना, मोटे, ऊँचे, स्तन, चूतड़, वाली स्त्रियों का सहवास, सुखद घरों का निवास, रूप तथा यौवन से मदमत्त स्त्रियों का केवल आलिंगन, सहवास नहीं, इस प्रकार के सभी भाव रक्तपित्त रोगियों के लिये पथ्य होते हैं ।

रक्तपित्त में अपथ्य

व्यायामाध्वनिषेवणं रविकरस्तीक्ष्णानि कर्माणि च
क्षोभो वेगविधारणं चपलता हस्त्यश्वयानानि च ।
स्वेदास्रस्रुतिधूमपानसुरतक्रोधाः कुलत्थो गुडो
वार्त्ताकुं तिलमाषसर्षपदधिक्षीराणि कौपं पयः ॥ ११८ ॥
ताम्बूलं नलदम्बु मद्यलशुनं शिम्बी विरूद्धाशनम् ।
कट्वम्लं लवणं विदाहि च गणस्त्याज्योऽस्रपित्ते नृणाम् ॥११९ ॥

व्यायाम (दंड-बैठक, शीर्षासन आदि), अधिक रास्ता चलना, अधिक धूप में बैठना, शक्ति

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

से अधिक कार्य करना, मनःक्षोभ (मन का घबड़ाना), मल-मूत्र आदि अधारणीय वेगों को रोकना, चंचलता, हाथी, घोड़ा आदि की सवारी करना, स्वेदन कर्म, सिरावेध कराना, धूमपान, सुरत (मैथुन), क्रोध, कुलथी, गुड़, बैगन, तिल, उड़द, सरसों, दही, दूध, कुआँ का जल, पान, खस, अधिक जल पीना, मद्यपान, लहसुन का सेवन, शिम्बीधान्य, विरुद्ध पदार्थों का सेवन, कटु, अम्ल, नमकीन, विदाह– कारक, सभी द्रव्यों का रक्तपित्त रोगी पुरुष त्याग करे, क्योंकि ये पदार्थ इसमें अपथ्य होते हैं ॥ ११८-११९ ॥

वक्तव्य– रक्त का एक नाम 'क्षतज' भी है। जब शरीर में कहीं घाव होता है, यह (रक्त) तभी निकलता है। उक्त व्यायाम आदि सभी भाव क्षतस्थान का रोपण नहीं होने देते, अतएव ये अपथ्य कहे गये हैं।

अन्यत्र वर्णित अपथ्य– तीक्ष्ण, विदाही, विष्टाम्भ कारक जो अन्न-पान हैं उनका सेवन न करे, कुआँ का जल, पान, दही, बैगन, सभी प्रकार की मछलियाँ, उड़द, सरसों, लहसुन, क्षार, उबले हुए धान्य, कुलथी, गुड़, सुरा, (मद्य) हाथी तथा घोड़ा की सवारी, सभी प्रकार के व्यायाम, क्रोध, नींद की गड़बडी, रास्ता चलना, जोर-जोर से पढ़ना या बोलना, सूर्य तथा अग्नि का सेवन करना, रक्तनिर्हरण, धूमपान, हिलना-डुलना, चंचलता, प्रतिदिन ऐसे कर्मों को न करें, और जो रक्तपित्त का निदान (कारण) कहा गया है, उन सबका जीवित तथा स्वस्थ रहने की इच्छा करने वाले पुरुषों को त्याग कर देना चाहिये।

शोषरोग में पथ्य

मद्यानि जाङ्गलं पक्षिमगमांसं विशुष्यताम् ।
मुद्गषष्टिकगोधूमयवशाल्यादयो हिताः ॥ १२० ॥

विविध प्रकार की पुरानी मदिरा (मद्य, शराब), जांगल देश में निवास करने वाले पशु–पक्षियों के मांस, मूंग, साठी के चावल, गेहूँ, जौ, शालीधान्यों का सेवन शोषरोगियों के लिए पथ्य होता है ॥ १२० ॥

वक्तव्य— यहाँ ग्रन्थकार ने शोष तथा क्षय के पथ्यापथ्य का निर्देश किया है। वास्तव में शोष के भेद उप-भेदों का वर्णन प्राचीन संहिताओं में तथा परवर्ती 'माधवनिदान' आदि संग्रह ग्रन्थों में देखें। सुश्रुत ने शोष के भेदों का इस प्रकार परिगणन किया है– व्यवाय, शोक, वार्धक्य (बुढ़ापा), व्यायाम, अधिक पैदल चलना, व्रण तथा उरःक्षत ये ७ प्रकार के शोष होते हैं। देखें– सु. उ. ४१ ।१६ । इसके पहले सुश्रुत ने यह स्पष्ट कर दिया है, कि उक्त मत कुछ विद्वानों का है, उक्त सात भेदों पर सभी विद्वान् सहमत इसलिये नहीं है कि उनमें तीनों दोषों के लक्षण नहीं मिलते। अर्थात् इनके मत से शोष एक ही है, अनेक नहीं, व्यवाय आदि कारणों से उत्पन्न शोषों को धातुक्षय जनित क्षय ही समझना चाहिये, देखें– सु. उ. ४१ ।२६-२७ ।

क्षयरोग में पथ्य

दोषाधिकस्य बलिनो मृदुशुद्धिरादौ गोधूममुद्गचणकारुणशालयश्च ।
छागानि मांसनवनीतपयोघृतानि क्रव्यादमांसमपि जाङ्गलजा रसाश्च । । १२१ ॥
मार्त्तण्डचण्डकिरणैः परिशोषितानि लेह्यान्यपक्वपललानि सुचूर्णितानि ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रागाः सकाम्बलिकषाडववेशवारा भक्ष्याः शशाङ्ककिरणा मधुरो रसश्च ॥ १२२ ॥
पक्कानि मोचपनसाम्रफलानि धात्री खर्जूरपौष्करपरूषकनादिकेलम् ।
शोभाञ्जनं च कुलकं नवतालशस्यं द्राक्षाफलानि मिशोऽपि च माणिमन्थम् ।
सिंहास्यपत्रमपि गोमहिषीधृतं च छागाश्रयश्च तदवस्करमूत्रलेपः ।
मत्स्यण्डिका शिखरिणी मदिरा रसाला कर्पूरकं मृगमदः सितचन्दनं च ॥१२४ ॥
अभ्यञ्जनानि सुरभीण्यनुलेपनानि स्नानानि वेषरचनान्यवगाहनानि ।
हर्म्यं स्त्रजं स्मरकथा मृगुगन्धवाहो गीतानि लास्यमपि चन्द्ररुचो विपञ्ची ॥१२५ ॥
सन्दर्शनं मृगदृशामपि हेमचूर्णं मुक्तामणिप्रचूरभूषणधारणं च ।
होमः प्रदानममरद्विजपूजनानि हृद्यान्नपानमपि पथ्यगणः क्षयेषु ॥ १२६ ॥

जिस क्षय रोगी के शरीर में वातादि दोष अधिक बढ़े हों और रोगी बलवान् (वमन-विरेचन आदि कर्मों को सहन करने की शक्ति रखता) हो, उसे सर्वप्रथम सामान्य वमन–विरेचन कराकर शुद्ध करलें, फिर उचित चिकित्सा कराकर ये पथ्य दें। पुराने गेहूँ, मूगं, चना, लाल शाली के चावल, बकरे का मांस, बकरी का दूध, मक्खन, घी, मासं भक्षण करने वाले जांगल देश के निवासी पशु-पक्षियों के मांस रस, सूर्य की तेज किरणों से सुखाये गये सुकोमल मांसो को चूर्ण करके चाटने योग्य (मधु में मिलाकर) बनाकर दें। काम्बलिक, षाडव, वेशवार, राग आदि, भक्ष्य पदार्थ, चाँदनी रात, मधुर पदार्थों के रस, पके हुए केले, कटहर के कोए (बीज के ऊपर का गूदा), मधुर रस युक्त आम, आँवला, खजूरू कमलगट्टा, फालसा, नारियल की गिरी, सहिजन के फल, परवल या कुचिला, ताड़ का नया फल, मुनक्का, सौंफ, सेंधानमक, अडूसा के पत्ते, गाय तथा भैस का घी, बकरियों के बीच में निवास करना, बकरियों के मल-मूत्र का शरीर पर लेप करना, मत्स्यण्डी (राब), शिखारिणी, मदिरा (मद्य), रसाला, कपूर, कस्तूरी, सफेदचन्दन, उबटन, सुगन्धित द्रव्यों का लेप, उष्णजल से स्नान, अवगाहन (टब में नहाना), सुन्दर वेशरचना, उत्तम भवन, सुगन्धित फूलों की माला को धारण करना, कामोद्दीपक कथाओं का सुनना, शीतल, मन्द, सुगन्धित वायु का सेवन, गीतों को सुनना, स्त्रियों के नृत्य को देखना, चन्द्रमा की किरणों का अवलोकन, वीणा-वाद्य का सुनना, सुन्दर नवयुवतियों को देखना, सुवर्ण भस्म का सेवन करना, मोतियों तथा मणियों से जटित सोने के आभूषणों को धारण करना, घर में होम कराना, दान देना, देवता तथा ब्राह्मणों का पूजन करना या कराना, इच्छानुकूल किन्तु पथ्य खान-पान ये क्षय रोगी के लिये पथ्य कहे गये हैं॥ १२१-१२६ ॥

वक्तव्य— उक्त पथ्यवर्ग में कतिपय पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग हुआ है, उन का परिचय यहाँ प्रस्तुत है— **राग**— आचार, चटनी आदि पदार्थ जो भोजन के प्रति रुचि को उत्पन्न करने में सहायक हों। **रागषाडव**— 'दाडिमद्राक्षारसयुक्तमुदगयूषे', वै.श. सिन्धु। अर्थात् जिस मूँग के यूष में दाडिम तथा मुनक्का रस मिला हो, उसे 'रागषाडव' कहते हैं। **काम्बलिक**— दही, नमक, स्नेह (तेल), तिल एवं उड़द का चूर्ण मिला कर जो पदार्थ तैयार किया जाता है, उसे 'काम्बलिक' कहते है। १. **वेशवार** (पिसा हुआ मसाला)— पान के पत्ते, चावल, लौंग, काली मिर्च। **मतभेद**— 'अजाजीं मरिचं शुण्ठी ग्रन्थिधान्यनिशाद्वयम्, पिप्पली दाडिमञ्चेति वेशवारगणो मतः ।। **पक्वमांसभेद**— 'निरस्थिपिशितं पिष्टं स्विन्नं गुडघृतान्वितम्, । कृष्णामरिचसंयुक्तं वेशवार इति स्मृतः' ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मत्स्यण्डिका–'इक्षो रसो यः सम्पक्वो घनः किञ्चिद् द्रवान्वितः। मन्दं यत् स्यन्दते तस्मात् तन्मत्स्यण्डी निगद्यते' ॥ **मदिरा**– सभी प्रकार की शराब। **रसाला**– इसे शिखरिणी (श्रीखण्ड) भी कहते हैं। उक्त ग्रन्थ में दोनों शब्दों का अलग-अलग प्रयोग किया गया है। वैद्यक शब्द सिन्धु में भी उक्त दो शब्दों की अलग-अलग सत्ता मानकर रसाला का प्रारम्भिक परिचय इस प्रकार दिया है– 'दधिमिश्रितशुक्तौ'।

शिखरिणीघटकद्रव्य–

अर्धाढकं सुचिरपर्युषितस्यदध्नः खण्डस्यषोडशपलानि शशिप्रभस्य ।
सर्पिःपलं मधुपलं मरिचं द्विकर्षं शुण्ठ्याः पलार्धमपि चार्धपलं चतुर्णाम् ॥

निर्माणविधि–

शुक्ले पटे ललनया मृदुपाणिघृष्टा, कर्पूरचूर्णसुरभीमयभाण्डसंस्था ।
एषा वृकोदरकृता सरसारसाला, याऽऽस्वादिता भगवता मधुसूदनेन ॥

(भै० र० अरोचकाधिकार)

दही, ३२ पल, मिश्री ८ पल, इतनी ही कालीमिर्च, दालचीनी, तथा इलायची का चूर्ण, मधु तथा घी प्रत्येक ४-४ पल, इनको एक पात्र में मिला दें थोड़ा कपूर का चूर्ण मिला दें। यह शिखरिणी या श्रीखण्ड तैयार है। सर्वप्रथम इसका निर्माण भीमसेन ने करके श्रीकृष्णभगवान् को खिलाया था।

प्रस्तुत ग्रन्थकार ने शोषरोग तथा राजयक्ष्मारोग में जो पथ्य विधान किया है वही अविकल रूप से भैषज्यरत्नावली में भी दिया गया है।

अन्यत्र-पथ्य निर्देश– पुराने गेहूँ, चना, मूंग, लाल शाली धान्य, बकरे का मांस, बकरी का दूध, दही, चीनी, राब, पुराना मद्य, कस्तूरी, सफेद चन्दन, उत्तम घर, सुगन्धित फूल- माला, कामोत्पदाक कथाएँ, युवती स्त्रियों का दर्शन, मणि, मोती जड़े हुए आभूषणों को धारण करना, शीतल, मन्द, सुगन्धित वायु का सेवन, आँवला, पका हुआ मीठा आम, पके हुए कटहल के कोए, बकुल (मौलसिरी के फल), गाना, हँसना, चाँदनी, कर्णप्रिय वाणी, इस प्रकार के पदार्थ क्षय रोग में पथ्य होते हैं।

क्षयरोग में अपथ्य

विरेचनं वेगविधारणानि श्रमं स्त्रियं स्वेदनमञ्जनं च ।
प्रजागरं साहसकर्मसेवारूक्षान्नपानं विषमाशनं च ॥
ताम्बूलकालिन्दकुलत्थमाषरसोनवंशांकुररामठानि ।
अम्लानि तिक्तानि कषायकाणि कटूनि सर्वाणि च पत्रशाकम् ॥
क्षारान् विरुद्धान्यशनानि बिम्बी कर्कोटकं चापि विदाहि सर्वम् ।
कठिल्लकं कृष्णमपि क्षयेषु विवर्जयेत्सन्ततमप्रमत्तः ॥ १२९ ॥

विरेचन कराना, मल, मूत्र, आदि के अधारणीय वेगों को रोकना, किसी प्रकार का शारीरिक श्रम, पुरुष के लिये स्त्री सहवास (स्त्री के लिये पुरुष सहवास), स्वेदन कर्म, अंजन लगाना, रात्रि में अधिक जागना, दुःसाहसिक कार्य, रूक्षता कारक आहारों तथा पेयों का निरन्तर सेवन, विषमाशन (कभी कम तथा कभी अधिक भोजन करना), पान, तरबूज, कुलथी, उड़द, लहसुन, बाँस के नये

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अंकुर, हींग, खट्टे, तीते, कषैले, कटु स्वादवाले सभी पत्रशाक, सभी प्रकार के क्षार, विरुद्ध द्रव्यों का सेवन , कुंदरू, बाँझककोड़ा (खेखसा), सभी विदाहकारक पदार्थ, करेला तथा काला इन सभी द्रव्यों को सदैव क्षयरोग में अपथ्य समझकर त्याग दें ॥१२७-१२९ ॥

वक्तव्य— क्षयरोग में विरेचन के अपथ्य होने में कारण— क्षयरोगी रुग्ण अवस्था में जो कुछ भी खाता है, आमाशयिक अग्नि द्वारा उसका पाक होकर वह मल के रूप में परिणत हो जाता है और उससे अल्प मात्रा में ओजोधातु बन पाता है। इस लिये राजयक्ष्मा रोगी के मल की रक्षा करनी चाहिये, क्योंकि सभी धातुओं के क्षीण हो जाने पर रोगी का आधार केवल उसका मल ही रह जाता है। देखें—च. चि.८ ।४१-४२ ।

कठिल्लकं कृष्णमपि— इस पद का अर्थ दूसरे टीकाकार 'काला करेला' करते हैं, यह उचित प्रतीत नहीं होता। वैद्यक शब्दासिन्धु में 'कृष्ण' शब्द से इन अर्थों का ग्रहण किया है— सौवीराञ्जन, कृष्णागुरु, कालानमक, राजसर्षण, करमर्द, कृष्णसारमृग का मांस।

अन्यत्र अपथ्य निर्देश— रूक्ष अन्न-पान, विषमाशन, विदाहकारक भोजन, कटु, तिक्त, कषाय, अम्लरस युक्त पत्रशाक, उड़द, लहसुन, शिम्बीधान्य, सभी प्रकार की मछलियाँ, पान, व्यायाम, वेगों को रोकना, दुःसाहसिक कार्य, परिश्रम, स्वेदन, अंजन, उच्च भाषण, अधिक मार्ग चलना, रात में जागना, मैथुन, छाती में भार पड़ने वाला कर्म एवं जो उरःक्षत के निदान के रूप में कहे गये हैं और जो रक्तपित्तरोग में पथ्य-अपथ्य कहे गये हैं, उनको यहाँ भी पथ्य तथा अपथ्य समझें।

कास रोग में पथ्य

स्वेदो विरेचनं छर्दिर्धूमपानं समाशिता ।
शालिषष्टिकगोधूमश्यामाकयवकोद्रवाः ॥ १३० ॥
आत्मगुप्तामाषमुद्गकुलत्थानां रसाः पृथक् ।
ग्राम्यौदकानूपधन्वमांसानि विविधानि च ॥ १३१ ॥
सुरा पुरातनं सर्पिश्छागं चापि पयो घृतम् ।
वास्तूकं वायसीशाकं वार्ताकुं बालमूलकम् ॥ १३२ ॥
कण्टकारी कासमर्दो जीवन्ती सुनिषण्णकम् ।
द्राक्षा बिम्बी मातुलुङ्गपौष्करं वासकस्त्रुटिः ॥ १३३ ॥
गोमूत्रं लशुनं पथ्या व्योषमुष्णोदकं मधु ।
लाजा दिवसनिद्रा च लघून्यन्नानि यानि च ।
पथ्यमेतद्यथादोषमुक्तं कासगदातुरे ॥ १३४ ॥

स्वेदन कर्म, विरेचन, वमन, धूमपान, समय पर नियमित यथाविधि भोजन करना, शालीधान्य, गेहूँ, साँवा, जौ, कोदों, किवाँच, उडद, मूंग, कुलथी, इन दालों के अलग-अलग रस, गाँवों में पाले गये पशु, जलीय प्राणी, धन्व (मरुभूमि) के प्राणी अथवा जांगल देश के पशु-पक्षी, इनके मांस, मद्य, पुराना घी, बकरी का दूध, घी, बथुआ, मकोय का शाक, बैगन, कच्ची कोमल मूली, कण्टकारी, कसौंदी, जीवन्ती, चौपतिया, मुनक्का, कुंदरू, बिजौरानीबू, पोहकरमूल, अडूसा, छोटी इलायची, गोमूत्र, लहसुन, हरड़, सोंठ, मरिच, पीपल, गुनगुना जल, मधु, लावा (खील), दिन में सोना सभी,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सुपाच्य अन्न (आहार) दोषानुसार वर्गीकरण करके कासरोग में इन पथ्यों का सेवन करना चाहिए ॥१३०-१३४॥

अन्यत्र पथ्य निर्देश— शाली तथा साठी धान्य, गेहूँ, साँवा, जौ, कोदों, उड़द, मूंग, कुलथी इन दालों का जूष, पुराना घी, बथुआ, मकोय, बैगन, कोमल मूली, बकरी का दूध, घी, गुनगुना जल, मधु, मरुभूमि तथा अनूप देश के प्राणियों के मांस मांसभक्षण करने वालों को दें। मुनक्का, दाड़िम, खजूर ये फल भी पथ्य होते हैं।

कास रोग में अपथ्य

बस्तिं नस्यमसृङ्मोक्षव्यायामं दन्तघर्षणम्।
आतपं दुष्टपवनं रजोमार्गनिषेवणम् ॥ १३५ ॥
विष्टम्भीनि विदाहीनि रूक्षाणि विविधानि च।
शकृन्मूत्रोद्गारकासवमिवेगविधारणम् ॥ १३६ ॥
मत्स्यं कन्दं सर्षपं च तुम्बीफलमुपोदिकाम्।
दुष्टाम्बु चान्नपानं च विरुद्धान्यशनानि च।
गुरुशीतं चान्नपानं कासरोगी परित्यजेत् ॥ १३७ ॥

विविध प्रकार के बस्ति प्रयोग, नस्य, सिरावेध करके रक्त निकलवाना, सभी प्रकार के व्यायाम (परिश्रमकारक कर्म), दाँतों को घिसना (दातून या ब्रश करना), धूप सेंकना, दूषित वातावरण में रहना, धूल का नाक, मुख में जाना, अधिक रास्ता चलना, कब्जकारक, दाहकारक पदार्थों का सेवन, अनेक प्रकार के मल, मूत्र, डकार, खाँसी, वमन के अधारणीय वेगों का रोकना, मछलियाँ, कन्दशाक, सरसों, गोल लौकी, पोई का शाक, दूषित जल, अन्न-पान, विरुद्ध भोजन, गुरु, शीतवीर्य अन्न-पान, इन सभी का कास रोगी परित्याग करदे ॥ १३५-१३७ ॥

अन्यत्र अपथ्य निर्देश— बस्ति प्रयोग, नस्य, सिराबेध, व्यायाम, दातून, धूप सेकना, दूषित वायु, धूलि, रास्ता चलना, आदि सभी उपर्युक्त अपथ्य दिये हैं।

श्वासरोग में पथ्य

विरेचनस्वेदनधूमपानप्रच्छर्द्दनानि स्वपनं दिवा च।
पुरातनाः षष्टिकरक्तशालिकुलत्थगोधूमयवाः प्रशस्ताः ॥ १३८ ॥
शशाहिभुक्तित्तिरिलावदक्षशुकादयो धन्वमृगद्विजाश्च।
पुरातनं सर्पिरजाप्रसूतं पयो घृतं चापि सुरा मधूनि ॥ १३९ ॥
निदिग्धिका वास्तुकतण्डुलीयं जीवन्तिकामूलकपोतिकाश्च।
पटोलवार्त्ताकुरसोनपथ्या जम्बीरबिम्बीफलमातुलुङ्गम् ॥ १४० ॥
द्राक्षा त्रुटिः पौष्करमुष्णवारि कटुत्रयं गोजनितं च मूत्रम्।
अन्नानि पानानि च भेषजानि कफानिलघ्नानि च यानि यानि ॥ १४१ ॥
वक्षः प्रदेशादपि पार्श्वयुग्मे करस्थयोर्मध्यमयोर्द्वयोश्च।
प्रदीप्तलोहेन च कण्ठकूपे दाहोऽपि च श्वासिनि पथ्यवर्गः ॥ १४२ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विरेचन, स्वेदन कर्म, धूमपान, वमन, दिन में सोना, पुराने सांठी धान्य, लाल शाली धान्य, कुलथी, गेहूँ, जौ ये अन्न हितकर हैं। प्राणियों में– खरगोश, मोर, तीतर, लवा, मुर्गा, शुक, आदि जांगल देश के निवासी पशु-पक्षियों के मांसहितकर होते हैं। पुराना घी, बकरी का दूध, घी, मद्य, मधु, कटेरी, बथुआ, चौलाई, जीवन्ती, कोमल मूली, पोई का शाक, परबल, बैगन, लहसुन, हरड़, जम्बीरी नीबू, कुंदरू, बिजौरा नीबू, मुनक्का, छोटी इलाइची, पोहकरमूल, गुनगुना जल, सोंठ, मिरच, पीपल, गोमूत्र तथा जो जो कफ एवं वातदोष के नाशक अन्न (आहार), पान (पेय) तथा औषध द्रव्य हों, उनका सेवन करें। दाहकर्मोंपयोगी स्थान विशेष– वक्षप्रदेश से लेकर दोनों पसलियों में, दोनों हथेलियों की मध्यम अंगुलियों की जड़ में और कण्ठ के गड्ढा में तपाये गये लोहे से कुशणचिकित्सक दाह करें ॥१३८-१४२॥

वक्तव्य– प्रस्तुत ग्रन्थ में श्वासरोग के लिये दिये गये पथ्य तथा अपथ्य भैषज्यरत्नावली में अविकल रूप से उपलब्ध हैं, अन्यत्र ये पथ्य-अपथ्य सम्मिलित रूप से हिक्का श्वास के रूप में मिलते हैं। उन पंथ्यापथ्यों को हम आगे हिक्का रोग के साथ देंगे।

श्वासरोग– इसके पाँच भेद होते हैं—१.महाश्वास (प्रवृद्धवातविकारज), २.ऊर्ध्वश्वास (कफवातज), ३.छिन्नश्वास (पित्त-कफ-वातज), ४.तमकश्वास (कफ-वातज इसी के दो भेदों की कल्पना कुछ आचार्यों ने की है, यथा– प्रतमकश्वास और सन्तमक श्वास), ५.क्षुद्रश्वास (वातज), इनमें महाश्वास, ऊर्ध्वश्वास, छिन्नश्वास ये तीन असाध्य होते हैं। शेष दो तमक तथा क्षुद्र श्वासके रोगी ही प्रारम्भिक स्थिति में चिकित्सा करने से नीरोग होते देखे जाते हैं, पुराने होने पर ये भी कष्टसाध्य हो जाते हैं।

श्वास रोग में अपथ्य

मूत्रोद्गारच्छर्दितृट्कासरोधो नस्यं बस्तिर्दन्तकाष्ठं श्रमश्च।
अध्वाभारो रैणवः सूर्यपादा विष्टम्भीनि ग्राम्यधर्मो विदाहि ॥१४३॥
आनूपानामामिषं तैलभृष्टिं निष्पावं च श्लेष्मकारीणि माषाः।
रक्तस्रावः पूर्ववाताऽनुपानं मेषीसर्पिर्दुग्धमम्भोऽपि दुष्टम् ॥१४४॥
मत्स्याः कन्दाः सर्षपाश्चान्नपानं रूक्षं शीतं गुर्वपि श्वास्यमित्रम् ॥१४५॥

मूत्र तथा मल, डकार, वमन, तृष्णा (प्यास) और खाँसी के वेगों को रोकना, नस्य तथा बस्ति प्रयोग, दातून, किसी प्रकार के परिश्रम का अधिक होना, अधिक मार्ग में चलना, अधिक वोझ का उठाना, नासिका एवं मुख में धूल का जाना, सूर्य की किरणों को अधिक सेंकना, कब्जकारक पदार्थों को खाना, मैथुन, विदाहकारक पदार्थों का सेवन, आनूपदेश में निवास करने वाले पशु-पक्षियों के मांस का सेवन, तेल में पकाये, भूंजे गये पदार्थों का खाना, निष्पाव (घुघुरी,लोभिया), कफकारक पदार्थ, उड़द, रक्तस्राव (सिरावेध), पुरवैया हवा का सेवन, भोजन करने के बाद अधिक द्रव द्रव्यो को पीना, भेड़ी के दूध, घी का सेवन, दूषित जल को पीना, सभी प्रकार की मछलियाँ, आलू आदि कन्दों का सेवन, सरसों, रूक्ष, शीत तथा गुरु (देर में पचने वाले) अन्न (आहार), पान (पेय पदार्थ) श्वास रोग में अपथ्य (अहितकर) होते हैं ॥१४३-१४५॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हिक्कारोग में पथ्य

स्वेदनं वमनं नस्यं धूमपानं विरेचनम् ।
निद्रा स्निग्धानि चान्नानि मृदूनि लवणानि च ॥ १४६ ॥
जीर्णाः कुलत्था गोधूमाः शालयः षष्टिका यवाः ।
एणस्तित्तिरिलावाद्या जाङ्गला मृगपक्षिणः ॥ १४७ ॥
पक्कं कपित्थं लशुनं पटोलं बालमूलकम् ।
पौष्करं कृष्णतुलसी मदिरा नलदम्बु च ॥ १४८ ॥
उष्णोदकं मातुलुङ्गं माक्षिकं सुरभीजलम् ।
अन्नपानानि सर्वाणि वातश्लेष्महराणि च ॥ १४९ ॥
शीताम्बुसेकः सहसा त्रासो विस्मापनं भयम् ।
क्रोधो हर्षः प्रियोद्वेगः प्राणायामनिषेवणम् ॥ १५० ॥
दग्धसिक्तमृदाघ्राणं कूर्चे धारा जलार्पणम् ।
नाभ्यूर्ध्वघातनं दाहो दीपदग्धहरिद्रया ॥
पादयोर्द्व्यङ्गुलान्नाभेरूर्ध्वं चेष्टानि हिक्किनाम् ॥ १५१ ॥

तेल मालिश कराकर स्वेदन कराना, वमन, नस्य, धूमपान, ये सब जमे हुये कफ को ढीला करके निकालने के उपाय हैं। विरेचन द्वारा पित्त का निर्हरण किया जाता है। निद्रा, स्निग्ध अन्नों (आहारों) का सेवन, मुदु (सुपाच्य) पदार्थों का सेवन, सभी प्रकार के नमक, पुराने कुलथी, गेहूँ, शाली तथा साँठी धान्य, जौ, काला हरिण, तीतर, लवा आदि जांगल देश में रहने वाले पशु-पक्षी, पके कैथ के फल, लहसुन, परबल, कच्ची कोमल मूली, पोहकरमूल, काली तुलसी, मद्य, खस का जल, गुनगुना पानी, विजौरा नीबू, मधु, गोमूत्र, वात तथा कफ दोष नाशक सभी प्रकार के खान-पान, शीतल जल का सेवन, एकाएक डराना, आश्चर्य पैदा कराना, भय पैदा करना, क्रोध, हर्ष, प्रियवस्तु का दर्शन, घबड़ाहट, प्राणायाम का अभ्यास करना, आग में तपाकर पानी से भिगायी हुई मिट्टी को देर तक सूँघना, कूँची से शीतल जल का छिड़काव करना, नाभि के ऊपरी भाग को थपथपाना, दीपक की लौ द्वारा जलायी गयी हल्दी से पैरों की एड़ियों के नीचे तथा नाभि से दो अंगुल ऊपर दागना ये सब कर्म हिचकी रोग में पथ्य होते हैं ॥ १४६-१५१ ॥

वक्तव्य— हिक्का तथा श्वास रोग कफ एवं वात दोष के प्रकोप से उत्पन्न होते हैं। इस तथ्य को चरक एवं सुश्रुत दोनों ही स्वीकार करते है। देखें– च.चि. १७ ।७ तथा सु.उ. ५० ।७। और इन दोनों की उत्पत्ति पित्ताशय से होती है, अत एव इनके निदान एवं पथ्यापथ्य आदि का वर्णन तन्त्रकारों ने साथ ही साथ दिया है।

अन्यत्र हिक्का श्वास के पथ्य— पुराने शाली धान्य, साठी धान्य, गेहूँ, खरगोश, मोर, तीतर, मुर्गा, शुक ये सभी जांगल देश के हों । पुराना घी, बकरी का दूध, मधु, मद्य, जीवन्ती शाक, बथुआ, लहसुन, परबल, मुनक्का, छोटी इलाइची, पोहकरमूल, गरम पानी, सोंठ, मरिच, पीपल, ये सभी पदार्थ हिक्का, श्वास रोग में पथ्य होते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हिक्का रोग में अपथ्य

वातमूत्रोद्गारकासशकृद्वेगविधारणम् ।
रजोनिलातपायासान् विरुद्धान्यशनानि च ॥ १५२ ॥
विष्टम्भीनि विदाहीनि रूक्षाणि कफदानि च ।
निष्पावः पिष्टकं माषः पिण्याकानूपजामिषम् ॥ १५३ ॥
अविदुग्धं दन्तकाष्ठं बस्तिं मत्स्यांश्च सर्षपान् ।
अम्लं तुम्बीफलं कन्दं तैलभ्रष्टमुपोदिकाम् ।
गुरु शीतं चान्नपानं हिक्कारोगी विवर्जयेत् ॥ १५४ ॥

अपानवायु, मूत्र, डकार, खाँसी, मल, इनके उभड़े हुए वेगों को रोकना, धूलि, वायु, धूप, परिश्रम, विरुद्ध भोजन, कब्जियत करने वाले, विदाह कारक, रूक्षता कारक, कफवर्धक, निष्पाव (उबले हुए चना आदि अन्न), पीठी के बने हुए पदार्थ , उड़द, तिल की खली, अनूप (जल प्रधान) देश में उत्पन्न पशु-पक्षियों के मांस, भेड़ी का दूध, दातून करना, बस्ति प्रयोग, सभी प्रकार की मछलियाँ, सरसों, अम्ल रस प्रधान पदार्थ, गोल लौकी, आलू आदि कन्द व शाक, तेल में पकाये एवं छौंके गये भोज्य पदार्थ, पोई का शाक, गुरु, शीतल खान-पान को हिक्का रोगी छोड़ दे ॥१५२-१५४ ॥

अन्यत्र वर्णित अपथ्य— विदाह कारक तथा गुरु खान-पान, व्यायाम, अधिक मार्गगमन, मैथुन, क्रोध, तथा चिन्ता को श्वास हिक्का रोगी छोड़ दें ।

स्वरभेदरोग में पथ्य

स्वेदो बस्तिर्धूमपानं विरेकः कवलग्रहः ।
नस्यं भाले सिरावेधो यवा लोहितशालयः ॥ १५५ ॥
हंसाटवीताम्रचूडकेकिमांसरसाः सुरा ।
गोकण्टकः काकमाची ज़ीवन्ती बालमूलकम् ॥ १५६ ॥
द्राक्षा पथ्या मातुलुङ्गं लशुनं लवणार्द्रकम् ।
ताम्बूलं मरिचं सर्पिः पथ्यानि स्वरभेदिनाम् ॥ १५७ ॥

स्वेदन, बस्ति प्रयोग, धूमपान, विरेचन, कवलग्रह, नस्य, माथे की नसका सिरावेध करना, जौ, लाल शाली धान्य, हंस, बनमुर्गा, मोर इन प्राणियों के मांस रस, मद्य, गोखरू, मकोय, जीवन्ती, कोमल मूली, मुनक्का, हरड़, बिजौरा नीबू, लहसुन, नमक, अदरख, पान, कालीमिर्च, घी, ये स्वरभेद के रोगियों के लिये पथ्य कहे गये हैं ॥ १५५-१५७ ॥

वक्तव्य— चरक ने स्वरभेद रोग का वर्णन अत्यन्त संक्षेप में किया हैं। देखे– च.चि.८ ।५३-५४। सुश्रुत ने 'द्वाभ्यां भाषते' तथा 'द्वाभ्यां घोषं करोति'। सु.शा.९ ।५। कहते हुए जिन चार धमनियों का उल्लेख किया है, उन्ही को यहाँ स्वर वह स्रोतस् कहा है। स्वरभेदरोग हो जाने पर स्वर एवं व्यञ्जनों का उच्चारण ठीक प्रकार से नहीं हो पाता, अतएव इस होग को 'स्वरभेद' कहते हैं। यह रोग उपद्रव के रूप में कास, श्वास, हिक्का रोगों में भी हो जाता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अन्यत्र वर्णित अपथ्य— शरीर को बलदायक, पोषक, हृदय के लिये हितकर, कफनाशक, स्वरशोधक, जो भी खान-पान हो, वह सब पथ्य होता है। इसमें अभिष्यन्दी पदार्थों का सेवन नहीं करना चाहिये, क्योंकि वे सब हानिकारक होते हैं।

स्वरभेदरोग में अपथ्य

आमं कपित्थं बकुलं शालूकं जाम्बवानि च।
तिन्दुकानि कषायाणि वमिं स्वप्नं प्रजल्पनम्॥
अन्नपानं च यत्नेन स्वरभेदी विवर्जयेत्॥ १५८॥

कच्चा कैथ का फल, मौलसिरी, कमलकन्द (भंसीड़ा), जामुन के फल, तेंदू, सभी कसैले पदार्थ, वमन कर्म, दिन में सोना, ज्यादा तथा जोर से बोलना, तथा विरुद्ध खान-पान का सेवन स्वरभेद वाला रोगी छोड़ दे॥ १५८॥

पाठभेद चर्चा— 'अन्नपानं च'— इसके स्थान पर अन्य प्रतियों में 'अन्नं दधि च' अथवा 'अनुपानञ्च' ऐसे पाठ मिलते हैं। तदनुसार अर्थ होगा— अन्न (आहार जो स्वरभेद में अहितकर हो) तथा दही, दूसरा पाठभेद का अर्थ— भोजन के पश्चात् जो पेय सेवन किये जाते है, वे भी अहितकर हों तो, शेष स्पष्ट है।

अन्यत्र अपथ्य वर्णन—अभिष्यन्दकारक पदार्थों का सेवन, शीतल पदार्थों का सेवन, दिन में सोना तथा अधारणीय वेगों का रोकना, ये सब इसमें अपथ्य हैं।

अरुचि रोग में पथ्य

बस्तिर्विरेको वमनं यथाबलं धूमोपसेवा कवलग्रहस्तथा।
तिक्तानि काष्ठानि च दन्तघर्षणे चित्रान्नपानानि हितैः कृतानि च॥ १५९॥
गोधूममुद्गारुणशालिषष्टिका मांसं वराहाजशशैणसम्भवम्।
चेङ्गी झषाण्डं मधुरालिकेल्लिशः प्रोष्ठी खलीशः कवयी च रोहितः॥ १६०॥
कर्कारुवेत्राग्रनवीनमूलकं वार्त्ताकुशोभाञ्जनमोचदाडिमम्।
भव्यं पटोलं रुचकं घृतं पयो बालानि तालानि रसोनशूरणम्॥ १६१॥
द्राक्षा रसालं नलदम्बु काञ्जिकं मद्यं रसाला दधि तक्रमार्द्रकम्।
कक्कोलखर्जूरपियालतिन्दुकं पक्वं कपित्थं बदरं विकङ्कतम्॥ १६२॥
तालास्थिमज्जा हिमबालुका सिता पथ्या यवानी मरिचानि रामठम्।
स्वाद्वम्लतिक्तानि च देहमार्जना वर्गोऽयमुक्तोऽरुचिरोगिणे हितः॥ ६३॥

बस्तिप्रयोग, विरेचन, वमन, यथाशक्ति धूमपान, कवलग्रह (मुखरोग नाशक औषध द्रव्यों की वह मात्रा जो सरलता से मुख के भीतर घुमाई जा सके), दातून के लिये उपयुक्त नीम आदि के तीते दातौन, अनेक प्रकार के खान-पान जो शुभचिन्तकों द्वारा बनाये गये हों, गेहूँ, मूंग, लाल शाली धान्य, साठी धान्य, सूअर, बकरा, खरगोश, कालाहिरन, जांगल देश में रहने वाले इन प्राणियों के मांस, चेंगनामक मछली, झषनामक मछली के अंडे, मधुरालिका, इल्लीश, प्रोष्ठी, खलीश, कवयी तथा रोहित (रोहू) मछलियों के मांस, कर्कारु (छोटा कुम्हड़ा), बेत का नया कोपल, कोमल कच्ची

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मूली, बैगन, सहजन की फली, केला का फल, दाड़िम के बीज, भव्य (लिसोड़ा या बहुवार, देखें– वै. श. सिन्धु) परबल, नमक, घी, दूध, मट्ठा, अदरख, कंकोल, खजूर, पियाल (राजादन, चिरौंजी का पेड़), तिंदुक (तेंदू), पका कैथ का फल, बेर, विकंकत (कंटाई स्रुवा वृक्ष, ताड़ की गुठली की गिरी, शीतल बालू या कपूर, मिश्री, हरड़, अजवाइन, मरिच, हींग, मधुर, खट्टे, तीते रस वाले पदार्थ, शरीर को साफ- सुथरा रखना, ये सभी पदार्थ अरुचि या अरोचकरोग वाले रोगी के लिये पथ्य होते हैं ॥१५९-१६३ ॥

वक्तव्य— भूख लगने पर भी भोजन करने की इच्छा का न होना, इसी को 'अरुचि' रोग कहते हैं। भोज के अनुसार इस रोग का नाम है— १.भक्तद्वेष तथा २.भक्तच्छन्द, इसे ही अनन्नाभिलाष या अनन्नाभिनन्दन भी कहते हैं।

अन्यत्र पथ्य निर्देश–सभी प्रकार के रुचिकारक पदार्थ, अग्निवर्धक औषध द्रव्य, जीभ तथा गले के शोधक अन्न-पान तथा औषध ये अरोचक में पथ्य हैं, शेष अपथ्य।

अनुभूत पथ्य— अरोचक रोग से पीड़ित रोगी के सामने बैठकर दूसरा व्यक्ति अम्ल, मधुर, नमकीन भोज्य पदार्थों को उनकी प्रशंसा करता हुआ खाये, उक्त रोगी से परोसने को कहे, रोगी यदि समर्थ हो तो स्वयं भोजन बनाकर खाये, क्रोध, लोभ, आदि मानसिक कारणों से भोजन के प्रति अरुचि हो तो, मित्रवर्ग रोगी को आश्वासन दे। कुछ चटपटे पदार्थ उसके सामने रखकर मित्र मण्डली उससे खाने का आग्रह करे और कहे कि जब तुम खाओगे तब हम भी खायेंगे. ये प्रयोगात्मक पथ्य हैं।

अरुचिरोग में अपथ्य

कासोद्गारक्षुधानेत्रवारिवेगविधारणम् ।
अहृद्यान्नमसृङ्मोक्षं क्रोधं लोभं भयं शुचम् ॥
दुर्गन्धारूपसेवां च न कुर्यादरुचौ नरः ॥ १६४ ॥

खाँसी, डकार, भूख, आँखों से निकलने वाले जल (आँसुओं) के वेग को रोकना, अरुचिकर खान-पान का सेवन, शिरावेध कराना, क्रोध, लोभ, भय, शोक इन मानसिक वेगों का सेवन करना, दुर्गन्धित तथा कुरूप (विकृत आकार वाले भोज्यपदार्थों का सेवन करना। ये सभी अरुचिरोग में अपथ्य होते हैं ॥ १६४ ॥

वमनरोग में पथ्य

विरेचनच्छर्द्दनलङ्घनानि स्नानं मृजा लाजकृतश्च मण्डः ।
पुरातना षष्टिकशालिमुद्गकलायगोधूमयवा मधूनि ॥ १६५ ॥
शशाहिभुक्तित्तिरलावकाद्या मृगद्विजा जाङ्गलसंज्ञिताश्च ।
मनोज्ञनानारसगन्धरूपा रसाश्च यूषा अपि षाडवाश्च ॥ १६६ ॥
रागाः खडाः काम्बलिकाः सुरा च वेत्राग्रकुस्तुम्बरु नारिकेलम् ।
जम्बीरधात्रीसहकारकोल द्राक्षाकपित्थानि पचेलिमानि ॥ १६७ ॥
हरीतकी दाडिमबीजपूर जातीफलं बालकनिम्बवासाः ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सिता शताह्वा करिकेशराणि भक्ष्या मनःप्रीतिकरा हितश्च ॥ १६८ ॥
भुक्तस्य वक्त्रे शिशिराम्बुसेकः कस्तूरिका चन्दनमिन्दुपादाः ।
मनोज्ञगन्धान्यनुलेपनानि पुष्पाणि पत्राणि फलानि चापि ॥ १६९ ॥
रूपाणि शब्दाश्च रसाश्च गन्धाः स्पर्शाश्च ये यस्य मनोऽनुकूलाः ।
दाहश्च नाभेस्त्रियवोपरिष्टादिदं हि पथ्यं वमनातुरेषु ॥ १७० ॥

विरेचन, वमन, लंघन, (हलका भोजन या उपवास), स्नान, शरीर शुद्धि, खीलों को पीसकर बनाया गया माँड, पुराने साँठी धान्य, शाली धांन्य, मूंग, मटर, गेहूँ, जौ, मधु, शश (खरगोश), मोर, तीतर, लवा, आदि पक्षी तथा हिरन आदि जांगल देश में विचरण करने वाले पशु-पक्षी के मांस, मन को अच्छे लगने वाले विविध प्रकार के रस, गन्ध एवं रूप, मांस रस, दालों के यूष, षाडव (विविध प्रकार के अचार), राग (मुरब्बा, चटनी आदि) खडयूष काम्बलिक, मद्य, वेत के नये अंकुर, धनियां, नारियल की गरी, जम्बीरी नीबू, आँवला, आम, बेर, मुनक्का तथा कैथ इनके पके फल, हरड़, दाड़िम, बिजौरा नीबू, जायफल, नेत्रबाला, नीम के पत्ते, अड़ूसा, मिश्री, सोया, नागकेसर, मनको अच्छे लगने वाले तथा हितकर भक्ष्य पदार्थ, भोजन कर चुकने के बाद रोगी के मुख पर जल के छींटे डालना, कस्तूरी, चन्दन, चाँदनी, मनोहर, सुगन्धित अनेक प्रकार के लेप पुष्प, पत्र, फल, प्रिय रूप, शब्द, रस, गन्ध, स्पर्श, जो जिसको अच्छे लगते हों, नाभि से तीन जौ भर ऊपर की ओर दाह करना, ये सब वमन रोगियों के लिये पथ्य हैं ॥ १६५-१७० ॥

वक्तव्य— यहाँ कुछ पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग हुआ है, उनका परिचय—
खडयूष— घटकद्रव्य—मठा, कैथ का गूदा, चांगेरी (अलोनियाँ), कालीमिर्च, जीरा, चीता के जड़ की छाल, मूंग की दाल, तीक्ष्ण द्रव्य ६-६ माशा, साधारण द्रव्य १-१ पल, सब को एक प्रस्थ मट्ठा में पकाकर छान लें, खडयूष तैयार है।

काम्बलिक— घटकद्रव्य—दही, नमक, स्नेह, तिल, उड़द, इनका विधिवत् पाक करने पर काम्बलिक का निर्माण हो जाता है।

अन्यत्र निर्दिष्ट पथ्य— पुराने शाली चावल, लावा, गेहूँ, जौ, मधु, खरगोश, लवा, मयूर आदि जांगलदेश के पशु-पक्षी, जम्बीरीनीबू, मुनक्का, दाडिम, बिजौरानीबू, कोमल नारियल की गरी, नारियल का जल, मिश्री, मद्य, मन को अच्छी लगने वाली सुगन्ध, चन्दन आदि का लेपन, शिरःस्नान, सुखपूर्वक बैठना, ये वमन रोग में पथ्य होते हैं।

वमनरोग में अपथ्य

नस्यं बस्तिं स्वेदनं स्नेहपानं रक्तस्रावं दन्तकाष्ठं द्रवान्नम् ।
बीभत्सेक्षां भीतिमुद्वेगमुष्णं स्निग्धासात्म्यां हृद्यवैरोधिकान्नम् ॥ १७१ ॥
शिम्बी बिम्बी कोषवत्यो मधूकं चित्रामेलां सर्षपान् देवदालीम् ।
व्यायामं च छत्रिकामञ्जनं च छर्द्यां सत्यां वर्जयेदप्रमत्तः ॥ १७२ ॥

नस्य, बस्ति कर्म, स्वेदन, स्नेहपान, सिरावेध, दातून, मण्ड, यूष आदि पतले पदार्थों का निरन्तर सेवन, घृणित पदार्थों को देखना, भयभीत होना, घबड़ाहट, अधिक गरम, अधिक स्निग्ध, असात्म्य, अहृद्य (अरुचिकर) तथा विरोधी भोजन का सेवन, शिम्बीधान्य, बिम्बी, (कुन्दरू), कड़वी तोरई,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

महुआ, चीता के जड़ की छाल, इलाइची, सरसों, देवदाली (घघर बेल), सभी प्रकार के व्यायाम, छत्रिका (गुच्छी, मशरूम), अंजन इनको वमन काल में सावधान होकर छोड दें ॥ १७१-१७२ ॥

अन्यत्र निर्दिष्ट अपथ्य—जो तीक्ष्ण तथा घबड़ाहट पैदा करने वाले पदार्थ हों तथा चिकित्सोपयोगी कर्म हों, उन सभी को आरोग्य की इच्छा करने वाले बुद्धिमान् रोगी छोड़ दें।

तृष्णा रोग में पथ्य

शोधनं शमनं निद्रां स्नानं कवलधारणम्।
जिह्वाधः सिरयोर्दाहो दीपदग्धहरिद्रया ॥ १७३ ॥
कोद्रवाः शालयः पेया विलेपी लाजसक्तवः।
अन्नमण्डो धन्वरसाः शर्करारागषाडवौ ॥ १७४ ॥
भृष्टैर्मुद्गैर्मसूरैर्वा चणकैर्वा कृतो रसः।
रम्भापुष्पं तक्रकूर्च्चं द्राक्षा पर्पटपल्लवाः ॥ १७५ ॥
कपित्थं कोलमम्लीका कूष्माण्डकमुपोदिका।
खर्जूरं दाडिमं धात्री कर्कटी नलदम्बु च ॥ १७६ ॥
जम्बीरं करमर्दं च बीजपूरं गवां पयः।
मधूकपुष्पं ह्रीबेरं तिक्तानि मधुराणि च ॥ १७७ ॥
बालतालाम्बु शीताम्बु पयः पेटी प्रपानकम्।
माक्षिकं सरसां तोयं शताह्वां नागकेशरम् ॥ १७८ ॥
एला जातीफलं पथ्या कुस्तुम्बरु च टङ्कणम्।
घनसारो गन्धसारः कौमुदी शिशिरानिलः ॥ १७९ ॥
चन्दनार्द्रप्रियाश्लेषो रत्नाभरणधारणम्।
हिमानुलेपनं च स्यात् पथ्यमेतत् तृषातुरे ॥ १८० ॥

शोधन (वमन-विरेचन) तथा दोषों को शान्त करने वाले पदार्थों का सेवन, रात्रि में सोना, स्नान करना, मुख में कवल धारण करना, जीभ के नीचे दोनों ओर की सिराओं को दीपक में सूखी हल्दी को जलाकर दागना, कोदों , लाल शालीधान, पेया, विलेपी, लावा (खील) के सत्तू, चावलों का माँड़, जांगल देश में विचरण करने वाले पशु-पक्षियों का मांस रस, चीनी, राग, भूँजे हुए मूंग, मसूर अथवा चना का यूष, केला का फूल, तक्रकूर्च (पनीर), मुनक्का, परबल के पत्ते, कैथ का पका हुआ फल, बेर, इमली, कोहड़ा पाक, पोई का शाक, खजूर, दाड़िम, आँवला, ककड़ी, खस का जल, जम्वीरी नीबू, करौंदा, बिजौरानीबू, गाय का दूध, महुआ फूल, हाऊबेर, तीते तथा मधुर रस, कोमल ताड़ का पानी(ताड़ी), ठंडा पानी, नारियल का जल युक्त फल, शरबत, मधु, नदियों का शुद्ध जल, सोया, नागकेशर, इलायची, जायफल, हरड़, धनिया, टंकण, कपूर, चन्दन, चाँदनी, शीतल हवा, चन्दन के घोल से शरीर में लेप लगायी हुई प्रियतमा का आलिंगन, रत्नजटित आभूषणों को धारण करना, शीतल द्रव्यों का स्पर्श या लेपन, तृष्णारोग से पीड़ित के लिये ये सभी पदार्थ पथ्य हैं ॥१७३ -१८० ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वक्तव्य— अन्य संस्करण में 'कोद्रवा' के स्थान पर 'षष्टिकाः' (सांठी के धान्य) पाठ है। इसके अतिरिक्त अन्य पाठ समान होने पर भी कुछ पंक्तियाँ नीचे ऊपर की गयी हैं, जिनसे पथ्य द्रव्यों की संख्या में किसी प्रकार का अन्तर नहीं हुआ है।

षाडव— इसे 'पन्ना' भी कहते हैं। इसमें मधुर तथा अम्ल द्रव्यों को मिलाकर उचित मात्रा में जल मिलाया जाता है। जैसे- आम, इमली या फालसा के रस में चीनी तथा पानी डालकर बनाया गया पेय।

राग— मिश्री, सोंचरनमक, सेंधानमक, विषांविल, फालसा, जामुन के फलों का रस, पिसी हुई राई इन सभी द्रव्यों द्वारा मात्रानुसार बनाया गया पदार्थ 'राग' कहा जाता है। देखें—सिद्धयोग संग्रह, अरोचकचिकित्सा।

अन्यत्र पथ्य-अपथ्य निर्देश— हृदय के लिये हितकर तथा रुचिकर पदार्थ, अत्यन्त मधुर द्रव्य, शीतस्पर्श एवं शीतवीर्य पदार्थों का सेवन तृषारोगी करे, ये पथ्य हैं। इनके विपरीत जो तीक्ष्ण पदार्थ तथा घबड़ाहट पैदा करने वाले पदार्थों का सावधानी के साथ त्याग करे, क्योंकि ये अपथ्य होते हैं।

तृष्णारोग में अपथ्य

स्नेहाञ्जनस्वेदनधूमपानव्यायामनस्यातपदन्तकाष्ठम् ।
गुर्वन्नमम्लं लवणं कषायकटु स्त्रियं दुष्टजलानि तीक्ष्णम् ॥ १८१ ॥
एतानि सर्वाणि हिताभिलाषी तृषातुरो नैव भजेत् कदाचित् ॥ १८२ ॥

स्नेहन, अंजन, स्वेदन, (पसीना उत्पन्न कराने का प्रयत्न), धूमपान, व्यायाम (किसी प्रकार का भी शारीरिक परिश्रम), नस्य, धूप सेंकना, दातून करना, देर में पचने वाले आहारों का सेवन, अम्ल पदार्थ, नमकीन वस्तुएँ, कषाय रस प्रधान द्रव्यों का सेवन, कटु (सोंठ, मरिच, पीपल), स्त्री सहवास, दूषित जल, तीक्ष्ण गुणवाले पदार्थ, अपना भला चाहने वाला तृष्णारोगी उक्त द्रव्यों का कभी सेवन न करे। ये पदार्थ उसके लिये अपथ्य (अहितकर) होते हैं ॥ १८१-१८२ ॥

मूर्च्छा रोग में पथ्य

सेकावगाहौ मणयः सहाराः शीताः प्रदेहा व्यजनानिलश्च ।
शीतानि पानानि च गन्धवन्ति धारागृहं शीतमरीचिरोचिः ॥ १८३ ॥
धूमोऽञ्जनं नावनमस्रमोक्षो दाहश्च सूचीपरितोदनानि ।
रोम्णां कचानामपि कर्षणानि नखान्तपीडा दशनोपदंशः ॥ १८४ ॥
नासामुखद्वारमरुन्निरोधो विरेचनच्छर्दनलङ्घनानि ।
क्रोधो भयं दुःखकरी च शय्या कथा विचित्रा च मनोहराणि ॥ १८५ ॥
छाया नभोऽम्भः शतधौतसर्पिर्मृदूनि तिक्तानि च लाजमण्डः ।
जीर्णा यवा लोहितशालयश्च कौम्भं हविर्मुद्गसतीनयूषाः ॥ १८६ ॥
धन्वोद्भवा मांसरसाश्च रागाः सषाडवा गव्यपयः सिता च ।
पुराणकूष्माण्डपटोलमोचहरीतकीदाडिमनारिकेलम् ॥ १८७ ॥
मधूकपुष्पाणि च तण्डुलीयमुपोदिकान्नानि लघूनि चापि ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रतीरनीरं सितचन्दनानि कर्पूरनीरं हिमबालुका च ॥ १८८ ॥
अत्युच्चशब्दोऽद्भुतदर्शनानि गीतानि वाद्यान्यपि चोत्कटानि ।
श्रमः स्मृतिश्चिन्तनमात्मबोधो धैर्यं च मूर्च्छावति पथ्यवर्गः ॥ १८९ ॥

शीतल (ठड़े) जल का सेक करना अर्थात् रोगी के ऊपर शीतल जल की धरा गिराते रहना अथवा टब आदि पात्र में शीतल जल डालकर सिर को छोड़कर सम्पूर्ण शरीर को डुबा देना, मणियों की हारों को पहनना, शीतल लेप लगाना, ताड़ आदि के पंखों से हवा करते रहना, शीतल सुगन्धित पेयों को पिलाना, धारागृह (फुहारों से युक्त घर) में निवास, चन्द्रमा की किरणों का सेवन, धूमपान, अंजन, नस्य, सिरावेध कराकर रक्त को निकालवाना, दाहकर्म, सुई चुभाना, रोमों तथा केशों को उखाड़ना, नखों के अन्तिम भाग में सुई चुभाना, दाँतों से काटना, नासिका के छिद्रों को तथा मुख को वन्द करना (इन कृत्यों से रोगी की मूर्च्छा भंग हो जाती है।), विरेचन, वमन, लंघन कराना, उस पर क्रोध करना, डराना, ऊबड़-खाबड़ शय्या को रखना जिससे उसे नींद न आ सके, विविध प्रकार की मनोहर कहानियाँ, रोगी को छाया के नीचे रखना, आकाशीय जल को पिलाना (चिकित्सकों के पास इस जल का संग्रह रहता है।) शतधौत घृत की मालिश करना, मृदु (सुकोमल) तथा तिक्तरस प्रधान पदार्थ, लाजों (खीलों) का माँड, पुराने जौ, लाल शाली के चावल, कुम्भघृत (सु.सू.४५ । १०८-१११), मूंग, मटर के यूष, जांगल देश निवासी पशु-पक्षियों के मांस रस, राग, षाडव, गाय का दूध, मिश्री, पुराना (पका हुआ) कोहड़ा, परबल, केला, हरड़, दाड़िम, नारियल, महुआ के फूल, चौलाई, पोई का शाक, सुपाच्य आहार, नदी के किनारे के कूपों का जल, सफेद चन्दन, कपूर मिश्रित जल, शीतल बालू, जोरदार शब्द, आश्चर्य चकित कर देने वाले पदार्थों को दिखाना, जोरदार गीतों तथा वाक्यों का आयोजन, परिश्रम कारक कार्यों का करना, याद रखना, चिन्तन करना, आत्मबोध (अपने को पहचानना), तथा धैर्य धारण करना ये सभी मूर्च्छा वाले रोगी के लिये पथ्य होते हैं ॥८३-१८९ ॥

वक्तव्य— उक्त १८३वें पद्य की चौथी पंक्ति इस प्रकार मिलती है–'सर्वासु मूर्च्छास्वनिवारितानि', और 'धूमोऽञ्जनं---मनोहराणि' ॥ ये दो पद्य नहीं मिलते। 'अत्युच्च---चोत्कटानि', ये कर्म भी मूर्च्छा को हटाने के लिये ही किये जाते हैं।

अन्यत्र पथ्य निर्देश— जौ, लाल शाली के चावल, बैगन, परबल, इनके यूष, जांगल देशीय प्राणियों के मांस, रोहित आदि मछलियाँ, गाय का धारोष्ण दूध, मठा, नदी के निर्मल जल में स्नान, ये पदार्थ मूर्च्छारोग तथा सन्यास नामक रोग में पथ्य कहे गये हैं।

मूर्च्छा रोग में अपथ्य

ताम्बूलं पत्रशाकानि दन्तघर्षणमातपम् ।
विरुद्धान्यन्नपानानि व्यवायं स्वेदनं कटु ॥
तृण्निद्रयोर्वेगरोधं तक्रं मूर्च्छामयी त्यजेत् ॥ १९० ॥

ताम्बूल सेवन, सभी पत्रशाक, दातून करना, धूप सेकना, विरुद्ध अन्नपान, स्त्री सहवास, स्वेदन कर्म, कटु रस प्रधान द्रव्यों का सेवन, प्यास तथा निद्रा के वेग को रोकना तथा मट्ठा का सेवन करना मूर्च्छा रोगी छोड़ दे, ये अपथ्य होते हैं ॥ १९० ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अन्यत्र अपथ्य निर्देश– सभी तीक्ष्ण द्रव्य, सभी उत्तेजक कार्य, अधारणीय वेगों को रोकना, क्रोध, शोक आदि भावों से मूर्च्छा रोग बढ़ता है, अतः ये अपथ्य हैं।

मदात्ययरोग में पथ्य

संशोधनं संशमनं स्वपनं लङ्घनं श्रमः ।
संवत्सरसमुत्पन्नाः शालयः षष्टिका यवाः ॥ १९१ ॥
मुद्‌गा माषाश्च गोधूमाः सतीना रागषाडवौ ॥
एणतित्तिरिलावाजदक्षबर्हिशशामिषम् ॥ १९२ ॥
बेशवारो विचित्रान्नं हृद्यं मद्यं पयः सिता ।
तण्डुलीयं पटोलं च मातुलुङ्गं परूषकम् ॥ १९३ ॥
खर्जूरं दाडिमं धात्री नारिकेलं च गोस्तनी ।
सर्पिः पुराणं कर्पूरं प्रनीरं शिशिरानिलः ॥ १९४ ॥
धारागृहं चन्द्रपादा मणयो मित्रसङ्गमः ।
क्षौमाम्बरं प्रियाश्लेषो गीतं वादित्रमुद्धतम् ॥
शीताम्बु चन्दनं स्नानं सेव्यमेतन्मदात्यये ॥ १९५ ॥

संशोधन (वमन-विरेचन), संशमन (वात आदि दोषों के शामक औषध, आहार, विहार आदि) का सेवन, दिन में सोना, लंघन (हलका भोजन करना), शरीरिक परिश्रम, एक वर्ष पुराने शाली धान्य, साँठी के धान्य, जौ, मूंग, उड़द, गेहूँ, मटर, राग, षाडव, कालाहिरन, तीतर, लवा, मुर्गा, मोर, खरगोश जांगल देशवासी इन प्राणियों के मांस, वेशवार, विविध प्रकार के अन्न, हृदय को हितत्कर तथा रुचिकर पदार्थ, मद्य, दूध, मिश्री, चौलाई, परबल, बिजनौरा नीबू, फालसा, खजूर, दाड़िम, आँवला, नारियल की गरी, मुनक्का, पुराना घी, कपूर, शीतल हवा, फुहारों वाला घर, चादनी रात, मणियों को धारण करना, मित्रजनों का साथ, रेशमी वस्त्र, प्रियजनों तथा पत्नी का आलिंगन, जोरदार गाना-बजाना, शीतल जल से स्नान करना, शीतल चन्दन का लेप, इनका सेवन मदात्यय रोग में हितकर होता है ॥ १९१-१९५ ॥

अन्यत्र पथ्य निर्देश– पुराने शाली, मूंग, जौ हितकर होते हैं। मिश्री, दूध, परवल, खजूर, दाडिम, नारियल की गिरी, मुनक्का, आँवला, विविध प्रकार के मनोनुकूल अन्न, मद्य, फालसा, लवा, तीतर, मुर्गा, काला हिरन, खरगोश, बकरा इनके मांसों का रस, शीतल हवा, फुहारों वाला घर, चन्द्रकिरणें, चन्दन का लेप, स्नान, प्रिया का आलिङ्गन, ये मदात्पय रोग में पथ्य होते हैं।

मदात्ययरोग में अपथ्य

स्वेदोऽञ्जनं धूमपानं नावनं दन्तघर्षणम् ।
ताम्बूलं चेत्यपथ्यं स्यान्मदात्ययविकारिणाम् ॥१९६ ॥

स्वेदन कर्म, अंजन प्रयोग, धूमपान, नस्य, दातून करना, ताम्बूल का सेवन करना ये सभी मदात्यय रोगियों के लिये अपथ्य कहे गये हैं ॥ १९६ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अन्यत्र अपथ्य निर्देश— ताम्बूल सेवन, धूमपान, नमक मिश्रित खाद्य पदार्थ, स्वेदन कर्म, अंजन प्रयोग तथा सभी तीक्ष्ण पदार्थों को मदात्यय रोग में अपथ्य समझकर त्याग दें।

दाहरोग में पथ्य

शालयः षष्टिका मुद्गा मसूराश्चणका यवाः ।
धन्वमांसरसा लाजमण्डस्तत्सक्तवः सिता ॥ १९७ ॥
शतधौतघृतं दुग्धं नवनीतं पयोभवम् ।
कूष्माण्डं कर्कटी मोचं पनसं स्वादुदाडिमम् ॥ १९८ ॥
पटोलं पर्पटं द्राक्षा धात्रीफलपरूषकम् ।
बिम्बी तुम्बी पयः पेटी खर्ज्जूरं धान्यकं मिशिः ॥ १९९ ॥
बालतालं प्रियालं च शृङ्गाटककशेरुकम् ।
मधूकपुष्पं ह्रीबेरं पथ्या तिक्तानि सर्वशः ॥ २०० ॥
शीताः प्रदेहा भूवेश्म सेकोऽभ्यङ्गोऽवगाहनम् ।
पद्मोत्पलदलक्षौमशय्या शीतलकाननम् ॥ २०१ ॥
कथा विचित्रा गीतानि शिशिरो मंजुभाषिणः ।
उशीरचन्दनालेपः शीताम्बु शिशिरानिलः ॥ २०२ ॥
धारागृहं प्रियास्पर्शः प्रनीरं हिमबालुका ।
सुधांशुरश्मयः स्नानं मणयो मधुरो रसः ॥ २०३ ॥
पुरा यानि विधेयानि पित्तहारीणि तानि च ।
इति दाहवतां नृणां पथ्यवर्ग उदाहृतः ॥ २०४ ॥
धारावेश्म तथा सुशीतलशशिज्योत्स्ना तु पानानि च ।
वातः शीतलचन्दनं च कमलं प्रेमानुबन्धस्तथा ।
रामागूहनमर्दनस्तनयुगे शुक्लार्द्रवस्त्राणि च ।
क्षीरं शर्करशङ्खलोहरजतं दाहप्रशान्त्यै हितम् ॥ २०५ ॥

शालीधान्य, साँठी धान्य, मूंग, मसूर, चना, जौ, धन्व (मरु), भूमि में रहने वाले पशु-पक्षियों के मांस रस, लावा (खील) का माड़, तथा सत्तू, मिश्री, शतधौत घी, दूध, दूध से निकाला हुआ मक्खन, कोहड़ा, ककड़ी, केला का फल, कटहर, स्वादु दाड़िम (अनार), परबल, पितपापड़ा, मुनक्का, आँवला, फालसा, कुंदरू, तुम्बी (गोल लौकी), पयः पेटी (नारियल जिसमें दूध भरा हो), खजूर, धनियाँ, सौंफ, कच्चा ताड़ का फल, चिरौंजी, सिंघाड़ा, कसेरू, महुआ का फूल, हाऊबेर, हरड़, सभी प्रकार के तिक्त रस प्रधान पदार्थ, शीतल लेप, तहखाने के भीतर का निवास, पानी द्वारा सेचन, अभ्यंग (मालिश), द्रोणी अवगाहन (टब में लेटकर नहाना), सफेद तथा नील कमल के पत्तों को बिछाकर बनायी गयी शय्या, अथवा रेशमी वस्त्रों की शय्या, शीतल वन (बावड़ी तथा फुहारों से युक्त उपवन), विविध प्रकार की कथा-वार्ता, गीत, शीतल उपचार, प्रिय भाषण करने वाले आत्मीयजन, खस तथा चन्दन का आलेपन, शीतल जल, शीतल हवाएँ, फुहारोंवाला घर, प्रियतमा का आलिंगन, प्रनीर (उत्तम जल

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जो स्वभाव से ही मधुर एवं शीतल हो, यहाँ 'प्रनीर' का अर्थ है— प्रकृष्ट नीर, अन्यथा 'शीताम्बु' ऊपर कहा ही जा चुका है।) शीतल बालू, चन्द्रमा की किरणें, स्नान, मणियों को धारण करना, मधुर रसों का सेवन, जो-जो पहले पित्तनाशक उपाय कहे गये हैं, उनका भी सेवन करना, ये दाह से पीड़ित पुरुषों के लिये पथ्य समूह कह दिया गया है। और भी—फुहारों से युक्त घर या घर का बगीचा, सुखद एवं शीतल चन्द्रमा की चाँदनी, शीतल पेय पदार्थ, ठड़ी हवा, शीतल चन्दन का लेप, कमल के फूल, प्रेमपाश में बाँधने वाली बातें, रमण करने योग्य स्त्री का आलिंगन, पीनस्तन युगल को बार बार हाथों द्वारा स्पर्श करना, सफेद तथा गीले वस्त्रों को धारण करना, दूध, शर्करा, (चीनी या मिश्री), शंख, लोहे, चाँदी इनकी भस्मों का सेवन दाहशान्ति के लिये हितकर होते हैं ॥१९७-२०५॥

वक्तव्य— प्रस्तुत 'पथ्यापथ्यविनिर्णय' एक संग्रह ग्रन्थ है, अन्यथा 'पुरातानि च', इस श्लोकार्ध के अनुसार 'पित्तशामक' पथ्यपदार्थों का वर्णन इसके पूर्व होना चाहिये था, जो इस ग्रन्थ में नहीं है। जिसका वर्णन श्रीविश्वनाथ कविराज ने ५२३ से ५२७ तक के पद्यों द्वारा किया है। अतः यहाँ 'पुरा' के स्थान पर 'पश्चात्' शब्द का प्रयोग होना चाहिये था।

अन्यत्र पथ्य निर्देश— प्रायः उपर्युक्त पथ्यों के समान ही है।

दाहरोग में अपथ्य

विरुद्धान्यन्नपानानि क्रोधं वेगविधारणम्।
गजाश्वयानमध्वानं क्षारं पित्तकराणि च ॥ २०६ ॥
व्यायाममातपं तक्रं ताम्बूलं मधु रामठम्।
व्यवायं कटुतीक्ष्णोष्णं दाहवान् परिवर्जयेत् ॥ २०७ ॥

स्वभाव विरुद्ध तथा संयोग विरुद्ध खान-पान, क्रोध (इससे पित्त की वृद्धि होती है और पित्त दाहकारक होता है) अधारणीय वेगों को धारण करना, हाथी, घोड़ा, ऊँट आदि पृष्ठयान, अधिक रास्ता चलना, सभी प्रकार के क्षारों का सेवन, पित्तवर्धक सभी पदार्थ, सभी प्रकार के व्यायाम, धूप सेंकना, मट्ठा का सेवन, पान, मधु, हींग, स्त्री सहवास, कटुरस वाले, तीक्ष्ण, उष्णवीर्य, उष्णस्पर्श वाले तथा दाहकारक पदार्थों का सेवन न करें, ये सभी अपथ्य होते हैं ॥२०६-२०७॥

उन्मादरोग में पथ्य

स्नेहो विरेको वमनं च पूर्वं क्रमान्मरुत्पित्तकफोद्भवेषु।
ततः परं वस्तिविधिश्च नस्यं सन्तर्जनं ताडनमञ्जनं च ॥ २०८ ॥
आश्वासनत्रासनबन्धनानि भयानि दानानि च हर्षणानि।
धूपो वधो विस्मरणं प्रदेहः सिराव्यधः संशमनं च सेकः ॥ २०९ ॥
आश्चर्य्यकर्म्माणि च धूमपानं धीधैर्य्यसत्वात्मनिवेदनानि।
अभ्यञ्जनं स्नापनमासना च निद्रा सुशीतान्यनुलेपनानि ॥ २१० ॥
गोधूममुद्गारुणशालयश्च धारोष्णदुग्धं शतधौतसर्पिः।
घृतं नवीनं च पुरातनं च कूर्मामिषं धन्वरसा रसालम् ॥ २११ ॥
पुराणकूष्माण्डफलं पटोलं ब्राह्मीदलं वास्तुकतण्डुलीयम्।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

खराश्वमूत्रं गगनाम्बु पथ्या सुवर्णचूर्णानि च नारिकेलम् ।
द्राक्षा कपित्थं पनसं च वैद्यैर्विधेयमुन्मादगदेषु पथ्यम् ॥ २१२ ॥

वातज, पित्तज, कफज उन्मादरोग में क्रमशः स्नेहपान, विरेचन, वमन कराना चाहिये । उसके बाद बस्तिप्रयोग, नस्य कर्म, डाटना,पीटना, अञ्जन लगाना, उसे आश्वासन देना, डराना, बाँधना, भय दिखलाना, उसके हाथों से दान दिलाना, उसे प्रसन्न कराने का प्रयास करना, धूप (गुग्गुलु आदि की धूनी देना), 'वधः', के स्थान पर अन्यत्र 'दमः' पाठ है, जो अधिक उचित होता है, क्योंकि वध का अर्थ मार डालना तो अभीष्ट नहीं है, यदि उसका अर्थ हम मारना-पीटना करते हैं तो पुनरुक्ति हो जायेगी, अतः रोगी का तथा उसकी इन्द्रियों का दमन करना ही उचित है, विस्मरण (भुलावा देना), लेप लगाना, सिरावेध (इस कर्म से कभी आश्चर्य जनक लाभ होते देखा गया है ।), वात आदि दोषों को शान्त करने के उपाय करना, शीतल जल द्वारा उसके अंगों को सींचना, आश्चर्यजनक कर्मों को करके दिखाना, जिससे उसका ध्यान दूसरी ओर बदल जाय, धूमपान कराना, रोगी को समझाना, धैर्य प्रदान करना, सत्त्व गुण की वृद्धि के उपाय, आत्मज्ञान का उपदेश करना, अभ्यंग करना, स्नान कराना, बैठे रहने का अभ्यास कराना, निद्रा, शीतल चन्दन आदि के लेप लगाना, गेहूँ, मूंग, लाल शालिधान्य, धारोष्ण दूध, शतधौत घृत, नया तथा पुराना घी, कछुआ का मांस, मरुभूमि में निवास करने वाले पशु-पक्षियों के मांस रस, पका आम, पुराना कोहड़ा अर्थात् पका हुआ पेठा, परबल, ब्राह्मी के पत्ते, बथुआ, चौलाई, गधा, घोड़ा का मूत्र, वर्षा का जल, हरड़, सुवर्ण भस्म, नारियल की गिरी, मुनक्का, पका हुआ कैथ का फल, कटहर, ये सभी द्रव्य उन्मादरोग में पथ्य कहे गये हैं ॥२०८-२१२ ॥

कामादिज उन्माद रोगों में पथ्य

कामशोकभयक्रोधहर्षैर्वा लोभसम्भवान् ।
परस्परप्रतिद्वन्द्वैरेभिरेव शमं नयेत् ॥ २१३ ॥
इष्टद्रव्यविनाशात्तु मनो यस्योपहन्यते ।
तस्य तत्सदृशप्राप्त्या सान्त्वाश्वासैश्च तं जयेत् ॥२१४ ॥

कामज, शोकज, भयज, क्रोधज, हर्षज तथा लोभज उन्माद रोगों को परस्पर विपरीत कारणों से शान्त करने का प्रयत्न करना चाहिये । यथा कामज उन्माद रोग का ब्रह्मचर्य का सेवन करने ले, शोकज उन्माद को प्रसन्नता से, भयज उन्माद को शूरता तथा वीरता से, क्रोधज को शान्ति से, हर्षज को विषाद से, लोभज को दान आदि विधियों से शान्त करना चाहिये । इष्टजन (भाई, पुत्र, पत्नी आदि) तथा इष्ट धन के नाश होने के कारण उत्पन्न उन्माद रोग में उन-उन भावों की प्राप्ति कराकर अथवा समझा-बुझाकर उस उन्माद रोग को जीतना चाहिये ॥ २१३-२१४ ॥

देवादिज उन्माद रोगों में पथ्य

देवर्षिपितृगन्धर्वैरुन्मत्तेषु च बुद्धिमान् ।
त्यजेन्नस्याञ्जनादीनि तीक्ष्णानि क्रूरकर्म च ॥ २१५ ॥
पूजाबल्युपहारशान्तिविधयो होमेष्टिमन्त्रक्रिया
दानं स्वस्त्ययनं व्रतानि नियमः सत्यं जपोमङ्गलम् ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रायश्चित्तविधानमञ्जनविधी रत्नोषधीधारणं
भूतानामनुरूपमिष्टचरणं गौरीपतेरर्चनम् ॥ २१६ ॥
ये च स्युर्भुवि गुह्यकाश्च प्रमथास्तेषां समाराधनं ।
देवब्राह्मणपूजनं च शमयेदुन्मादमागन्तुकम् ॥ २१७ ॥

देव, ऋषि, पितर तथा गन्धर्वों के प्रकोप से उत्पन्न उन्मादरोग में बुद्धिमान् चिकित्सक नस्य प्रयोग, अंजन लगाना, आदि तीक्ष्ण तथा क्रूर कर्मों को छोड़ दे, क्योंकि इनके प्रयोग से देव आदि और भी अधिक कुपित हो जाते हैं। अतः इनकी शान्ति के लिये पूजा, बलिदान, उपहार (भेंट) आदि शान्ति कारक विधियों का प्रयोग करें, होम, यज्ञ, मन्त्रों का प्रयोग, दान, स्वस्तिवाचन, शान्तिपाठ, व्रत, नियम, सत्यभाषण, जपकरना, मंगलकारक कृत्य, प्रायश्चित्तविधि (उक्त विकार को दूर करने की विधि), विविध प्रकार के अंजनों को लगाना, रत्नों तथा औषधियों को धारण करना, उन-उन भूतों के अनुकूल प्रिय आचरण (व्यवहार) करना, शिवजी की उपासना करना, जो पृथ्वी पर गुह्यक (एक अर्धदेवों की श्रेणी, जो कुबेर के सेवक तथा उसके कोष के संरक्षक हैं) और प्रमथ (भूत-प्रेत आदि शिवजी के गण), आदि हैं, उनकी भली-भाँति पूजा करना, देव तथा ब्राह्मणों की पूजा करना ये सब उपाय आगन्तुज उन्माद का शमन करते हैं ॥ २१५-२१७ ॥

वक्तव्य— प्रायः इसी प्रकार के पथ्यों एवं अपथ्यों का वर्णन अन्यत्र भी उपलब्ध होता है।

उन्मादरोगों में अपथ्य

मद्यं विरुद्धाशनमुष्णभोजनं निद्राक्षुधातृट्कृतवेगधारणम् ।
व्यवायमाषाढफलं कठिल्लकं शाकानि पत्रप्रभवाणि सर्वशः ॥ २१८ ॥
तिक्तानि बिम्बी च भिषक् समादिशेदुन्मादरोगोपहतेषु गर्हितम् ॥ २१९ ॥

मद्यपान करना, सभी प्रकार के विरुद्ध भोजन, गरम-गरम भोजन करना, नींदँ, भूख तथा प्यास के वेगों को रोकना, स्त्री सहवास या पुरुष सहवास, पलाश के बीज, करेला, सभी प्रकार के पत्रशाक सभी तिक्तरस प्रधान पदार्थ तथा कुंदरू, चिकित्सक का कर्तव्य है कि वह उन्माद रोगी को इनका सेवन न करने दे ॥२१८-२१९ ॥

अपस्मार रोग में पथ्य

बस्तिर्वातोद्भवे पूर्वं पैत्तिके च विरेचनम् ।
वमनं श्लैष्मिके चापि परं धूपनमञ्जनम् ॥ २२० ॥
नस्यं शिराव्यधो दानं त्रासनं बन्धनं भयम् ।
तर्ज्जनं ताडनं हर्षो धूमपानं च विस्मयः ॥ २२१ ॥
धीधैर्यात्मादिविज्ञानं स्नानमभ्यञ्जनानि च ।
लोहिताः शालयो मुद्गा गोधूमाः प्रतनं हविः ॥ २२२ ॥
कूर्मामिषं धन्वरसा दुग्धं ब्राह्मीदलं वचा ।
पटोलं वृद्धकूष्माण्डं वास्तूकं स्वादु दाडिमम् ॥ २२३ ॥
शोभाञ्जनं पयः पेटी द्राक्षा धात्री परूषकम् ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तैलं खराश्वमूत्रं च गगनाम्बुहरीतकी ॥
अपस्मारगदे नृणां पथ्यमेतदुदीरितम् ॥ २२४ ॥

वातदोष जनित अपस्मार रोग में सर्वप्रथम बस्ति प्रयोग, पित्तदोष जनित अपस्मार रोग में विरेचन और कफज अपस्मार में वमन कराना चाहिये। इसके बाद धूपों (धूमों) का तथा अंजनों का प्रयोग करें, पुनः क्रमशः नस्य, सिरावेध द्वारा रक्तमोक्षण, यथाविधि दान देना, डराना, बाँधना, भयभीत करना, डाटना या भिड़कना, पीटना, प्रसन्न करना, धूमपान कराना, आश्चर्यचकित कर देना, बुद्धि, धैर्य, आत्मादि का ज्ञान कराना स्नान, अभ्यंग, लालशाली, मूंग, गेहूँ, पुराना घी, मरुभूमि में रहने वाले पशु-पक्षियों के मांस रस, दूध, ब्राह्मी की पत्ती, बालवच, परबल, वृद्ध (परिपक्व) कूष्माण्ड (कोहड़ा), वथुआ, मीठा अनार, सहजन, दूध से भरा हुआ नारियल, मुनक्का, आँवला, फालसा, तेल, गधा, तथा घोड़ा का मूत्र, आकाश (वर्षा) का जल, हरड़, ये सभी द्रव्य अपस्माररोग में पथ्य कहे गये हैं ॥ २२०-२२४ ॥

अन्यत्र पथ्य निर्देश— पुराना घी, मूंग, गेहूँ, लाल शाली के चावल, कछुआ का मांस, मरुभूमि के प्राणियों के मांस रस, दूध, ब्राह्मी की पत्तियाँ, बालवच, परबल, पका हुआ कोहड़ा, बथुआ, मीठा अनार, सहजन, नारियल, फालसा, आँवला, इस प्रकार के अन्य पदार्थ जो यादगार को बढ़ाने में सहायक हों वे भी पथ्य होते हैं।

अपस्मार रोग में अपथ्य

चिन्तां शोकं भयं क्रोधमशुचीन्यशनानि च ।
मद्यं मत्स्यं विरुद्धान्नं तीक्ष्णोष्णगुरुभोजनम् ॥ २२५ ॥
अतिव्यवायमायासं पूज्यपूजाव्यतिक्रमम् ।
पत्रशाकानि सर्वाणि बिम्बीमाषाढजं फलम् ॥
तृषानिद्राक्षुधावेगानपस्मारी नरस्त्यजेत् ॥ २२६ ॥

मानसिक चिन्ता, शोक, भय, क्रोध, अपवित्र भोजन पदार्थ, मद्य, मछलियों का मांस, विरुद्ध अन्न, तीक्ष्ण, उष्ण तथा देर में पचने वाले भोजन, अत्यन्त स्त्रीसहवास, अधिक परिश्रम करना, पूज्य जनों (माता-पिता, गुरु, देवता, आदि) की पूजा (सम्मान) में गड़बड़ी करना, सभी प्रकार के पत्रशाक, कुंदरू, पलाश के बीज, प्यास, निद्रा, भूख के वेगों को रोकना, ये सभी अपस्मार रोगी के लिये अपथ्य हैं ॥ २२५-२२६ ॥

अन्यत्र अपथ्य निर्देश— चिन्ता, शोक, भय, क्रोध, अपवित्र भोजन पदार्थों का सेवन, मद्य, मछलियाँ, विरुद्ध अन्न, तीक्ष्ण, उष्ण, गुरु भोजन, अधिक परिश्रम, तथा स्त्रीसहवास, पूज्य-पूजा-व्यतिक्रम, कुंदरू, पलाश के बीज, सभी पत्रशाक, नींद, भूख, प्यास के वेगों को रोकना, जलावगाहन, पहाड़ तथा पेड़ पर चढ़ना, ये सभी अपस्मार रोग में अपथ्य कहे गये है, इनका सेवन न करें।

वातरोग में पथ्य

अभ्यङ्गो मर्दनं बस्तिः स्नेहः स्वेदोऽवगाहनम् ।
संवाहनं संशमनं प्राक्प्रवातविवर्ज्जनम् ॥ २२७ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अग्निकर्म्मोपनाहश्च भूशय्या स्नानमासनम् ।
तैलद्रोणी शिरोबस्तिः शयनं नस्यमातपः ॥ २२८ ॥
सन्तर्पणं बृंहणं च किलाटं दधिकूर्च्चिकाः ।
सर्पिस्तैलं वसा मज्जा स्वाद्वम्बु लवणा रसाः ॥ २२९ ॥
नवीनास्तिलगोधूममाषाः संवत्सरोत्थिताः ।
शालयः षष्टिकाश्चापि कुलत्थानां रसः सुराः ॥ २३० ॥
ग्राम्यगोश्वतरोष्ट्राश्वरासभच्छागलादयः ।
अनूपाः कोलमहिषन्यंकुखड्गगजादयः ॥ २३१ ॥
औदका हसंकादम्बचक्रमर्दबकादयः ।
बिलेशया भेकगोधानकुलश्वाविदादयः ॥ २३२ ॥
चटकः कुक्कुटो बर्हीः तित्तिरिश्चेति जाङ्गलाः ।
शिलीन्ध्रः पर्व्वदो नक्रो गर्गरः कवयील्लिशः ॥ २३३ ॥
एरण्डश्चुल्लकी कूर्मः शिशुमारस्तिमिङ्गिलः ।
रोहितो मद्गुरः शृङ्गी वर्म्मी च खुडिशो झषाः ॥ २३४ ॥
पटोलं शिग्रुवार्त्ताकुं लशुनं दाडिमद्वयम् ।
पक्वतालं रसालं च नलदम्बु परूषकम् ॥ २३५ ॥
जम्बीरं बदरं द्राक्षा नागरङ्गं मधूकजम् ।
प्रसारणी गोक्षुरकः शुक्लाक्षी पारिभद्रकः ॥ २३६ ॥
पयांसि च पयः पेटी कटुतैलं गवां जलम् ।
मत्स्यण्डिका च ताम्बूलं धान्याम्लं तिन्तिडीफलम् ॥ २३७ ॥
स्निग्धोष्णानि च भोज्यानि स्निग्धोष्णं चानुलेपनम् ।
विशेषाद्वमनं कार्य्यमामाशयमुपागते ॥ २३८ ॥
पक्वाशयस्थे मांसस्थे तथा स्निग्धविरेचनम् ।
प्रत्याध्मानाध्मानसंज्ञे वर्तिर्लङ्घनदीपनम् ॥ २३९ ॥
अष्ठीलिकाख्ये गुल्मविधिः शुक्रस्थे क्षयजित्क्रिया ।
त्वङ्मांसासृक्सिराप्राप्ते हितं शोणितमोक्षणम् ॥ २४० ॥
यथाश्रयं यथावस्थं यथावरणमेव हि ।
वातव्याधौ समुत्पन्ने पथ्यमेतन्नृणां भवेत् ॥ २४१ ॥

तेल की मालिश, शरीर के अवयवों का मसलना, बस्तिप्रयोग, स्नेहन, स्वेदन, अवगाहन, संवाहन (मुट्ठी-चम्पी करना), संशमन (बढ़े हुए दोषों को समअवस्था में लाने का प्रयास), पुरवैया हवा का सेवन न करना, अग्निकर्म (तपायी हुई लोहशलाका से यथास्थान दागना), उपनाह (पुल्टिस अथवा गरम किये हुए एरण्डपत्रों द्वारा सेंक पहुँचाना, भूमि पर सोना, उष्णजल से स्नान करना,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आसन पर बैठना, तेल से भरी हुई द्रोणी (टब) में बैठना, शिरोबस्ति (इसका प्रयोग प्रायः वातज शिरोरोगों में किया जाता है), सोना, नस्य सूंघना, धूप सेंकना, सन्तर्पण तथा बृंहण कर्म, किलाट (दूध के फटे हुए के पिण्ड भाग को किलाट कहते हैं।) दधिकूर्च्चिका (दूध के साथ दही को पकाने से इसका निर्माण हो जाता है), घी, तेल, वसा, मज्जा, स्वादु जल, नमकीन रस, नये तिल, गेहूँ, उड़द, एक साल पुराने लाल शाली के चावल, सांठी के धान्य, कुलथी का यूष, सुरा (मद्य), गाँव में पले हुए गाय, खच्चर, ऊँट, घोड़ा, गधा, वकरा, आनूप देशज-सूअर, भैंसा, बारहसिंघा, गैंडा, हाथी आदि तथा जल में रहने वाले, हंस, कादम्ब (सारस), चकवा, बगुला आदि, विल में रहने वाले प्राणी– मेढक, गोह, नकुल, साही, आदि चटक (गौरैया), मुर्गा, मोर, तीतर, ये जांगल देश के प्राणी, शिलीन्ध्र (मत्स्य अथवा नक्रभेद, पर्वद या पर्वत नक्रभेद), नक्र (मगर), गर्गर (मछली का भेद), कवयी, इल्लिश, एरण्ड, चुल्लकी, कछुआ, शिशुमार, तिमिंगिल, रोहित, मद्गुर, शृंगी, वर्मी, खुडिश ये सब मछलियों के भेद हैं। परबल, सहजन, बैगन, लहसुन, दोनों खट्टे-मीठे दाड़िम, पका हुआ ताड़का फल, आम, खस का पानी फालसा, जम्बीरी नीबू, वेर, मुनक्का, नारंगी (सन्तरा), महुआ का फूल, प्रसारणी, गोखरू, काकोली, नीम, दूध, भरा हुआ नारियल, कडुआ तेल, गोमूत्र, मत्स्यण्डिका (दानेदार राब), पान, धान की काँजी, इमली, स्निग्ध तथा उष्ण भोज्य पदार्थ, स्नेहयुक्त तथा उष्ण लेपन, विशेष करके वातरोग में वमन कराना चाहिये। जब वातदोष पक्वाशय में अथवा मांसधातु में स्थित हो तो स्निग्ध द्रव्यों का सेवन कराकर रोगी को विरेचन कराना चाहिये, प्रत्याध्मान तथा आध्मान नामक वातरोग में वर्तिका प्रयोग कराना चाहिये, लंघन तथा अग्निदीपन कर्म करे, अष्ठीलिका नामक वातरोग में गुल्म के समान चिकित्सा करना पथ्य है, यदि वातदोष शुक्रधातु गत हो तो क्षयरोग नाशक चिकित्सा करें, त्वचा, रक्त, मांस तथा सिराओं में वातदोप का प्रकोप हो तो ऐसी स्थिति में सिरा वेध कराकर रक्तमोक्षण कराना चाहिये, वातरोग में वात का आश्रय उसकी अवस्था तथा उसका आवरण जिस प्रकार का हो तदनुसार उक्त पथ्यों का प्रयोग करना, कराना मनुष्यों के लिये पथ्य होता है ॥ २२७-२४१ ॥

अन्यत्र वातरोग में पथ्य— सालभर पुराने शाली धान्य, सांठी धान्य, तेल, घी, ग्राम्य, आनूप तथा जल में रहने वाले प्राणियों के मांस, उड़द, तथा कुलथी का यूष, नये तिल, गेहूँ, बैगन, लहसुन, रोहित, मद्गुर, शृंगी, वर्मी, कवयी, इल्लिश मछलियाँ, मुनक्का, दाड़िम, जम्बीरी नीबू, फालसा के फल, स्निग्ध, उष्ण भोज्य पदार्थं, स्निग्ध, उष्ण लेप, ये सभी वातरोगियों के लिये पथ्य होते हैं।

वातरोग में अपथ्य

चिन्ता प्रजागरणवेगविधारणानि छर्दिः श्रमोऽनशनता चणकः कलायाः ।
नीवारकंगुशरवैणवकोरदूष श्यामाकचूर्णकुरुबिन्दमुखानि यानि ॥२४२ ॥
धान्यानि तानि तृणजानि च राजमाषा मुद्गास्तडागसरिदम्बु यवाः करीरम् ।
जम्बूः कशेरुतृणकं क्रमुकं मृणालं निष्पावबीजमपि तालफलास्थिमज्जा ॥
शालूकतिन्दुककठिल्लकबालतालं शिम्बी च पत्रभवशाकमुदुम्बरं च ।
शीताम्बु रासभपयोऽपि विरुद्धमन्नं क्षारोऽपि शुष्कपललं क्षतजश्रुतिश्च ॥
क्षौद्रं कषायकटुतिक्तरसा व्यवायो हस्त्यश्वयानमपि चङ्क्रमणं च खट्वा ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आध्मानिनोऽर्दितवतोऽपि पुनर्विशेषात् स्नानंप्रदुष्टसलिलं द्विजघर्षणं च ।२४५।
निः शेषतस्तु परिकीर्तित एष वर्गो नृणां समीरणगदेषु मुदं न धत्ते ॥२४६ ॥

सभी प्रकार की चिन्ता, रात में जागना, मल-मूत्र आदि के अधारणीय वेगों को रोकना, वमन, अधिक परिश्रम, उपवास करना, चना, मटर, नीवार (मुनि अन्न), कंगु, सरपत के बीज, बाँस के बीज, कोदों (मडुआ), साँवा, इन अन्नों का आटा, कुरुविन्द, कुधान्य, आदि ये सभी तृणज धान्य, राजमाष, मूग, तालाब तथा नदियों का जल, जौ, करीर, जामुन, कसेरू, तृणधान्य, सुपारी, कमलनाल, सेम के बीज, ताड़ के फल के भीतर की गिरी, कमल कन्द, तेदूँ, करेला, ताड़ का कच्चा फल, सेम, पत्रशाक, गूलर के फल, शीतल जल, गधी का दूध, विरुद्ध अन्न, सभी प्रकार के क्षार, सूखा मांस, रक्तस्राव होना, मधु, कसैले, कटु, तिक्त रस वाले पदार्थ, स्त्रीसहवास, हाथी, घोड़ा, आदि की पीठ पर चढ़ना, इधर-उधर घूमना, खटिया पर सोना, आध्मान के रोगी, अर्दित (मुख प्रदेश का लकवा) रोग वालों को विशेप करके स्नान करना, दूषित जल को पीना, दातून करना, ये सभी उपर्युक्त वस्तुएँ वातविकारों में सुख प्रदान नहीं करतीं अतः ये अपथ्य हैं ॥२४२-२४६ ॥

अन्यत्र अपथ्य निर्देश—सभी तृणधान्य, मटर, चना, राजमाष, करेला , सिम्बी के बीज, कुदरू, कसेरू, शीतल जल, विरुद्ध आहार का सेवन, मैथुन, अधिक घूमना, इस प्रकार के आहार-विहार वातरोगों में अपथ्य होते हैं, विशेष करके अर्दित तथा आध्मान रोगियों को स्नान करना भी निषिद्ध है।

वातरक्तरोग में पथ्य

उत्तानेऽभ्यञ्जनं सेकः सोपनाहः प्रलेपनम् ।
गम्भीरे स्नेहपानं च स्थापनं च विरेचनम् ॥ २४७ ॥
द्वयोरस्रस्रुतिः सूचीजलौकाशृङ्ग्यलाबुभिः ।
शतधौतघृताभ्यङ्गो मेषीदुग्धावसेचनम् ॥ २४८ ॥
यवषष्टिकनीवारकलमारुणशालयः ।
गोधूमाश्चणका मुद्गास्तुवर्य्योऽपि मकुष्ठकाः ॥ २४९ ॥
अजानां महिषीणां च गवामपि पयांसि च ।
लावतित्तिरिसर्पद्भिट्टाम्रचूडादिविष्किराः ॥ २५० ॥
प्रतुदाः शुकदात्यूहकपोतचटकादयः ।
उपोदिका काकमाची वेत्राग्रं सुनिषण्णकम् ॥ २५१ ॥
वास्तुकं कारवेल्लं च तण्डुलीयः प्रसारणी ।
पत्तूरो वृद्धकूष्माण्डं सर्पिः शम्पाकपल्लवम् ॥ २५२ ॥
पटोलं रूबुतैलं च मृद्वीका श्वेतशर्करफ्त ।
नवनीतं सोमवल्ली कस्तूरी सितचन्दनम् ॥ २५३ ॥
शिंशपागरुदेवाह्वसरलस्नेहमर्द्दनम् ।
तिक्तं च पथ्यमुद्दिष्टं वातरक्तगदे नृणाम् ॥ २५४ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वातरक्त रोग उत्तान तथा गम्भीर भेद से दो प्रकार का होता है, तदनुसार पथ्य निर्देश– उत्तान वातरक्त में तेल की मालिश, शीतल जल का सेवन, उपनाह (पुल्टिस), अथवा लेप लगाना। गम्भीर वातरक्त रोग में स्नेहपान, आस्थापनबस्ति तथा विरेचन हितकर होता है। दोनों प्रकार के वातरक्तों में सिरावेध कराकर सुई, जौंक, सिंगी, तुम्बी लगाकर रक्त को निकालना, शतधौतघृत की मालिश, भेड़ी के दूध से उस स्थान को सीचंना, जौ, साँठी, नीवार (मुनि अन्न), कलम (धान), लाल शाली धान्य, गेहूँ, चना, मूंग, अरहर, मोठ, ये अन्न, बकरी, भैंस, गाय के दूध, लवा, तीतर, मोर, मुर्गा, आदि विष्किर प्राणियों के मासं, शुक, चातक, कबूतर, गौरैया, आदि प्रतुदवर्ग के प्राणियों के मांस, पोई मकोय, वेत के नये अंकुर का अगला भाग, चौपतिया, बथुआ, करेला, चौलाई, प्रसारिणी, शालिंच शाक, पका हुआ कोहड़ा, घी, अमलतास के पत्ते परबल, रेड़ी का तेल, मुनक्का, सफेद चीनी, मक्खन, सोमलता, कस्तूरी, सफेदचन्दन, शीशम, अगुरु, देवदारु, सरल (चीड़ का वृक्ष), इनके तेलों की मालिश और सभी तिक्त रस वाले पदार्थ वातरक्तरोग में पथ्य कहे गये हैं॥ २४७-२५४॥

अन्यत्र वातरक्त में पथ्य—जौ, सांठी के चावल, नीवार, लाल शाली के चावल, गेहूँ, चना, मूंग, अरहर, मोठ, भेड़, बकरी, भैंस, गाय इनका दूध तथा घी, पोई का शाक, मकोय, वेत के अंकुर का अगला भाग, चौपतिया, बथुआ, करेला पुराना कोहड़ा, परवल, सभी तिक्तरस वाले शाक वातरक्त रोग में पथ्य होते हैं।

वातरक्त रोग में अपथ्य

दिवा स्वप्नाग्निसन्तापव्यायामातपमैथुनम्।
माषाः कुलत्था निष्पावाः कलायाः क्षारसेवनम्॥ २५५॥
अम्बुजानूपमांसानि विरुद्धानि दधीनि च।
इक्षवो मूलकं मद्यं पिण्याकोऽम्लानि काञ्जिकम्॥ २५६॥
कटूष्णं गुर्व्वभिष्यन्दि लवणानि च सक्तवः।
इत्यपथ्यं निगदितं वातरक्तगदे नृणाम्॥ २५७॥

दिन में सोना, आग सेंकना, व्यायाम (किसी प्रकार का भी शारीरिक श्रम), धूप सेंकना, स्त्री सहवास, उड़द, कुलथी, उबले हुए धान्य (घुघुरी), मटर, क्षारों का सेवन (अतएव इसमें नमक का परहेज किया जाता है), पानी में तथा आनूप देश में रहने वाले प्राणियों के मांस, विरुद्ध पदार्थों का सेवन, सभी प्रकार के दही, ईख, मूली, मद्य, पिण्याक (तिल आदि की खली), सभी प्रकार के अम्ल रस, काँजी, कटुरस, उष्णवीर्य वाले द्रव्य, गुरु, अभिष्यन्दकारक पदार्थ, सभी प्रकार के नमक, सत्तू, ये सभी पदार्थ वातरक्त रोग में अपथ्य होते हैं॥ २५५-२५७॥

अन्यत्र वातरक्त में अपथ्य— उड़द, कुलथी, उबले हुए धान्य, मटर, मूली, दही, मद्य, मांस, मछली, काँजी, क्षारीयपदार्थों का सेवन, दिन में सोना, आग तथा धूप का सेंकना, व्यायाम, मैथुन, कटु, गुरु, अभिष्यन्दी पदार्थ, नमक तथा अम्लपदार्थों को छोड़ दें।

ऊरुस्तम्भ रोग में पथ्य

रूक्षः सर्व्वविधिः स्वेदः क्रोद्रवा रक्तशालयः।
यवाः कुलत्थाः श्यामाका उद्दालाश्च पुरातनाः॥ २५८॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शोभाञ्जनं कारवेल्लं पटोलं लशुनानि च ।
सुनिषण्णः काकमाची वेत्राग्रं निम्बपल्लवम् ॥ २५९ ॥
पत्तूरो वास्तुकं पथ्या वार्त्ताकुं तप्तवारि च ।
शम्पाकशाकं पिण्याकस्तक्रारिष्टमधूनि च ॥ २६० ॥
कटुतिक्तकषायाणि क्षारसेवा गवां जलम् ।
व्यायामश्च यथाशक्ति स्थलस्याक्रमणानि च ॥ २६१ ॥
स्वच्छे ह्रदे सन्तरणं प्रतिस्रोतोनदीषु च ।
श्लेष्मापहरणं यच्च न च मारुतकोपनम् ॥
एतत्पथ्यं नरैः सेव्यमूरुस्तम्भविकारिभिः ॥ २६२ ॥

सभी प्रकार के रूक्षता कारक प्रयोग, स्वेदन कर्म, कोदों (मडुआ), लालशाली के चावल, जौ, कुलथी, सांवा, जंगलीकोदों ये सभी अन्न पुराने लें, सहजन, करेला, परबल, लहसुन, सुनिषण्ण (चौपतिया), मकोय, वेत के अंकुर का अगला भाग, नीम के कोमल पत्ते, शालिंच शाक, बथुआ, हरड़, बैगन, पकाया हुआ जल, अमलतास के कोमल पत्तों का शाक, खली, तक्रारिष्ट, मधु, कटु, तिक्त, कषाय रस वाले पदार्थों का सेवन, क्षारों का सेवन, गोमूत्र, यथाशक्ति व्यायाम करना, घूमना, स्वच्छ तालाब में तथा स्रोतोंवहानदियों के स्रोत के विपरीत दिशा की ओर तैरना, (स्रोत के विपरीत दिशा में तैरने पर अधिक परिश्रम करना पड़ता है ।) और जो आहार-विहार कफनाशक हो किन्तु वह वात दोष को कुपित करने वाला न हो, ये सभी ऊरुस्तम्भ रोगी के लिये पथ्य होते हैं, अतः इनका सेवन करें ॥२५८-२६२ ॥

तक्रारिष्ट योग— अजवायन, आँवला, हरड़, कालीमिर्च ये सभी द्रव्य १२-१२तोला, पाँचों (सेंधा, सांभर, काला, विड़, समुद्र) नमक ४-४ तोला, इन सब का कपड़छन चूर्ण करके १ आढ़क (२५६ तो.) द्रवद्वैगुण्य परिभाषा के अनुसार ५१२ तो. ६ सेर ३२ तो. मठा मिलाकर मिट्टी के पात्र में रखकर उसका मुख बन्द करके धान्य राशि में रख दें ५-७ दिन बाद इसे निकालकर १-२-३ तोला की मात्रा में लेकर पीयें, यह पाचन, अग्नि दीपन तथा रूक्ष पेय हैं ।

सन्तरण विधि— ऊरुस्तम्भ के रोगी को शीतल जलवाली नदी में प्रवाह के विपरीत दिशा में तैरने को कहें, वह तैरे अथवा स्वच्छ जल वाले तालाब में बार-बार तैरे ।

विशेष— ऊरुस्तम्भ के रोगी को कफनाशक उन द्रव्यों का प्रयोग करायें जो वातदोष प्रकोपक न हों, ऐसी ही औषधियों का भी इस रोग में प्रयोग करें ।

ऊरुस्तम्भ में अन्यत्र निर्दिष्ट पथ्य— पुराने गेहूँ, कोदो जंगली को दों शाली धान्य, जांगल पशु-पक्षियों के रूक्ष मांस रस, नमकरहित वे शाक, जो पथ्य हों उन शाकों को पानी में डालकर पकायें, तेल अथवा घी से छौंक लें, चौपतिया, कोमल नीम के पत्ते आदि लें । पुराने शाली चावलों का भात दें, शीतलजल वाली नदियों में उसे तैरायें, और स्थिर जल वाले तालाब में तैरने को कहें ।

ऊरुस्तम्भरोग में अपथ्य

गुरुशीतद्रवस्निग्धविरुद्धासात्म्यभोजनम् ।
विरेचनं स्नेहनं च वमनं रक्तमोक्षणम् ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बस्तिं च न हितं प्राहुरूरुस्तम्भविकारिणाम् ॥ २६३ ॥

गुरु (देर में पचने वाले या मात्रा में अधिक), शीतस्पर्शवाले तथा शीतवीर्य, द्रव, स्निग्ध, विरुद्ध, असात्म्य, पदार्थों का सेवन करना, विरेचन, स्नेहन, वमन, सिरावेध द्वारा रक्तमोक्षण कराना तथा बस्तिकर्म इनका प्रयोग ऊरुस्तम्भ रोग में निषिद्ध है ॥ २६३ ॥

अन्यत्र अपथ्य— गुरु, शीत, द्रव, स्निग्ध, विरुद्ध तथा असात्म्य (रोगी की प्रकृति के विरुद्ध) भोजन, अम्ल रसवाले तथा नमकीन पदार्थों को छोड़ दें ।

आमवातरोग में पथ्य

रूक्षः स्वेदो लङ्घनं स्नेहपानं बस्तिर्लेपो रेचनं पायुवर्तिः ।
अब्दोत्पन्नाः शालयो ये कुलत्था जीर्णं मद्यं जाङ्गलानां रसाश्च ॥ २६४ ।
वातश्लेष्मघ्नानि सर्वाणि तक्रवर्षाभूश्चैरण्डतैलं रसोनम् ।
पटोलपत्तूरककारवेल्लं वार्त्ताकुशिग्रूणि च तप्तनीरम् ॥ २६५ ॥
मन्दारगोकण्टकवृद्धदारं भल्लातकं गोजलमार्द्रकं च ।
कटूनि तिक्तानि च दीपनानि स्युरामवातामयिने हितानि ॥ २६६ ॥

रूक्षताकारक द्रव्य, स्वेदन कर्म, लंघन (लघु भोजन या उपवास), स्नेहपान, बस्तिकर्म, आमवात नाशक लेप, विरेचक औषध, गुदवर्ति प्रयोग, एक साल के पुराने धान्य, कुलथी आदि दालें, पुराने मद्य, जांगल देशीय पशु-पक्षियों के मांस रस, वात तथा कफनाशक सभी औषध, आहार, विहार, मट्ठा, पुनर्नवा, एरण्ड तेल, लहसुन, परबल, सालिंचका शाक, करेला, बैगन, सहजन, पकाया हुआ पानी, पारिजात की पत्तियाँ, गोखरू, विधारा, भिलावा, गोमूत्र, अदरख, कटु तथा तीते रसवाले पदार्थ, अग्निवर्धक पदार्थ ये सभी आमवात रोगी के लिये हितकर होते हैं ॥ २६४-२६६ ॥

वक्तव्य— आमवात के रोगी की स्वास्थ्य लाभ होने तक मरुभूमि अथवा जांगल प्रदेश में रहने की व्यवस्था कराकर उसकी चिकित्सा करें। चिकित्सा में एरण्ड तेल, गुग्गुलु, रसवत, लौह भस्म का सेवन करायें । रूक्ष स्वेदन, वमन, विरेचन का ध्यानपूर्वक प्रयोग करें ।

आमवात में पञ्चकोल के क्वाथ को छानकर पिलायें । इसी क्वाथ जल से रोगी के भोजन का निर्माण करें। वही खाने को दें । परबल के पत्ते, गोखरू, बरना, करेला, तिक्तरस प्रधान द्रव्य, अधिक पुराने जौ, कोदों, शाली धान्य, मठ्ठा, दही का पानी, लवा आदि पक्षियों का माँस रस दें ।

अन्यत्र पथ्य निर्देश— बथुआ का शाक, नीम की पत्तियों का शाक, पुनर्नवा, परबल, लहसुन, बैगन, करेला, जौ, कोदों पुराने शाली तथा सांठी धान्य, लवा पक्षी के मांस में मठ्ठा मिलाकर दें, कुलथी, मटर, चना का यूष पीने को दें, यह रुचिवर्धक होता है, यह सात्म्य (अनुकूल) होने पर आमवात का नाश करता है । अतः यह पथ्य है ।

आमवातरोग में अपथ्य

दधि मत्स्यगुडक्षीरोपोदिका माषपिष्टकम् ।
दुष्टनीरं पूर्ववाताविरुद्धान्यशनानि च ॥ २६७ ॥
असात्म्यं वेगरोधं च जागरं विषमाशनम् ।
वर्ज्जयेदामवातार्त्तो गुर्वभिष्यन्दकारि च ॥ २६८ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दही, मछली, गुड़, दूध, पोई का शाक, उड़द की पीठी से बने हुए खाद्य पदार्थ, दूषित जल, पुरवैया हवा का सेवन, विरुद्ध खान-पान, अपनी प्रकृति के प्रतिकूल भोजन, अधारणीय वेगों को रोकना, रात में जागना, विषमाशन (कभी कम, कभी अधिक भोजन करना), गुरुताकारक तथा अभिष्यन्दी पदार्थों का सेवन आमवात का रोगी न करे। ये सभी अपथ्य (अहितकर) होते हैं ॥ २६७-२६८ ॥

वक्तव्य— प्रायः अन्यत्र भी अपथ्य गणना में ये ही पदार्थ दिये गये हैं। केवल व्यायाम न करने का विशेष निषेध है।

शूलरोग में पथ्य

छर्दिः स्वेदो लङ्घनं पायुवर्त्तिर्बस्ति र्निद्रा रेचनं पाचनं च ।
अब्दोत्पन्नाः शालयो वाट्यमण्ड स्तप्तक्षीरं जाङ्गलानां रसाश्च ॥ २६९ ॥
पटोलशोभाञ्जनकारवेल्लं वार्त्ताकुमाम्राणि पचेलिमानि ।
द्राक्षा कपित्थं रुचकं प्रियालं शालिञ्चपत्राणि च वास्तुकानि ॥ २७० ॥
सामुद्रसौवर्च्चलहिङ्गु विश्वं बिडं शताह्वा लशुनं लवङ्गम् ।
एरण्डतैलं सुरभीजलं च तप्ताम्बु जम्बीररसोऽपि कुष्ठम् ॥ २७१ ॥
लघूनि च क्षाररजांसि चेति वर्गो हितः शूलगदार्दितेभ्यः ॥ २७२ ॥

वमन, स्वेदन, लंघन, गुद में वर्ति प्रयोग, बस्तिकर्म, दिन में सोना, विरेचन कराना, पाचक औषधों का प्रयोग, साल भर (पुराने शालिधान्य, वाद्यमण्ड (भुने हुए जौ का मांड़), उबाला हुआ दूध, जांगल प्रदेश के पशु-पक्षियों का मांस रस, परबल, सहजन, करेला, बैंगन, पके हुए आम, मुनक्का, कैथ, काला नमक, चिरौंजी, शालिंच का पत्रशाक, बथुआ, समुद्री तथा सौंचर नमक, हींग, सोंठ, विडनमक, सौंफ, लहसुन, लौंग, एरण्डतेल, गोमूत्र, गरमजल, जम्बीरी नीबू का रस, कूठ, हल के क्षारों का चूर्ण, ये सभी द्रव्य शूल रोगियों के लिये हितकर होते हैं ॥ २६९-२७२ ॥

वक्तव्य— शूल के अधिष्ठान—यकृत, प्लीहा, आमाशय, मलाशय, मूत्राशय, गर्भाशय अथवा समस्त उदर में। उक्त स्थानों से किसी भी स्थान पर शूल हो सकता है। इसमें वातदोष की प्रधानता होती है। वायु का शमन करने के लिये उष्ण जल को पिलाना, उसी का सेंक करना चाहिये, तभी लाभ होता है। इससे लाभ भी होता है। इसके अतिरिक्त पित्तज शूल भी होता है, इसमें शीतोपचार करना चाहिए, तभी लाभ होता है। यही स्थिति पथ्यों के प्रयोग काल में भी हो सकती है, अतः इन विषयों का विचार करलें।

अन्यत्र प्राप्त पथ्य— पुराने शाली धान्य, गरम दूध, जांगल प्राणियों के मांस रस, परबल, करेला, मुनक्का, पके आम तथा दाडिम के फल, विडनमक, शालिंच का पत्रशाक, गरम पानी, लवंग तथा वायु को अनुलोम करने वाले औषध तथा आहार द्रव्य, ये सभी पथ्य होते हैं।

शूलरोग में अपथ्य

विरुद्धान्यन्नपानानि जागरं विषमाशनम् ।
रूक्षतिक्तकषायाणि शीतलानि गुरूणि च ॥ २७३ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

व्यायामं मैथुनं मद्यं वैदलं लवणं तिलान् ।
वेगरोधं शुचं क्रोधं वर्ज्जयेच्छूलवान्नरः ॥ २७४ ॥

संयोग विरुद्ध अन्न (आहार) पेय, रात में जागना, विषमाशन (कभी कम कभी अधिक भोजन) रूक्ष (घी-तेल रहित) तिक्त तथा कषाय रस प्रधान आहार तथा पेय, शीतल, गुरु (देर में पचने वाले) पदार्थ, व्यायाम, मैथुन, मद्य, विविध प्रकार की दालें, नमक, तिल, अधारणीय वेगों को रोकना, शोक करना, क्रोध करना, शूलरोगी इन सबका परहेज करे ॥ २७३-२७४ ॥

अन्यत्र प्राप्त अपथ्य— सभी प्रकार के शारीरिक परिश्रम, मैथुन, मद्य, नमक, कटु रस प्रधान सभी पदार्थ, सभी प्रकार की दालें, अधारणीय वेगों को रोकना, शोक तथा क्रोध इनका सेवन शूलरोगी न करे।

उदावर्त रोगों में पथ्य

स्नेहस्वेदविरेकाश्च बस्तयः फलवर्त्तयः ।
अभ्यङ्गश्च यवाः सर्वं सृष्टविण्मूत्रमारुतम् ॥ २७५ ॥
ग्राम्योदकानूपारसा रुबुतैलं च वारुणी ।
बालमूलकशम्पाकत्रिवृत्तिल सुधादलम् ॥ २७६ ॥
शृङ्गवेरं मातुलुङ्गं यवक्षारो हरीतकी ।
लवङ्गं रामठं द्राक्षा गोमूत्रं लवणानि च ॥ २७७ ॥

स्नेहन, स्वेदन, विरेचन, विविध प्रकार की बस्तियाँ, फलवर्तियाँ, या गुदवर्तियाँ, उदर पर एरण्ड तेल आदि का अभ्यंग (मालिश), मल, मूत्र, अपानवायु को प्रवृत्त करने वाले औषध एवं आहार द्रव्यों का सेवन, ग्रामीण, जलेचर तथा आनूपदेश में रहने वाले प्राणियों के मांस रस, एरण्ड तेल, मद्य, कोमल मूली, अमलास, निशोथ, तिल, सेहुण्ड (थूहर) के कोमल पत्ते, सोंठ, बिजौरा, नीबू का रस, जवाखार, हरड़, लौंग, हींग, मुनक्का, गोमूत्र तथा पाँचों नमक, ये सभी पदार्थ उदावर्त रोग में पथ्य कहे गये हैं ॥ २७५-२७७ ॥

वक्तव्य— चरक ने सूत्रस्थान अध्याय १९ में उदावर्तो की संख्या ६ दी है। यथा-.१. वात-निरोधज, २. मूत्रनिरोधज , ३ पुरीषनिरोधज, ४. शुक्रनिरोधज, ५. छर्दिनिरोधज, ६. क्षवथु (छींक), निरोधज, शेष सात उदावर्तों का समावेश उन्होंने प्रथम वातज उदावर्त में ही कर लिया है, ऐसा प्रतीत होता है। इस सन्दर्भ में सुश्रुत का भी मत देखें— 'त्रयोदशविधश्चासौ भिन्न एतैस्तु कारणैः'। सुउ.५५ ।६ ।, उदावर्त का अर्थ है— मलों का ऊपर की ओर घुमाव होना ही उदावर्त है। इसके आगे विविध प्रकार के उदावर्तों के पथ्यों का उल्लेख प्रस्तुत है।

अधोवायु के उदावर्त में पथ्य

अधोवातसमुत्थे तु स्नेहस्वेदाश्च वर्त्तयः ।
बस्तयोऽन्नानि पानानि समीरणहराणि च ॥ २७८ ॥

अपानवायु के वेग को रोकने के कारण उत्पन्न हुए उदावर्त रोग में स्नेहपान, स्वेदन, गुद-वर्तियों का प्रयोग, बस्तिकर्म, वातनाशक खान-पान हितकर होते हैं ॥ २७८ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पुरीषज उदावर्त में पथ्य

पुरीषजे तथा बस्तिः स्वेदोऽभ्यङ्गोऽवगाहनम् ।
फलवर्तिश्च पानानि विड्भेदान्यशनानि च ॥ २७९ ॥

मल के वेग रोकने के कारण उत्पन्न हुए उदावर्त रोग में बस्ति प्रयोग, स्वेदन, अभ्यंग (मालिश), अवगाहन, फलवर्ति का प्रयोग, विरेचन कारक खान-पान हितकर होते हैं ॥ २७९ ॥

मूत्रजउदावर्त में पथ्य

मूत्रवेगसमुत्पन्ने त्रिविधं बस्तिकर्म च ।
स्वेदोऽभ्यङ्गोऽवगाहश्च सर्पिषश्चावपीडनम् ॥ २८० ॥

मूत्र के वेग को रोकने के कारण उत्पन्न हुए उदावर्त रोग में तीनों प्रकार के अनुवास, निरूहण तथा आस्थापन बस्तिकर्म, स्वेदन, अभ्यंग (मालिश), द्रोणीअवगाहन (टब स्नान), स्नेहपान, अवपीडन नस्य का प्रयोग हितकर होती हैं ॥ २८० ॥

अवपीडनस्य परिचय– 'कल्कीकृतादौषधाद्यः पीडितो निःस्नुतो रसः। सोऽवपीडः समुद्दिष्टः तीक्ष्णद्रव्यसमुद्भवः ॥ परिभाषाप्रदीप ४ खण्ड ।

डकार, खाँसी के उदावर्त में पथ्य

उद्गारोत्थे तु हिक्काघ्नः कासजे कासजिद्विधिः ॥ २८१ ॥

डकार के वेग को रोकने के कारण उत्पन्न हुए उदावर्त रोग में हिचकी नाशक चिकित्सा करें और खाँसी के वेग को रोकने के कारण उत्पन्न हुए उदावर्त रोग में कास रोगनाशक चिकित्सा करनी चाहिए ॥ २८१ ॥

छींक के उदावर्त में पथ्य

क्षवजे स्वेदनं धूमो घृतं चौत्तरभक्तिकम् ।
क्षवप्रवर्त्तनं नस्यमभ्यङ्गश्चोर्ध्वजत्रुकः ॥ २८२ ॥

छींक के वेग को रोकने के कारण उत्पन्न हुए उदावर्त रोग में स्वेदन, धूमपान, घृतपान या स्नेहपान या घृत युक्त भोजन करना चाहिये, छींक लाने वाली नस्य का प्रयोग और जत्रु के ऊपरी भाग में मालिश करानी चाहिये ॥ २८२ ॥

वक्तव्य–यहाँ 'घृतं चोत्तर बस्तिकम्' पाठ अशुद्ध है। चक्रदत्त में यह पाठ इस प्रकार सुलभ है– 'क्षवजे क्षवपत्रेण घ्राणस्थेनानयेत् क्षवम्। तथोर्द्ध्वजत्रुगेऽभ्यङ्ग स्वेदो धूमः सनावनः। हितं वातघ्नमाद्यञ्च घृतश्चौत्तरभाक्तिकम्' ॥ उ.चि. १९ ।

तृष्णा, जृम्भा के उदावर्त में पथ्य

शीतान्नपानं तृष्णोत्थे जृम्भोत्थे वातजित्क्रिया ॥ २८३ ॥

तृष्णा के वेग को रोकने के कारण उत्पन्न हुए उदावर्त रोग में शीतल खान-पान दें और जँभाई के वेग को रोकने के कारण उत्पन्न हुए उदावर्त रोग में वातनाशक चिकित्सा पथ्य होती है ॥२८३ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नीदँ, भूख, बाष्प के उदावर्त में पथ्य

निद्रावेगोत्थिते क्षीरस्वप्नसंवाहनानि च ॥ २८४ ॥
बुभुक्षोत्थे स्निग्धमल्पमुष्णं लघु च भोजनम् ॥ २८५ ॥
बाष्पजे बाष्पसंमोक्षः स्वप्नो मद्यं प्रियाः कथाः ॥ २८६ ॥

निद्रा के वेग को रोकने के कारण उत्पन्न हुए उदावर्तरोग में दुग्धपान, सुखपूर्वक सोना, शरीरावयवों को दबाना पथ्य है। भूख के वेग को रोकने के कारण उत्पन्न हुए उदावर्तरोग में स्निग्ध (स्नेहयुक्त), थोड़ा हलका तथा सुपाच्य भोजन दें, यह पथ्य है। वाष्पों (आँसुओं) के वेग को रोकने के कारण उत्पन्न हुए उदावर्तरोग में आँसुओं को निकालना, सुखपूर्वक सोना, मद्यपान, मनमोहक कथाओं को सुनना पथ्य है ॥ २८४-२८६ ॥

श्रम एवं श्वास के उदावर्त में पथ्य

श्रमश्वाससमुत्पन्ने विश्रामो वातहारि च ॥ २८७ ॥

अधिक परिश्रम करने से तथा श्वास के वेग को रोकने के कारण उत्पन्न हए उदावर्त रोग में विश्राम करना तथा वातनाशक चिकित्सा हितकर होती है ॥ २८७ ॥

शुक्र के उदावर्त में पथ्य

शुक्रोत्थे बस्तिरभ्यङ्गोऽवगाहश्चरणायुधः ।
शालयो मदिरा क्षीरं प्रिया यौवनगर्विताः ॥ २८८ ॥

शुक्र के वेग को रोकने के कारण उत्पन्न हुए उदावर्तरोग में उत्तरबस्ति का प्रयोग, अभ्यंग, द्रोणीअवगाहन (टबबाथ), मुर्गा के मांस का रस, शाली धान्य, मद्य, दूध तथा यौवन मदमस्त प्रिया का सहवास करना पथ्य है ॥ २८८ ॥

वमन के उदावर्त में पथ्य

छर्द्युत्थे लङ्घनं धूमो भक्तप्रच्छर्दनं श्रमः ।
रूक्षाणि चान्नपानानि विरेको रक्तमोक्षणम् ॥
इति पथ्यमुदावर्त्ते नृणामुक्तं महर्षिभिः ॥ २८९ ॥

वमन के वेगों को रोकने के कारण उत्पन्न हुए उदावर्त रोग में लंघन, धूमपान, भक्तप्रच्छर्दन (चावलों की यवागू पिलाकर उलटी कराना), परिश्रम, रूक्ष खान-पान, विरेचन, रक्तमोक्षण (सिरावेध) कराना ये महर्षियों ने मनुष्यों के लिये पथ्य कहे हैं ॥ २८९ ॥

उदावर्तों में अपथ्य

वमनं वेगरोधं च शमीधान्यानि कोद्रवम् ।
नालीतशाकं शालूकं जाम्बवं कर्कटीफलम् ॥ २९० ॥
पिण्याकमालुकं सर्वं करीरं पिष्टवैकृतम् ।
विष्टम्भीनि विरुद्धानि कषायाणि गुरूणि च ॥
उदावर्ती प्रयत्नेन वर्जयेत् सततं नरः ॥ २९१ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

वमन कराना, मल-मूत्र आदि अधारणीय वेगों को रोकना, शमीधान्य (इसी को शिम्बी धान्य भी कहते हैं, अर्थात् उड़द-मूंग आदि), कोदों, नाड़ी शाक, कमलकन्द, जामुन के फल, ककड़ी, तिल की खली, आलू आदि सभी कन्दशाक, करीर के फल, उड़द की पीठी द्वारा बनाये गये व्यंजन, विष्टम्भ (कब्ज) कारक, स्वभावविरुद्ध खान-पान, कसैले रसवाले तथा गुरु पदार्थों का उदावर्तरोगी सदा त्याग करे, ये अपथ्य होते हैं ॥ २९०-२९१ ॥

वक्तव्य–सभी प्रकार के उदावर्तों में क्या पथ्य हैं अर्थात् उनकी क्या क्या चिकित्सा है और क्या अपथ्य हैं, इसका विस्तृत वर्णन चक्रदत्त, भाव प्रकाश तथा भैषज्यरत्नावली में दिया गया है।

आनाहरोग में पथ्य

उदावर्त्तहितं सर्वं पाचनं लङ्घनं तथा ।
आनाहे तु यथायोग्यं योजयेन्मतिमान् भिषक् ॥ २९२ ॥

जो आहार-विहार उदावर्तरोग में हितकर कहे गये हैं। जो आहार को पचाते हैं। तथा लंघन वे सभी आनाहरोग में भी पथ्य होते हैं, बुद्धिमान् चिकित्सक उन-उन का यथाविधि प्रयोग करें ॥२९२ ॥

वक्तव्य— आनाह दो प्रकार के होते हैं– १. आमाशय का और २. पक्वाशय का, इस प्रकार इनका विवेचन करके तब पथ्य– अपथ्य का व्यवहार करें। यह रोग आमाशय या पक्वाशय की स्वाभाविकगति में रुकावट पैदा कर देता है। अतः उक्त आशयों में जिन औषध, अन्न (आहार) तथा विहारों से गति उत्पन्न हो उनका प्रयोग करना ही पथ्य है तथा चिकित्सा है ।

आनाह रोग में अपथ्य

अपथ्यानि प्रदिष्टानि यान्युदावर्तिनां पुरा ।
आनाहार्त्तः परिहरेत् तानि सर्वाणि यत्नतः ॥ २९३ ॥

इसके पहले उदावर्तरोग में जो जो खान-पान-विहार अपथ्य कहे गये हैं, उनका सब का यत्नपूर्वक परहेज आनाहरोग भी करना चाहिये ॥ २९३ ॥

वक्तव्य— आनाह रोग को 'अफारा' भी कहा जाता है। इस रोग की बिगड़ती हुई स्थिति से हृद्ग्रह तथा अलसक (गुम हैजा) रोग भी होते देखे गये हैं।

अन्यत्र पथ्यापथ्य– सुपाच्य, मलरेचक, जो अन्न-पान हों तथा जो शरीर के पुष्टिकारक हों उन-उन का प्रयोग उदावर्त तथा आनाह में करें, वे पथ्य होते हैं। इन गुणों के अतिरिक्त जो खान-पानं हों वे अपथ्य कहे गये हैं।

गुल्मरोग में पथ्य

स्नेहः स्वेदो विरेकश्च बस्तिर्बाहुसिराव्यधः ।
लङ्घनं वर्तिरभ्यङ्गः स्नेहं पक्के तु पाटनम् ॥ २९४ ॥
संवत्सरसमुत्पन्नाः कलमा रक्तशालयः ।
खडः कुलत्थयूषश्च धन्वमांसरसः सुरा ॥ २९५ ॥
गवामजायाश्च पयो मृद्वीका च परूषकम् ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

खर्ज्जूरं दाडिमं धात्री नागरङ्गाम्लवेतसम् ॥ २९६ ॥
तक्रमेरण्डतैलं च लशुनं बालमूलकम् ।
पत्तूरो वास्तुकं शिग्रुयवक्षारौ हरीतकी ॥ २९७ ॥
रामठं मातुलुङ्गं च त्र्यूषणं सुरभीजलम् ।
यदन्नं स्निग्धमुष्णं च बृंहणं लघु दीपनम् ॥
वातानुलोमनं चैव पथ्यं गुल्मे नृणां भवेत् ॥२९८ ॥

चार प्रकार के स्नेहों (घृत, तेल वसा, मज्जा) का पान (सेवन), स्वेदन, विरेचन, बस्ति-प्रयोग, भुजाओं का सिरावेध कराके रक्त निकालना, लंघन गुदवर्ति प्रयोग, स्नेह का अभ्यङ्ग (तेल मालिश), पक जाने पर गुल्म को चीरना, एक साल पुराने कलमधान (जो रोपनी लगाकर उगाये गये हों), लाल शाली धान्य, खडयूष, कुलथी का यूष, मरुभूमि के निवासी पशु-पक्षियों के मांसारस, मद्य, गाय, तथा बकरी का दूध, मुनक्का, फालसा, खजूरं, दाड़िम, आँवला, नारंगी (सन्तरा), अम्लबेत, मठ्ठा, एरण्डतेल, लहसुन, छोटी मूली, शालिंच शाक, बथुआ, सहिजन की फलियाँ, जवाखार, हरड़, हींग, बिजौरानीबू, सोंठ, मिर्च, पीपल, गोमूत्र, जो आहार पदार्थ स्नेहयुक्त, उष्ण, शरीर को पुष्ट करने वाला, लघु (सुपाच्य), अग्निवर्धक, वात दोष को अनुलोम करने वाला हो, ये सब गुल्मरोग में मनुष्यों के लिये पथ्य होते हैं ॥२९४-२९८ ॥

गुल्मरोग में अपथ्य

वातकारीणि सर्वाणि विरुद्धान्यशनानि च ।
वल्लूरं मूलकं मत्स्यान्मधुराणि फलानि च ॥ २९९ ॥
शुष्कशाकं शमीधान्यं विष्टम्भीनि गुरूणि च ।
अधोवातशकृन्मूत्रश्रमश्वासाश्रुधारणम् ॥
वमनं जलपानं च गुल्मरोगी परित्यजेत् ॥ ३०० ॥

वातदोष को बढ़ाने वाले सभी खान-पान तथा विहार, संयोग विरुद्ध अन्नों का सेवन, सूखा मांस, सूखीमूली, मछली, मीठे फल, सुखाये गये सभी शाक, शमी (शिम्बी) धान्य, सभी कब्ज कारक तथा देर में पचने वाले पदार्थ, अपानवायु, मल, मूत्र, श्रम के कारण उत्पन्न श्वास का वेग तथा आँसुओं के वेगों को रोकना, वमन कराना, अधिक जल पीना, ये सभी गुल्म रोगी को छोड़ देना चाहिए ॥२९९- ३०० ॥

अन्य अपथ्य– सूखा मांस, मूली, मछली, सूखाये गये शाक, सभी प्रकार की दालें, आलू आदि कन्दशाक तथा मीठे फलों का गुल्म रोगी परित्याग करे।

हृदयरोग में पथ्य

स्वेदो विरेको वमनं च लङ्घनं बस्तिर्विलेपी चिररक्तशालयः ।
मृगद्विजा जाङ्गलसंज्ञयान्विता यूषा रसा मुद्गकुलत्थसम्भवाः ॥ ३०१ ॥
रागाः खडाः काम्बलिकाश्च षाडवा भव्यं पटोलं कदलीफलान्यपि ।
पुराणकूष्माण्डरसालदाडिमं शम्पाकशाकं नवमूलकान्यपि ॥ ३०२ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एरण्डतैलं गगनाम्बु सैन्धवं द्राक्षापि तक्रं च पुरातनो गुडः ।
शुण्ठी यवानी लशुनं हरीतकी कुष्ठं च कुस्तुम्बरु कृष्णमार्द्रकम् ॥
सौवीरशुक्रं मधु वारुणीरसः कस्तूरिका चन्दनकं प्रपानकम् ।
ताम्बूलमप्येष गणः सखा भवेन्मर्त्यस्य हृद्रोगनिपीडितस्य ॥ ३०४ ॥

स्वेदन, विरेचन, वमन, लंघन, बस्ति प्रयोग, विलेपी, पुराने लाल शाली के चावल, जांगल देश वासी पशु-पक्षियों के मांसरस, मूंग, कुलथी आदि दालों के यूष, राग (रायता), खडयूष, काम्बलिक, षाडव, भव्य (आट) फल (इसका वर्णन राजनिघण्टु तथा वैद्यकनिघण्टु में प्राप्त है। अन्यत्र 'भव्यं' के स्थान पर 'भयं' शब्द प्रयुक्त है, जिसका अर्थ है— डर) परबल, केले के फल, पुराना पेठा, आम, दाड़िम, अमलतास की पत्तियों का शाक, नयी कोमल मूली, एरण्ड का तेल, आकाश का जल, सेंधानमक, मुनक्का, मठ्ठा, पुराना गुड़, सोंठ, अजवायन, लहसुन, हरड़, कूठ, धनियाँ, पिप्पली, अदरख, काँजी, सिरका, मधु, मदिरा रस (स्वच्छमद्य), कस्तूरी, चन्दन, प्रपानक (पन्ना), पान ये सभी द्रव्य हृदयरोगी के मित्र (पथ्य) होते हैं ॥ ३०१-३०४ ॥

अन्यत्र पथ्य निर्देश— पुराने लाल शाली धान्य, जांगल देश के पशु-पक्षियों के मांस, कुलथी, मूंग के यूष, परवल, कदलीफल, आम, पका हुआ पेठा, दाडिम, हरड़, मुनक्का, मट्ठा, सेंधानमक, ये हृदयरोग में पथ्य कहे गये हैं।

हृदयरोग में अपथ्य

तृट्छर्दिमूत्रानिलशुक्रकासोद्गारश्रमश्वासविडश्रुवेगान् ।
सह्याद्रिविन्ध्याद्रिनदीजलानि मेषीपयो दुष्टजलं कषायम् ॥ ३०५ ॥
विरुद्धमुष्णं गुरु तिक्तमम्लं पत्रोत्थशाकानि चिरन्तनानि ।
क्षारं मधूकानि च दन्तकाष्ठं रक्तस्रुतिं हृद्गदवान् परित्यजेत् ॥ ३०६ ॥

प्यास, वमन, मूत्र, अपानवायु, शुक्र, कास, उद्गार (डकार), परिश्रम के कारण बढ़ा हुआश्वास-प्रश्वास, मल तथा आँसुओं के वेगों को न रोकना, सह्यपर्वत तथा विन्ध्यपर्वतों से निकलने वाली (नर्मदा, कावेरी, आदि) नदियों के जल, भेड़ी का दूध, दूषित जल, कषाय रस वाले द्रव्यों, परस्पर विपरीत पदार्थ, उष्ण पदार्थ, गुरु, तिक्त तथा अम्लरसवाले द्रव्यों, सभी पुराने पत्रशाकों, क्षार, महुआ के फूलों, दातौन, रक्तनिर्हरण इनको हृदय रोगी छोड़ दे ॥३०५-३०६ ॥

अन्यत्र अपथ्य— अधारणीय वेगों को रोकना, मैथुन, व्यायाम, रात में जागना, सह्य, विन्ध्य से उत्पन्न नदियों का जल, भेड़ी का दूध, दुष्ट जल, गुरु, तिक्त, अम्ल पदार्थों को खाना, सभी पत्रशाक, भोजन के ऊपर पुनः भोजन करना ये हृदयरोग में अपथ्य हैं ॥ ३०५-३०६ ॥

मूत्रकृच्छ्र रोग में पथ्य

वातोद्भवेऽभ्यङ्गनिरूहबस्तिस्नेहावगाहोत्तरबस्तिसेकाः ।
पैत्तेऽवगाहाः शिशिरप्रदेहा ग्रैष्मो विधिर्बस्तिविधिर्विरेकः ॥ ३०७ ॥
श्लेष्मोद्भवे स्वेदविरेकवान्तं क्षारो यवान्नानि च तीक्ष्णमुष्णम् ।
त्रिदोषजेऽभ्यङ्गपुरःसराणि सर्वाण्यमूनि विमलोदितानि ॥ ३०८ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मूत्राघातविकारोत्थे कार्या वातहरी क्रिया ।
लेहः शुक्रविबन्धोत्थे शिलाजतु समाक्षिकम् ॥
स्वेदचूर्णक्रियाभ्यङ्गबस्तयः स्युः पुरीषजे ॥ ३०९ ॥
अथो यथादोषमयं गणोऽपि पुरातना लोहितशालयश्च ।
तक्रं पयो दध्यपि गोप्रसूतं धन्वामिषं मुद्गरसाः सिता च ॥ ३१० ॥
पुराणकूष्माण्डफलं पटोलं महार्द्रकं गोक्षुरकः कुमारी ।
गुवाकखर्ज्जूरकनारिकेलतालद्रुमाणां च शिरांसि पथ्या ॥ ३११ ॥
तालास्थिमज्जात्रपुषं त्रुटिश्च शीतानि पानान्यशनानि चापि ।
प्रतीरनीरं हिमबालुका च मित्रं नृणां स्यात् सति मूत्रकृच्छ्रे ॥ ३१२ ॥

वातविकार से उत्पन्न (वादी) मूत्रकृच्छ्र में सम्पूर्ण शरीर में मालिश, निरूहणबस्ति, स्नेह-पान, द्रोणीअवगाहन (टबबाथ), उत्तर बस्तिप्रयोग, जल द्वारा सेचन ये सब पथ्य होते हैं।

पित्तविकार से उत्पन्न मूत्रकृच्छ्र में, द्रोणीअवगाहन, शीतल लेपं, ग्रीष्म ऋतु में की जाने वाली सम्पूर्ण चर्या, बस्ति प्रयोग तथा विरेचन कर्म ये सब कर्म पथ्य होते हैं।

कफविकार से उत्पन्न मूत्रकृच्छ्र में स्वेदन, वमन, विरेचन, सभीप्रकार के क्षार, जौ, आदि अन्न, तीक्ष्ण तथा उष्ण पदार्थों का सेवन पथ्य होता है।

त्रिदोषज मूत्रकृच्छ्र में अभ्यंग आदि पहले कहे गये तीनों दोषों के पथ्यों का सेवन करें। मूत्राघातरोग के कारण उत्पन्न मूत्रकृच्छ्र रोग में वातनाशक चिकित्सा पथ्य होती है। शुक्र के निबन्ध के कारण मूत्रकृच्छ्र में मधु के अनुपान के साथ शिलाजीत का सेवन पथ्य होता है। मल की रुकावट के कारण उत्पन्न मूत्रकृच्छ्र में स्वेदन कर्म, विरेचक चूर्णों का प्रयोग, तेल मालिश, बस्ति प्रयोग पथ्य होते हैं। इसप्रकार स्वतन्त्र प्रयोगों का वर्णन करने के बाद सभी प्रकार के मूत्रकृच्छ्रों के प्रति सामान्य निर्देश दिया जा रहा है– जिस किसी दोष से मूत्रकृच्छ्ररोग उत्पन्न हुआ हो उस गण की औषधियों का प्रयोग करें तथा पुराने लाल शाली चावल, गाय का दूध, दही, मरुभूमि में रहने वाले पशु-पक्षियों के मांस, मूंग का जूस, मिश्री, पुराना कोहड़ा (पेठा), परबल, अदरख, गोखरू, घीकुआर, सुपारी, खजूर, नारियल की गरी, ताड़ वृक्ष का अग्रभाग, हरड़, ताड़ वृक्ष के फल की गिरी, ककड़ी, छोटी इलायची, इनके अतिरिक्त शीतल खान-पान जो भी हों, नदी के तट के कुओं का जल, शीतल बालू, ये सभी पदार्थ मूत्रकृच्छ्र रोग में मनुष्यों के लिये पथ्य होते हैं ॥ ३०७-३१२

वक्तव्य– चिकित्साकाल में इन पथ्यों का मिलान भावप्रकाश, भैषज्यरत्नावली तथा चक्रदत्त में वर्णित स्थलों से कर लें। 'तालद्रुमाणां च शिरांसि', इसका अर्थ हमने 'ताड़वृक्ष का अग्रभाग' कर के कोमल पत्तों तथा उसकी कोमल बालों को लेने की इच्छा से किया है', ये मूत्रल होते हैं, प्रयोग करके देखें।

संक्षेप में पथ्यापथ्य– जो खान-पान अत्यन्त उग्र (तीक्ष्ण) न हों तथा जो मूत्र को अनुलोम करें वेही पथ्य हैं, शेष दव्यों को इसमें अपथ्य समझें।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मूत्रकृच्छ्ररोग में अपथ्य

मद्यं श्रमं निधुवनं गजवाजियानं सर्वं विरुद्धमशनं विषमाशनं च ।
ताम्बूलमत्स्यलवणार्द्रकतैलभृष्टं पिण्याकहिङ्गुतिलसर्षपवेगरोधान् ॥ ३१३ ॥
माषान् करीरमतितीक्ष्णविदाहिरूक्षमम्लं च मुञ्चतु जनः सति मूत्रकृच्छ्रे ।३१४।

सभी प्रकार के मद्य, अधिक परिश्रम के कार्य, स्त्रीसहवास, हाथी-घोड़ा की सवारी, सभी प्रकार के विरोधी आहार, विषमाशन (कभी कम और कभी अधिक खाना), पान, मछली, लवण, अदरख, तेल में भूँजे हुए खाद्य पदार्थ, तिल की खली, हींग, तिल, सरसों, मल, मूत्र, आदि के वेगों को रोकना, उड़द, करील, अत्यन्त तीक्ष्ण, विदाह कारक, रूक्ष, अम्ल, इन सभी पदार्थों को अपथ्य समझकर मूत्रकृच्छ्र का रोगी पुरुष छोड़ दे ॥ ३१३-३१४ ॥

मूत्राघातरोग में पथ्य

अभ्यञ्जनस्नेहविरेकबस्तिस्वेदावगाहोत्तरबस्तयश्च ।
पुरातना लोहिशालयश्च मांसानि धन्वप्रभवाणि मद्यम् ॥ ३१५ ॥
तक्रं पयो दध्यपि माषयूषः पुराणकूष्माण्डफलं पटोलम् ।
महार्द्रकं तालफलास्थिमज्जा हरीतकी कोमलनारिकेलम् ॥ ३१६ ॥
गुवाकुखर्ज्जूरकनारिकेलतालद्रुमाणामपि मस्तकानि ।
यथाबलं सर्वमिदं च मूत्राघातातुराणां हितमामनन्ति ॥ ३१७ ॥

सम्पूर्ण शरीर में तेल मालिश, स्नेहपान, विरेचन, बस्तिप्रयोग, स्वेदन, अवगाहन, उत्तरबस्ति प्रयोग, पुराने लाल शालि धान्य, मरुभूमि में रहने वाले पशु-पक्षियों के मांस, मद्य, मट्ठा, दूध, दही, उड़द का जूस, पुराना कोहड़ा, परवल, अदरख, तालफल की गिरी, हरड़, कोमल नारियल, सुपारी, खजूर, नारियल तथा तालवृक्ष की कोपलें, उक्त सभी द्रव्यों को बलानुसार मूत्राघात रोगियों के लिये पथ्य समझना चाहिये ॥ ३१५-३१७ ॥

मूत्राघातरोग में अपथ्य

विरुद्धानि च सर्वाणि व्यायामं मार्गशीलनम् ।
रूक्षं विदाहि विष्टम्भिव्यवायं वेगधारणम् ॥
करीरं वमनं चापि मूत्राघाती विवर्ज्जयेत् ॥ ३१८ ॥

सभी प्रकार के विरुद्ध पदार्थ, आवश्यकता से अधिक व्यायाम, रास्ता चलना, रूक्षता कारक खान-पान, विदाहकारक द्रव्य, विष्टम्भ (कब्ज) कारक द्रव्य, स्त्रीसहवास, मल-मूत्रादि अधारणीय वेगों को रोकना, करील का सेवन, वमन कराना, इन सब का परहेज मूत्राघात के रोगी को करना चाहिये, क्योंकि ये सब अपथ्य होते हैं ॥ ३१८ ॥

अश्मरीरोग में पथ्य

बस्तिर्विरेको वमनं च लङ्घनं स्वेदोऽवगाहोऽपि च वारिसेवनम् ।
यवाः कुलत्थाः प्रपुराणशालयो मद्यानि धन्वाण्डजसम्भवा रसाः ॥३१९॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पुराणकूष्माण्डफलं च तल्लता गोकण्टको वारुणशाकमार्द्रकम् ।
पाषाणभेदो यवशूकरेणवः स्थिराः समाकर्षणमश्मनामपि ॥
एतानि सर्वाणि भवन्ति सर्वदा मुदेऽश्मरीरोगनिपीडितानाम् । ३२० ॥

बस्तिप्रयोग, विरेचन, वमन, लंघन, स्वेदनकर्म, द्रोणीअवगाहन, जलविहार, जौ, कुलथी, पुराने शालीधान्य, सभी प्रकार के मद्य, मरुदेश के निवासी पक्षियों के मांस रस, पुराना कोहड़ा, उसकी लता, गोखरू, वरना का शाक (तिक्तशाक), अदरख, पाषाणभेद, जवाखार, रेणुका, शालपर्णी तथा अश्मरी को खींचकर निकाल लेना, ये सभी अश्मरी रोगियों के लिये पथ्य होते हैं। अत एव ये द्रव्य आनन्ददायक कहे गये हैं ॥ ३१९-३२० ॥

वक्तव्य— 'वारुणशाकम्' इसका एक नाम 'तिक्तशाक' भी है। इसके पत्तों का शाक तथा छाल का प्रयोग क्वाथ के रूप में किया जाता है। यह मूत्रजनन तथा अश्मरी नाशक है। देखें— भाप्र.वटादि वर्ग ६५-६६, अश्मरीरोग में वरुण का प्रयोग प्रशस्त है, देखें चिकित्सा ग्रन्थों में। यदि औषध योगों से अश्मरी भेदन होकर मूत्रमार्ग से निकल जाय तो उत्तम है, अन्यथा इसे शस्त्र चिकित्सा से निकलवा देना चाहिये। उसके बाद भी पथ्य पदार्थों का सेवन करते रहना चाहिये।

अश्मरीरोग में अपथ्य

मूत्रस्य शुक्रस्य च वेगमम्लं विष्टम्भि रूक्षं गुरु चान्नपानम् ।
विरुद्धमन्नाशनमश्मरीमान् विवर्जयेत् सन्ततमप्रमत्तः ॥ ३२१ ॥

मूत्र तथा शुक्र के वेग को रोकना (ये दोनों ही अधारणीय वेग हैं।), अम्लपदार्थों, कब्ज कारक आहारों, रूक्षताकारक तथा गुरु (देर में पचने वाले) खान-पानों का प्रयोग, संयोग विरुद्ध आहारों को अश्मरी का रोगी सावधान होकर सदा के लिये छोड़ दे, क्योंकि ये सभी अपथ्य होते हैं ॥ ३२१ ॥

प्रमेहरोग में पथ्य

प्राग्लङ्घनानि वमनानि विनेचनानि प्रोद्वर्त्तनानि शमनानि च दीपकानि ।
नीवारकंगुयववैणवकोरदूषश्यामाकजीर्णकुरुविन्दमुकुन्दकाश्च ॥ ३२२ ।
गोधूमशालिकलमाश्चिरजाः कुलत्था मुद्गाढकीचणकयूषरसास्तिलाश्च ।
लाजाः पुरातनसुरा मधु वाट्यमण्डस्तक्रं च रासभजलं महिषीजलं च ॥३२३ ।
लट्वाकपोतशशतित्तिरिलावबर्हिभृङ्गैणवर्त्तकशुकादिकजाङ्गलाश्च ।
शोभाञ्जनानि कुलकानि कठिल्लकानि कर्कोटकानि तलकानि च बार्हतानि ।
औदुम्बराणि लशुनानि नवीनमोचं पत्तूरगोक्षुरकमूषिकपर्णिशाकम् ।
मन्दारपत्रममृता त्रिफला कपित्थं जम्बूः कशेरुकमलोत्पलकन्दबीजम् ॥३२५ ।
खर्ज्जूरलाङ्गलिकतालतरूत्तमाङ्गं व्योषं च तिन्दुकफलं खदिरः कलिङ्गः ।
तिक्तानि चापि सकलानि कषायकाणि हस्त्यश्ववाहनमतिभ्रमणं रवित्विट् ।
व्यायाम इत्यपि गणो भवति प्रकामं मित्रं प्रमेहगदपीडितमानवानाम् ॥ ३२६ ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रमेह रोग में सर्वप्रथम लंघन, वमन, विरेचन, उबटन, ये कर्म कराने के बाद उभड़े हुए दोषों को शान्त करने का प्रयत्न करना चाहिये। फिर जठराग्नि को प्रदीप्त करने का उपाय करें। नीवार (तृण धान्य, 'तीनी'), कंगुनी, जौ, बांस के जौ, कोदों, सांवा, पुराने कुरुविन्द (कुरुक्षेत्रज व्रीहि भेद), मुकुन्द (कुन्दरु), गेहूँ, शालिधान्य, कलम जाति के धान, पुरानी कुलथी, मूंग, अरहर, चना, इनके यूष, मांसरस, तिल, लावा (खील), पुराना मद्य, मधु, भुने हुए जौ का माड़, मट्ठा, गधा का मूत्र, भैंस का मूत्र, लट्वा, (पक्षिविशेष), कबूतर, खरगोश, तीतर, लवा, मोर, भृंगराज पक्षी, कालाहरिण, बतख, शुक (तोता) आदि जांगल देशीय प्राणियों के मांस रस, सहजन की कोमल फलियाँ, परवल, करेला, ककोड़ा, ताड़ के फल, भटकटैया के फल, गूलर के फल, लहसुन, कच्चा केला, शालिंच शाक, गोखरू, मूषापर्णी के पत्तों का शाक, पारिजात (हरसिंगार) के पत्तों का शाक, गिलोय के पत्तों का शाक, त्रिफला, कैथ, जामुन, कसेरू, कमल तथा नीलकमल का कन्द, कमलबीज (कमलगट्टा), खजूर, नारियल तथा तालवृक्ष की फुनगी, सोंठ, मरिच, पीपल, तेंदू का फल, कत्था, तरबूज, सभी तिक्त तथा कषाय रस प्रधान पदार्थ, हाथी, घोड़ा की सवारी, अधिक घूमना, धूप में घूमना-फिरना या धूप सेंकना, व्यायाम करना, ये सभी पदार्थ प्रमेह रोग से पीड़ित पुरुषों के लिये पथ्य होते हैं ॥३२२-३२६ ॥

अन्यत्र पथ्य निर्देश— पुराना सांवा, कोदों, वनकोदों, गेहूँ, चना, अरहर, कुलथी के अन्न, जांगल देश में रहने वाले प्राणियों के मांस रस, तिक्त रस प्रधान शाक, जौ, परिश्रम करना तथा मधु ये सब हितकर होते हैं।

प्रमेहरोग में अपथ्य

मूत्रवेगं धूमपानं स्वेदं शोणितमोक्षणम् ।
सदासनं दिवा निद्रां नवान्नानि दधीनि च ॥ ३२७ ॥
आनूपमांसनिष्पावं पिष्टान्नानि च मैथुनम् ।
सौवीरकं सुरां शुक्तं तैलं क्षीरं घृतं गुडम् ॥ ३२८ ॥
तुम्बीं तालास्थिमज्जानं विरुद्धान्यशनानि च ।
कूष्माण्डमिक्षुं दुष्टाम्बु स्वाद्वम्ललवणनि च ॥
अभिष्यन्दि च यत्नेन प्रमेही परिवर्ज्जयेत् ॥ ३२९ ॥

मूत्र के वेग को रोकना, धूमपान, स्वेदनकर्म, सिरावेध द्वारा रक्तमोक्षण कराना, सदा बैठे रहना, दिन में सोना, नये अन्नों का सेवन करना, दधि का सेवन, आनूपदेश में रहने वाले पशु-पक्षियों का मांस, निष्पाव (उबाले गये चना आदि अन्न) पीठी, द्वारा बनाये गये भोज्य पदार्थ, स्त्रीसहवास, काँजी, मदिरा, सिरका, तेल, क्षार, घी, गुड़, गोल लौकी, ताड़ के फल की भीतर वाली गिरी, विरुद्ध भोजन, कोहड़ा, (पेठा), ईख, दूषित जल, मधुर, अम्ल, नमकीन, पदार्थ तथा अभिष्यन्दकारक पदार्थों का सेवन न करें, ये सभी अपथ्य (अहितकर) होते हैं। ३२७-३२९ ॥

वक्तव्य– अपथ्यों का वर्णन करते हुए उक्त पाठ में कुछ संस्करणों में 'क्षार', शेष कुछ में 'क्षीर' पाठ है। इसका निर्णय करने के लिये क्षार एवं क्षीर के गुणधर्मों का अवलोकन करें, वास्तव में दोनों ही द्रव्य प्रमेह रोगी के लिये अपथ्य हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अन्यत्र अपथ्य निर्देश— काँजी, मद्य, सिरका, तेल, दूध, घी, गुड़, खट्टे पदार्थ, ईख का रस, पीठी के पदार्थ तथा आनूपदेश के पशु-पक्षियों के मांस रस अपथ्य होते हैं।

मेदोरोग में पथ्य

चिन्ता श्रमो जागरणं व्यवायः प्रोद्वर्त्तनं लङ्घनमातपश्च ।
हस्त्यश्वयानं भ्रमणं विरेकः प्रच्छर्द्दनं चाप्यपतर्पणानि ॥ ३३० ॥
पुरातना वैणवकोरदूषश्यामाकनीवारप्रियङ्गवश्च ।
यवाः कुलत्थाश्चणका मसूरा मुद्गास्तुवर्य्योऽपि मधूनिलाजाः ॥ ३३१ ॥
कटूनि तिक्तानि कषायकाणि तक्रं सुरा चिङ्गटमत्स्य एव ।
दग्धानि वार्त्तकुफलानि चापि फलत्रयं गुग्गुलुरायसं च ॥ ३३२ ॥
कटुत्रयं सर्षपतैलमेला रूक्षाणि सर्वाणि च मुख्यतैलम् ।
पत्रोत्थशाकोऽगुरुलेपनानि प्रतप्तनीराणि शिलाजतूनि ॥ ३३३ ॥
प्राग्भोजनस्यापि च वारिपानं मेदोगदं पथ्यमिदं निहन्ति ॥ ३३४ ॥

अपने रोग के सम्बन्ध में चिन्ता करना, शारीरिक परिश्रम, अधिक जागना (अधिक सोने से कफदोष की वृद्धि होती है), व्यवाय (मैथुन-यह भी एक परिश्रम ही है), उबटन, लंघन (लघु भोजन), धूप का सेंकना, हाथी-घोड़ा की सवारी करना, घूमना, विरेचन, वमन, अपतर्पण (कृश करने का उपाय), पुराने बांस के चावल, कोदों, साँवा, तिन्नी, कँगुनी, जौ, कुलथी, चना, मसूर, मूंग, अरहर, मधु, लावा (खील), कटु, तिक्त, कषाय रस, प्रधान द्रव्य, मट्ठा, मद्य, चिंगट नामक पछली, भूंजे हुए बैगन (का भर्ता), फलत्रय (इस शब्द से आयुर्वेद में त्रिफला तथा मधुर त्रिफला का अर्थ ग्रहण किया जाता प्रथम त्रिफला (हरड़, बहेड़ा, आँवला) दूसरा है (मुनक्का, गंभारी, खजूर) देखें– राजनि. मिश्रकादिवर्ग), गुग्गुल, लोहभस्म, कटुत्रय (सोंठ, मरिच, पीपल), सरसों का तेल, इलायची, सभी प्रकार के रूक्ष पदार्थ, मुख्य तैल (तिल तेल), सभी पत्र शाक, अगुरु का लेप, गरमजल, शिलाजीत, भोजन करने के पहले पानी पीना, ये सभी पथ्य मेदोरोग को नष्ट करते हैं ॥ ३३०-३३४ ॥

वक्तव्य– मेदस्वी (जिसका मेदोधातु बढ़ा हो उस) को स्थूलपुरुष भी कहते हैं। इसके सम्बन्ध में आयुर्वेद में एक सुभाषित प्रसिद्ध है– 'कार्श्यमेव वरं स्थौल्यान्नहि स्थूलस्य भेषजम्'। अर्थात् स्थूल तथा कृश पुरुष की यदि तुलना की जाय जो कृश पुरुष ही अच्छा है, स्थूलपुरुष की कोई चिकित्सा नहीं । चरक ने जिस अध्याय में आठ प्रकार के निन्दित पुरुषों का वर्णन किया है, उसमें एक अतिस्थूल भी है। देखें–च.सू.२१/३ । अतः इस प्रसंग में अतिस्थूल के लिये निर्दिष्ट पथ्य देखें।

स्थौल्यरोग में पथ्य— पुराने शाली धान्य के चावल, मूंग, कुलथी ,जौ, कोदों तथा लेखनबस्तियों का सदैव उपयोग करना चाहिये।

अन्यत्र पथ्य– श्रम, चिन्ता, मैथुन, मार्गगमन, मधु, रात्रिजागरण, जौ, साँवा, कमसोना, व्यायाम, प्रातःकाल मधु में पानी मिलाकर पीना, भात का माँड़ पीना, इन पदार्थों का क्रमशः अधिक सेवन करने का अभ्यास करें। इनसे मनुष्य कृश हो जाता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मेदोरोग में अपथ्य

स्नानं रसायनं शालीन् गोधूमान् सुखशीलताम् ।
क्षीरेक्षुविकृतीर्माषान् सौहित्यं स्नेहनानि च ॥ ३३५ ॥
मत्स्यं मांसं दिवा निद्रां स्रग्गन्धान् मधुराणि च ।
भोजनस्य समग्रस्य पश्चात् पानं जलस्य च ॥ ३३६ ॥
अतिमात्रं तूपचितो विशेषाद्वमनक्रियाम् ।
स्वभावस्थत्वमन्विच्छन् मेदस्वी परिवर्ज्जयेत् ॥ ३३७ ॥

स्नान करना, विविधि प्रकार के रसायनों (शरीर पोषक तथा जरा-व्याधि नाशक पदार्थों) का सेवन, शालीधान्य, गेहूँ, सुख प्राप्ति के साधनों, दूध, ईख के विकार (राब, खाँड़, गुड़, चीनी आदि), उड़द, तृप्तिपूर्वक भोजन, स्नेहन (चार प्रकार के स्नेह तथा उनसे बने हुए पदार्थ), मछली, मांस, दिन में सोना, माला तथा सुगन्धित पदार्थों को धारण करना, मधुर रसवाले सभी खाद्य पदार्थ, सम्पूर्ण भोजन कर लेने के बाद पानी पीना, अत्यन्त मोटे पुरुष को वमन कराना, इन सभी का वह पुरुष त्याग कर दे, जो मेदोरोगी सामान्य पुरुषों के समान जीवन व्यतीत करना चाहे ॥३३५-३३७ ॥

कृशतारोग में पथ्यापथ्य

यत् पथ्यं यदपथ्यं च मेदोरोगे प्रकीर्तितम् ।
वैपरीत्येनोपयोगः कृशत्वे परिकीर्तितः ॥ ३३८ ॥

कृशता रोग का पथ्यापथ्य संग्रहकर्ता ने सूत्र रूप में प्रस्तुत किया है। जो जो पथ्य तथा अपथ्य मेदोरोग का कहा गया है, उसके विरुद्ध कृश रोग में प्रयोग करना चाहिये। इसे आप इस प्रकार समझें। मेदोरोग में कृशता कारक द्रव्य पथ्य होते हैं. अतः ने इसमें अपथ्य समझें।

मेदोरोग में जो अपथ्य कहे गये हैं, उन्हें कृशतारोग में पथ्य समझें, क्योंकि वे द्रव्य स्थूलता कारक होते हैं और कृशपुरुष को उनकी आवश्यकता होती है ॥ ३३८ ॥

उदररोगों में पथ्य

विरेचनं लङ्घनमब्दसम्भवाः कुलत्थमुद्गारुणशालयो यवाः ।
मृगद्विजा जाङ्गलसंज्ञयान्विताः पेयाः सुरा माक्षिकसीधुमाधवाः ॥ ३३९ ॥
तक्रं रसोनो रुबुतैलमार्द्रकं शालिञ्चशाकं कुलकं कठिल्लकम् ।
पुनर्नवा शिग्रुफलं हरीतकी ताम्बूलमेला यवशूकमायसम् ॥ ३४० ॥
अजागवोष्ट्रीमहिषीपयो जलं लघूनि तिक्तानि च दीपनान्यपि ।
वस्त्रेण संवेष्टनमग्निकर्मता विषप्रयोगोऽनुयुतो यथायथम् ॥ ३४१ ॥
विशेषतः प्लीहसमुद्भवे पुनर्वामे प्रवाहौ धमनीव्यधः परः ।
बद्धोदरे चोदकजे क्षतोत्थिते नाभेरधः शस्त्रविधिर्यथाविधिः ॥ ३४२ ॥
समीरणोत्थे घृतपानमादितः साभ्यञ्जनं वाप्यनुवासनं तथा ।
यथामलं पथ्यगणोऽयमाश्रितः सखा नृणां स्यादुदरामये सति ॥ ३४३ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विरेचन कराना, लंघन, साल भर पुराने कुलथी, मूंग, लाल शाली धान्य, जौ ये अन्न, जांगल देश के निवासी पशु-पक्षी इनके मांस, विविध प्रकार की पेया, मद्य, मधु, सीधु तथा महुआ की शराब, मट्ठा, लहसुन, एरण्ड तेल, अदरख, शलिंच शाक, परबल, करेला, पुनर्नवा, सहिजन की फली, हरड़, पान, इलायची, जवाखार, लौहभस्म, बकरी, गाय, ऊँटनी, भैंस इनका दूध, इन्हीं के मूत्र, लघु (सुपाच्य पदार्थ), तिक्त रस, अग्निवर्धक पदार्थ, उदर प्रदेश को स्वच्छ वस्त्र से लपेटकर बाँधना (यह कर्म विरेचन कराने के बाद करें), अग्निकर्म (दागना), शास्त्रीय विधि के अनुसार विष का ठीक ठीक प्रयोग करना, विशेषकरके प्लीहोदर में बाईं ओर की बाँह में शिरावेध करना, बद्धगुदोदर, जलोदर, क्षतोदर में नाभि के नीचे यथाविधि शस्त्रकर्म करें, वातज उदररोग में सर्व प्रथम घृतपान, अभ्यंग तथा अनुवासनबस्ति का प्रयोग करें। दोषों के अनुसार विचार कर इन पथ्यों का सेवन को करें। तब यह पथ्यगण उदर रोगियों की मित्र की भाँति सहायता करते हैं ॥ ३३९-३४३ ॥

वक्तव्य— उदररोग शब्द से मन्दाग्नि के कारण होने वाले सामान्य मन्दाग्नि तथा अजीर्णता आदि का ज्ञान हो जाता है, किन्तु यहाँ १. वातज, २. पित्तज, ३. कफज, ४. सन्निपातज, ५. प्लीहोदर, ६. बद्धगुदोदर, ७. छिद्रोदर, ८. जलोदर या दकोदर रोगों का ग्रहण किया जाता है। एक उदर रोग और होता है, जिसे 'यकृद्दाल्युदर' कहा जाता है, इसका अन्तर्भाव 'प्लीहोदर' में कर लिया जाता है। प्लीह विकृति के अवसर पर यकृत विकृति का भी अवश्य स्मरण कर लेना चाहिये, सामान्य दृष्टि से विषमज्वर में भी प्लीहा तथा यकृत की वृद्धि हो जाती है।

उदर जब दोषों से पूर्ण हो जाता है तो सबसे पहले अग्निमन्द पड़ जाता है। अतः इस रोग में अग्निवर्धक तथा सुपाच्य आहारों का प्रयोग करना चाहिये। यथा— लालशाली के चावल, जौ, मूंग, जांगल पशु-पक्षियों का मांस रस, दूध, गोमूत्र, आसव, अरिष्ट, मधु, शीधु आदि का सदा सेवन करता रहे।

अन्यत्र पथ्य चर्चा— सालभर के पुराने लाल शालीधान्य, जौ, मूंग, कुलथी, मधु, सुरा, सीधु(मद्य विशेष), जांगल देश के निवासी पशु-पक्षियों के मांस, लहसुन, अदरख, मठ्ठा, परवल, सहजन की फली, पुनर्नवा, करेला, पान, इलायची, दूध, सुपाच्य आहार, अग्निवर्धक आहार, तिक्त रस वाले पदार्थ, वात आदि दोषों तथा अग्नि के बल को देखकर इन पथ्यों का यथोचित प्रयोग करें।

उदररोगों में अपथ्य

संस्नेहनं धूमपानं जलपानं शिराव्यधः ।
छर्दिर्यानं दिवानिद्रा व्यायामं पिष्टवैकृतम् ॥ ३४४ ॥
औदकानूपमांसानि पत्रशाकास्तिलान्यपि ।
उष्णानि च विदाहीनि लवणान्यशनानि च ॥ ३४५ ॥
शिम्बीधान्यं विरूद्धान्नं दुष्टनीरं गुरूणि च ।
महेन्द्रगिरिजातानां सरितां सलिलानि च ॥ ३४६ ॥
विष्टम्भीनि विशेषात्तु स्वेदं विष्टम्भसम्भवे ।
वर्जयेदुदरव्याधौ वैद्यो रक्षन्निजं यशः ॥ ३४७ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्नेहकर्म, धूमपान, जलपान, सिरावेध द्वारा रक्तनिर्हरण, वमनकर्म, पैदल यात्रा करना, दिन में सोना, व्यायाम (किसी भी प्रकार का शारीरिक श्रम), पीठी के पदार्थों का सेवन करना, जल में रहने वाले प्राणियों तथा आनूपदेश में रहने वाले प्राणियों के मांस, सभी पत्रशाक, तिल, उष्णवीर्य, विदाहकारक तथा सभी प्रकार के नमकीन अन्न, सभी प्रकार के शिम्बी धान्य, विरुद्ध आहारों का सेवन, दूषित जल को पीना, गुरु पदार्थों का खाना, महेन्द्राचल से निकली हुई (पहाड़ी) नदियों का जल पीना, विष्टम्भ (कब्जियत) के कारण उत्पन्न उदररोग में कब्जकारक पदार्थ, स्वेदनकर्म को त्याग दें। इस पथ्यवर्ग का रोगी को प्रयोग कराने से चिकित्सक अपने यश की रक्षा कर सकता है ॥ ३४४-३४७ ॥

अन्यत्र अपथ्य चर्चा— अधिक दूध पीना, देर में पचने वाले पदार्थ, स्नेहन, धूप का सेवन, धूमपान करना, जलीय तथा आनूप देश के प्राणियों के मांस, पत्रशाक, तिल, दही, नमकीन, पदार्थ, उष्ण, विदाहकारक, वात आदि दोष के अनुसार महेन्द्र आदि पहाड़ी नदियों का जल, व्यायाम, मैथुन, स्नान, इधर- उधर घूमना, इस प्रकार के अन्य पदार्थों को उदर रोगी अपथ्य समझकर सदा छोड़ दें।

शोथरोग में पथ्य

संशोधनं लङ्घनमस्रमोक्षः स्वेदः प्रलेपः परिषेचनं च ।
पुरातनाः शालियवाः कुलत्थमुद्गाश्च गोधापि च शल्लकोऽपि ॥ ३४८ ॥
भुजङ्गभुक्तित्तिरिताम्रचूडलावादयो जाङ्गलविष्किराश्च ।
कूर्म्मोऽपि शृङ्गी प्रपुराणसर्पिस्तक्रं सुरा माक्षिकमासवश्च ॥ ३४९ ॥
निष्पावकाठिल्लकरक्तशिग्रुरसालकर्कोटकमाणमूलम् ।
सुवर्चला गृञ्जनकः पटोलं वेत्राग्रवातिङ्गनमूलकानि ॥ ३५० ॥
पुनर्नवा चित्रकपारिभद्रश्रीपर्णनिम्बक्षुरपल्लवानि ।
एरण्डतैलं कटुका हरिद्र हरीतकी क्षारनिषेवणं च ॥ ३५१ ॥
भल्लातकं गुग्गुलुरायसं च कटूनि तिक्तानि च दीपनानि ।
मूत्राणि गोऽजामहिषीभवानि कस्तूरिका चापि शिलाजतूनि ॥ ३५२ ॥
यत् पाण्डुरोगिण्यपि वह्निकर्मपुरा प्रदिष्टं तु तदेव चापि ।
यथामलं पथ्यमिदं प्रदिष्टंशोथामयं सत्वरमुच्छिनत्ति ॥ ३५३ ॥

संशोधन अर्थात् वमन द्वारा ऊपरी शरीर का और विरेचन द्वारा अधोभागका शोधन, लंघन (लघु भोजन), रक्तमोक्षण (सिरावेध), स्वेदन, शरीर पर शोथनाशक लेप, परिषेचन, पुराने शालीधान्य, जौ, कुलथी, मूंग आदि अन्न, गोह, सेह मोर, तीतर, मुर्गा, लवा, जांगल देश के पशु-पक्षी, जो विखेर कर के दाना चुगते हैं (विष्किर वर्ग के पक्षी), कछुआ, सिंगी मछली, अधिक पुराना घी, मट्ठा, मद्य, मधु, आसव, निष्पाव (उबले हुए अन्न), करेला, लालसहजन, आम, ककोड़ा, मानकन्द, हुलहुल, गाजर, परबल, वेत के अंकुर का अग्रभाग, वातिंगन (बैगन), कोमल मूली, पुनर्नवा, चित्रकमूल, फरहद, गम्भार की छाल तथा इसके कोमल पत्र, नीम, गोखरू के पत्ते, एरण्ड तेल, कुटकी, हल्दी, हरड़, सभी क्षारों का सेवन, भिलावा-गुग्गुलु, लोहभस्म, कटुरस तथा तिक्तरस प्रधान पदार्थ, अग्निवर्धक पदार्थ,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गाय, बकरी, भैंस के मूत्र, कस्तूरी, शिलाजीत, जिन पथ्यों का वर्णन पाण्डुरोग में कहा गया है, वे पदार्थ भी वह्निकर्म (जैसा पाण्डुरोग में कहा गया है– दोनों पैरों की सन्धि में, नाभि के दो अंगुल नीचे, सिर में, हाथों के मूल में, स्तनों और काखों के मध्य भाग में दागना), ये सभी दोष विशेष की स्थिति का विचार कर प्रयोग करने पर शोथरोग में पथ्य (हितकर) हैं ॥ ३४८-३५३ ।।

अन्यत्र पथ्य चर्चा— दशमूल के क्वाथ रस द्वारा पकाये गये पुराने जौ, लाल शालीधान्य के चावल, थोड़ी मात्रा में सरसों का तेल, ये शोथरोगियों के लिये पथ्य होते हैं। कुछ और– कछुआ का मांसरस, शृंगी, मद्‌गुर नामक मछलियों का मांसरस ये भी शोथरोग (सूजन) में पथ्य होते हैं।

शोथरोग में अपथ्य

नित्यं दुष्टं पवनसलिलं वेगरोधं विरुद्धं
सर्वं पानं विषममशनं मृत्तिकाभक्षणं च ।
गौडं पैष्टं दधि सकृशरं निर्ज्जलं मद्यमम्लम् ॥ ३५४ ॥
धानावल्लूरं समशनमथो गुर्व्वसात्म्यं विदाहि
सप्तं चारात्रौश्वयथुगदवान् वर्ज्जयेन्मैथुनं च ॥ ३५५ ॥

दूषित जल तथा वायु का सदा सेवन करना मल-मूत्र आदि अधारणीय वेगों को रोकना, संयोग विरुद्ध अन्न-पान का सेवन करना, विषम (कभी कम कभी अधिक) भोजन करना, मिट्टी खाना, ग्रामीण (पालतू) तथा अनूप-देश में रहने वाले पशु-पक्षियों का मांस, नमक, सुखाये गये शाक, नये अन्न, गुड़ तथा गुड़ मिलाकर बनाये गये पीठी के पदार्थ, दही के साथ खिचड़ी का सेवन, निर्जर (नया) अथवा निर्जलं (विना पानी मिला गया) मद्य, अम्लरस प्रधान खाद्य, भुने हुने हुए धान्य, सूखा मांस, समशन (हितकर), अहित कर अन्नों को मिलाकर एक साथ खाना, देखें-सु. सू.४६ ।५०८ । गुरु, असात्म्य, विदाही पदार्थों का सेवन करना, सात रात्रियों तक स्त्रीसहवास करना इन्हें शोथरोगी छोड़ें ॥ ३५४-३५५ ॥

वक्तव्य— संस्करण भेद से पाठभेद भी सुलभ हो जाते हैं। जैसा कि ऊपर 'निर्जरं' तथा 'निर्जलं' पाठ का अर्थ सहित उल्लेख किया गया है। ऐसा ही एक पाठभेद और है– "सप्तं चारात्रौ" इसका सम्बन्ध 'मैथुनं' के साथ बुद्धि पूर्वक जोड़ा गया है, परन्तु यहाँ 'सप्तं' शब्द का प्रयोग अनेक कारणों से खटक रहा है। इसके स्थान पर अन्यत्र 'स्वप्नं चाह्नि' पद का प्रयोग हुआ है, जो उससे अधिक उपयुक्त है। शोथरोग में सामान्यतया दिन में सोना निषिद्ध भी है। इसके समर्थन में आगे एक पद्य देखें–

'पिष्टान्नमुष्णं लवणानि मद्यं, मृदं दिवास्वनमजाङ्गलञ्च ।
पयोगुडं तैल मथो गुरूणि शोफं जिघांसुः परिवर्जयेच्च' ॥

और भी– 'गुर्वन्नं मद्यमम्लञ्च शीततोयं विदाहि च। दिवास्वापं मैथुनञ्च शोथरोगी परित्यजेत्' ॥ इस प्रकार 'सातरात्रियों तक मैथुन की अवधि का वर्णन 'प्रसंगोचित प्रतीत नहीं हो रहा है। अतः यहाँ 'स्वप्नं चाह्नि' पाठ विषय की दृष्टि से उचित है, किन्तु छन्द की दृष्टि से नहीं, वहाँ तो 'स्वप्नं चारात्रौ' पाठ छन्द की दृष्टि से भी ठीक हो जायगा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वृद्धिरोग में पथ्य

संशोधनं बस्तिरसृग्विमोक्षः स्वेदः प्रलेपोऽरुणशालयश्च ।
एरण्डतैलं सुरभीजलं च धन्वामिषं शिग्रुफलं पटोलम् ॥ ३५६ ॥
पुनर्नवा गोक्षुरकोऽग्निमन्थस्ताम्बूलपथ्या शुरणं रसोनम् ।
वातीङ्गणं गृञ्जनकं मधूनि कौम्भं घृतं तप्तजलं च तक्रम् ॥ ३५७ ॥
यदामवातापहमग्निकारि तदन्नपानं च सुरा पुराणी ।
अर्द्धेन्दुवद्वङ्क्षणयोश्च दाहो व्यत्यासतो बाहुसिराव्यधश्च ॥ ३५८ ॥
यथाश्रुतं शस्त्रविधिश्च वर्गः स्याद्ब्रध्नवृद्ध्यामयिनां सुखाय ॥ ३५९ ॥

वमन-विरेचन विधियों से जो शरीर का शोधन किया जाता है, उसे संशोधन कहते हैं। बस्तिकर्म (यह विधि भेद से अनेक प्रकार की होती है), रक्तमोक्षण (यह कर्म सिरावेध द्वारा किया जाता है), स्वेदन, लेप लगाना, लालशालि धान्यों का प्रयोग, एरण्ड के बीजों का तेल, गोमूत्र, मरुभूमि के प्राणियों का मांस, सहजन की फलियाँ, परबल, पुनर्नवा, गोखरू, अग्निमन्थ (अगेथू या अरनी), पान, हरड़, सूरन, लहसुन, बैगन, गाजर, सभी प्रकार के मधु (भावप्रकाश मधुवर्ग में इसके भेद देखें), कुम्भसर्पि (देखें-सु.सू.४५ ।१०७-१०९), गरम पानी, मट्ठा, आमवात नाशक तथा अग्निवर्धक सभी औषध, अन्न-पान, पुराने मद्य, अर्धचन्द्र की भाँति दोनों वंक्षणों (ऊरुसन्धियों अथवा पेडू और जाँघ के बीच के भागों में दागना) व्यत्यास रीति से वाहुओं की सिरा को काटकर सिराबेध करना, शास्त्र के अनुसार अथवा परम्परा से जैसा सुना हो तदनुसार शस्त्र प्रयोग करना, ये सभी उपाय ब्रध्न या वृद्धिरोगियों के सुख के लिये यह पथ्यवर्ग कहा गया है ॥३५६-३५९ ॥

वक्तव्य– वृद्धिरोग को चरक ने ब्रध्नरोग कहा है। लोकव्यवहार में इसे अण्डकोष का बढ़ना या पोता बढ़ जाना कहते हैं। व्यत्यास– का अर्थ है, उलटा-पलटा, अर्थात् दाहिनी ओर का अण्ड कोष बढ़ा हो तो बांयी ओर की बाहु में और बांयी ओर का अण्डकोष बढ़ा हो तो दाहिनी ओर की बाहु में सिरावेध करें।

संक्षेप में पथ्यापथ्य निर्देश– वृद्धिरोग में अभिष्यन्दकारक खान-पान का प्रयोग नहीं होना चाहिये तथा अत्यन्त शीत चिकित्सा भी नहीं होनी चाहिये, इसके विपरीत सभी अपथ्य होते हैं, जिनका वर्णन आगे किया जायगा।

वृद्धिरोग में अपथ्य

विरुद्धपानान्नमसात्म्यसेवा संक्षोभणं हस्तिहयादियानम्
अनूपमांसानि दधीनि माषा दुग्धानि पिष्टान्नमुपोदिका च ॥ ३६० ॥
गुरूणि शुक्रोत्थितवेगरोधाः स्युर्ब्रध्नवृद्ध्यामयिनाममित्राः ॥ ३६१ ॥

परस्पर संयोग विरुद्ध खान-पान, अपनी प्रकृति के विपरीत आहार-विहार का सेवन, शरीर को झकझोर देने वाले कर्म, हाथी, घोड़ा एवं ऊँट आदि की सवारी, अनूपदेशीय प्राणियों का मांस, दही, उड़द, दूध, पीठी के बने भोज्य पदार्थ, पोई का शाक, सभी गुरुपदार्थ, शुक्र के वेग को रोकना, ये सभी वृद्धि रोगियों के लिये अपथ्य होते हैं ॥ ३६०-३६१ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

और भी– वृद्धिरोग में अधिक भोजन कर लेना, अधिक मार्ग गमन, उपवास (लंघन करना), देर से पचने वाले पदार्थों का सेवन करना, मल-मूत्र आदि अधारणीय वेगों को रोकना, हाथी, घोड़ा, आदि के पीठ पर चढ़कर इधर-उधर जाना, व्यायाम (किसी प्रकार का आवश्यकता से अधिक शारीरिक परिश्रम), मैथुन (यह भी एक प्रकार का आयासजनक कार्य है) ये सभी अपथ्य हैं। (घोड़े, जुते, रथ की सवारी अपथ्य नही है)।

गलगण्ड आदि में पथ्य

छर्दिर्विरेचनं नस्यं स्वेदो धूमः सिराव्यधः ।
अग्निकर्म क्षारयोगः प्रलेपो लङ्घनानि च ॥ ३६२ ॥
पुराणघृतपानं च जीर्णलोहितशालयः ।
यवा मुद्गाः पटोलं च रक्तशिग्रु कठिल्लकम् ॥ ३६३ ॥
शालिञ्चशाकं वेत्राग्रं रूक्षाणि च कटूनि च ।
दीपनानि च सर्वाणि गुग्गुलुश्च शिलाजतु ॥ ३६४ ॥
विशेषाद्गलगण्डे तु छिन्द्याज्जिह्वातले सिराः ।
कुर्याद्वा मणिबन्धार्द्धे रेखास्तिस्रोऽङ्गुलान्तरः ॥ ३६५ ॥
गलगण्डगण्डमालापचीग्रन्थ्यार्बुदातुरे ।
यथादोषं यथावस्थं पथ्यमेतत् प्रकीर्त्तितम् ॥ ३६६ ॥

वमन, विरेचन, नस्यकर्म, स्वेदन (पसीना लाने के उपाय), धूमपान, सिरावेध, (यह कर्म प्रायः रक्तसार पुरुषों में ही करना चाहिये, इसके प्रयोग से शरीर का अशुद्ध रक्त निकल कर रक्त शुद्ध हो जाता है, इसका विशेष विधान सुश्रुत में देखें), अग्निकर्म (दागना), क्षारों के प्रयोग, लेप (बैठाने तथा फोड़ने वाले), लंघन, पुराने घी को पिलाना, पुराने लाल शाली चावलों का भोजन में प्रयोग, जौ, मूंग, परबल, लाल सहजन, करेला, शालिंच का शाक, वेत के अंकुर का अगला भाग, सभी रूक्ष, कटु तथा दीपन (अग्निवर्धक) पदार्थ, गुग्गुल, शिलाजीत, विशेषकर के गलगण्ड रोग में जीभ के नीचे की सिरा का वेध करें, अथवा मणिबन्ध (कलाई) के आधे भाग में एक एक अंगुल का अन्तर देकर तीन चीरे लगायें, ये सभी दोषों के अनुसार गलगण्ड, गण्डमाला, अपची, ग्रन्थिरोग तथा अर्बुदरोग में पथ्य कहे गये हैं ॥३६२-३६६ ॥

गलगण्ड आदि में अपथ्य

क्षीरेक्षुविकृतीः सर्वा मांसं चानूपसम्भवम् ।
पिष्टान्नमम्लं मधुरं गुर्वभिष्यन्दिकारि च ॥ ३६७ ॥
गलगण्डगण्डमालापचीग्रन्थ्यर्बुदामयान् ।
चिकित्सन्नगदङ्कारो यशोर्थी परिवर्ज्जयेत् ॥ ३६८ ॥

दूध के विकार—दूध की मलाई, दही तथा उसकी मलाई, मक्खन, घी, मठ्टा, छेना, दधिकूर्चिका, तक्रकूर्चिका आदि, ईख के विकार– राब, खाँड़, गुड़, चीनी, मिश्री आदि, ये सभी अनूप देशज पशु-पक्षियों का मांस, उड़द, आदि दालों की पीठी से बनाये गये भक्ष्य पदार्थ, अम्ल

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तथा मधुर रस वाले पदार्थ, गुरु, अभिष्यन्द (कफ) कारक पदार्थ, इन सब का गलगण्ड, गण्डमाला, अपची,ग्रन्थि, अर्बुद के चिकित्सा काल में अपना यश चाहने वाला चिकित्सक रोगी को सेवन न करने दे ॥ ३६७-३६८ ॥

श्लीपदरोग में पथ्य

प्रच्छर्द्दनं लङ्घनमस्रमोक्षः स्वेदो विरेकः परिलेपनं च ।
पुरातनाः षष्टिकशालयश्च यवाः कुलत्था लशुनं पटोलम् ।
वार्त्ताकुशोभाञ्जनकारवेल्लं पुनर्नवामूलकपोतिकाश्च ।
एरण्डतैलं सुरभीजलं च कटूनि तिक्तानि च दीपनानि ॥ ३७० ॥
गुल्फोपरिष्टाच्चतुरङ्गुले च वातोत्तरे गुल्फतले तु पैत्ते ।
अङ्गुष्ठमूले कफजे विशेषात् सिराव्यधं चैव यथाविधानम् ॥ ३७१ ॥
एतानि पथ्यानि भवन्ति पुंसां रोगे सति श्लीपदनामधेये ॥ ३७२ ॥

वमन कराना, लंघन, रक्तमोक्षण, स्वेदन, विरेचन, विविध प्रकार के लेप लगाना, पुराने सांठीधान्य, जौ, कुलथी, लहसुन, परबल, बैगन, सहजन, करेला, पुनर्नवा, कोमल मूली, पोई का शाक, एरण्ड तेल, गोमूत्र, कटु तथा तिक्तरस प्रधान सभी पदार्थ, अग्निवर्धक औषध, खान-पान पथ्य होते हैं। सिरावेध का विधान-वातजश्लीपद (फीलपाँव) में गुल्फ (टखना) से चार अंगुल-ऊपर, पित्तजश्लीपद में चार अंगुल नीचे, तथा कफजश्लीपद में अँगूठा के जड़ की नस का विधिपूर्वक सिरावेध करना चाहिये। ये सब स्त्री पुरुषों के श्लीपदरोग में पथ्य होते हैं ॥३६९-३७२ ॥

वक्तव्य— माधवकर ने इसके असाध्य लक्षणों का वर्णन करते हुए लिखा है, कि एक वर्ष पुराना यह रोग असाध्य हो जाता है। उक्त पथ्यापथ्य का विवेचन इसके पूर्व ही कर लेना चाहिये। श्रीमानों के गृह चिकित्सक समय-समय पर ऐसी बातों को सुझाते रहते हैं। यह रोग प्रायः एक पैर में या दोनों पैरों में भी होता देखा जाता है। कुछ आचार्यों का मत है कि यह रोग हाथों, कानों, आँखों, लिंग, भगोष्ठों तथा नासिका में भी होते हैं। इसका विशेष व्याख्यान, व्याख्याकार डॉ. ब्रह्मानन्द त्रिपाठी द्वारा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी से प्रकाशित माधवनिदान में देखें।

श्लीपदरोग में अपथ्य

पिष्टान्नं दुग्धविकृतिं गुडमानूपमामिषम् ।
स्वादुरसं पारियात्रसह्यविन्ध्यनदीजलम् ॥
पिच्छिलं गुर्वभिष्यन्दि श्लीपदी परिवर्जयेत् ॥ ३७३ ॥

मूंग, उड़द आदि की पीठी के बने हुए भक्ष्य पदार्थ, दुग्ध विकृति (दही, खोवा या मावा आदि) गुड़, अनूपदेश के निवासी पशु-पक्षियों के मांस, सभी मीठे रस (कफवर्धक होते हैं।) पारियात्र, सह्याचल तथा विन्ध्याचल से निकलने वाली नदियों के जल, पिच्छिल (दही आदि), गुरु तथा अभिष्यन्दी पदार्थों का सेवन श्लीपद (फीलपाँव) का रोगी न करें ।

श्लीपदरोग के क्षेत्र— नदियों तथा समुद्र के तटवर्ती प्रदेशों को भी आनूपदेश कहा जाता है, हिमालय की तराई, उत्तरप्रदेश के पूर्वी तथा उत्तरीभाग, बिहार, बंगाल, उड़ीसा, कोचीन, त्रावणकोर आदि स्थानों में यह रोग अधिकांश होते देखा जाता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विद्रधि रोग में पथ्य

आमावस्थे रेचनानि लेपः स्वेदोऽस्त्रमोक्षणम् ।
जीर्णाः श्यामाककलमाः कुलत्था लशुनानि च ॥ ३७४ ॥
रक्तशिग्रु च निष्पावः कारवेल्लं पुनर्नवा ।
श्रीपर्णी-चित्रकः क्षौद्रं शोथोक्तानि च सर्वशः ॥ ३७५ ॥
पक्कावस्थे शस्त्रकर्म पुराणा रक्तशालयः ।
घृतं तैलं मुद्गरसो विलेपी धन्वजा रसाः ॥३७६ ॥
शालिञ्चशाकं कदलं पटोलं हिमबालुका ।
चन्दनं तप्तशीताम्बु सर्वं चापि व्रणोदितम् ॥ ३७७ ॥
नराणां विद्रधिव्याधौ यथावस्थं यथामलम् ।
पथ्यान्येतानि सर्वाणि निर्दिष्टानि महर्षिभिः ॥ ३७८ ॥

आम अवस्था के विद्रधि में अर्थात् जो अभी पकने न लगा हो, उसमें अनेक बार विरेचन दें, ऊपर से लेप लगायें, उस स्थान पर स्वेदन करें, रक्तमोक्षण करायें. इस काल में पुराने सॉवा, रोप कर लगाये गये धानों का भात, कुलथी, लहसन, लालसहजन, उबले हुए चना आदि, करेला, पुनर्नवा, गम्भार की छाल, चीता के जड़की छाल, मधु, शोथरोग में जो पथ्य कहे गये हैं, उन सभी का प्रयोग करना चाहिये। विद्रधि के पक जाने पर उस पर चीरा लगाकर पूय (मवाद) को निकलवायें, खाने को पुराने लाल शालिधान्य के चावलों का भात दें, घी, तैल, मूंग का जूस, विलेपी, मरुभूमि पर रहने वाले प्राणियों के मांसरस, शालिंच का शाक, कच्चा केला, परबल, शीतल बालू, चन्दन, खौलाकर शीतल किया हुआ जल, व्रण उपचार में कहे गये सभी पथ्य रोग तथा दोषों की स्थिति का विचार करके महर्षियों ने इन सबको पथ्य कहा है ॥ ३७४-३७८ ॥

वक्तव्य—भीतर की ओर मुख वाले अथवा मांसल स्थानों में उत्पन्न व्रण को विद्रधि ABSCESS कहते हैं। यह यकृत्, प्लीहा आदि भीतरी अवयवों में भी जो जाता है, इसका निर्णय एक्सरे द्वारा ठीक ढंग से हो जाता है। यह भीतर ही भीतर पक जाता है। समय पर ध्यान न देने से यह फूटकर हड्डी को भी गला डालता है, अतः सावधान रहें।

विद्रधिरोग में अपथ्य

शोथिनां यान्यपथ्यानि व्रणिनामहितानि च ।
क्रमादामे च पक्वे च विद्रधौ वर्ज्जयेन्नरः ॥ ३७९ ॥

शोथरोग वालों और व्रणरोगियों के लिये जो अपथ्य कहे गये हैं, उन सब का प्रयोग आम (कच्चे) तथा पके हुए विद्रधि रोग में भी न करें अर्थात् उन अपथ्य पदार्थों को त्याग दें ॥३७९

व्रणशोथ आदि में पथ्य

विम्लापनं रक्तमुक्तिरुपनाहो विपाटनम् ।
शोधनं रोपणं षष्ठं पुराणाः सितशालयः ॥ ३८० ॥
यवषिष्टकगोधूमा जाङ्गला मृगपक्षिणः ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विलेपी लाजमण्डं च कटुतैलं घृतं मधु ॥ ३८१ ॥
तिलं मसूरतुवरीमुद्गयूषश्च शर्करा ।
आषाढफलवार्ताकुककर्कोटकपटोलकम् ॥ ३८२ ॥
कारवेल्लं निम्बपत्रं वेत्राग्रं बालमूलकम् ।
सुनिषण्कशालिञ्चतण्डुलीयकवास्तुकम् ॥ ३८३ ॥
त्रिफला पनसं मोचं दाडिमं कटुकीफलम् ।
जीवन्ती सैन्धवं द्राक्षा स्वादुतिक्तकषायकाः ॥ ३८४ ॥
समस्तमेतदन्नं तु स्निग्धमुष्णं द्रवोत्तरम् ।
एषणं शमनं दाहः स्वेदनं बन्धनक्रिया ॥ ३८५ ॥
व्रणावचूर्णनं लेपो धूपनं पत्रधारणम् ।
उशीरबालव्यजनं चन्दनं तिललेपनम् ॥ ३८६ ॥
तप्तशीताम्बु कर्पूरं तथैव वैकृतापहम् ।
एतत् पथ्यं नरैः सेव्यं यथावस्थं यथामलम् ।
व्रणशोथे व्रणे सद्योव्रणे नाडीव्रणेऽपि च ॥ ३८७ ॥

विम्लापन (अंगुली, अंगूठा आदि से मसलने से व्रण को बैठाने के उपचार को विम्लापन कहते है), रक्तनिर्हरण, उपनाह, (पुल्टिस लगाना या बांधना), पक जाने पर उस पर चीरा लगाना, शोधन (पूय आदि को निकालना), रोपण (घाव भरने के उपाय) ये छः उपचार व्रण के कह दिये गये है । व्रण रोगी को खाने के लिये पुराने सफेद चावलों का भात दें, जौ, सांठी के चावल, गेहूँ, जांगल देश के निवासी पशु पक्षियों के मांस रस, विलेपी, लाजमण्ड (खीलों का माँड़), सरसों का तेल, घी, मधु, तिल, मसूर, अरहर, मूंग के यूष, चीनी, आषाढ़फल, (पलाशबीज), बैगन, ककोड़ा, परबल, करेला, नीम के पत्ते, वेत के अंकुर का अगला भाग, कोमल मूली, चौपतिया, शालिंच शाक, चौलाई, बथुआ, हरड़, बहेड़ा, आँवला, कटहल का फल, कच्चा केला, दाड़िम, कुटकी फल, जीवन्ती, सेंधानमक, मुनक्का, मधुर, तिक्त, कषाय रस वाले पदार्थ, ये सभी खाने के पदार्थ, स्निग्ध (स्नेह युक्त हों), उष्ण, पतले (पेयरूप में), हों । व्रणोपचार-एषणकर्म (घाव के भीतर कहीं पूय तो नहीं रह गया, उसे ढूंढना), दोषयुक्त व्रणों में दोषशमन कर्म, दाह, स्वेदन, पट्टी आदि बाँधना, व्रणरोपण के लिये अवचूर्णन (बुरकना), लेप, धूपनकर्म, व्रण का ऊपर से पत्तों से ढकदेना, खस के जल को छिड़ककर पंखा डुलाना, चन्दन लगाना, तिलों को पीसकर उसका लेप लगाना, गरम करके शीतल किये गये जल का उपयोग, कर्पूर चूर्ण का प्रयोग, व्रण विकृति नाशक उपचार, ये सब पथ्य हैं । दोष तथा स्थिति का विचार करके व्रणशोथ, व्रण, सद्योव्रण तथा नाड़ीव्रण में भी इनका प्रयोग मनुष्य करें ॥३८०-३८७ ॥

वक्तव्य— 'व्रणशोथ' इसका तात्पर्य है, जो शोथ पक जाने के बाद व्रण (घाव) का रूप धारण कर लेता है, उसे व्रणशोथ कहते हैं, सद्योव्रण उसे कहते हैं, जो तलवार, छुरी आदि के कटने से या हिंसक प्राणियों के काट देने से जो घाव हो जाता है । नाड़ीव्रण को सामान्य भाषा मे 'नासूर' कहते हैं । इसका बाहरी द्वार सूक्ष्म तथा भीतर की ओर अधिक विस्तार होता है ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

व्रणशोथ आदि में अपथ्य

नवानि धान्यानि तिलान् कलायान् माषान् कुलत्थान् कृशरान् हिमाम्भः
क्षीरेक्षुजातान् विविधान् विकारान् मद्यानि शाकानि च पत्रवन्ति ।३८८।
अजाङ्गलं मांसमसात्म्यमन्नं विदाहि विष्टम्भि गुरूणि चापि ।
कट्वम्लशीतं लवणं व्यवायमायासमुच्चैः परिभाषणं च ॥ ३८९ ॥
प्रियासमालोकनमह्नि निद्रां प्रजागरं चङ्क्रमणं नितान्तम् ।
सदा स्थितिं प्रागधिरोपणं च नस्यानि ताम्बूलमजीर्णता च ॥ ३९० ॥
प्रचण्डवातातपधूमवृष्टी रजोभयक्रोधवमिप्रहर्षान् ।
शोकं विरुद्धाशनमम्बुपानं तीक्ष्णोष्णरूक्षाणि विघट्टनं च ॥ ३९१ ॥
कण्डूयनं काष्ठनखादितोदं निरन्नभावं विषमोपचारम् ।
वैद्यश्चिकित्सन् व्रणशोथरोगं व्रणं च सद्योव्रणमामयं च ॥ ३९२ ॥
नाडीव्रणं चापि यशोभिलाषी विवर्जयेत् सन्ततमप्रमत्तः ॥ ३९३ ॥

सभी नये अन्न, तिल, मटर, उड़द, कुलथी, सभी प्रकार की खिचड़ियाँ, शीतल जल, दूध, के विकार-दही, मक्खन, घी, दधिकूर्चिका, तक्रकूर्चिका, खोया या मावा आदि, ईख के विकार रस, खाँड़, राब, गुड़, चीनी, मिश्री, सभी प्रकार के मद्य, पत्रशाक, अनूपदेशज प्राणियों के मांस, असात्म्य (जो अपने को अनुकूल न हो) ऐसा अन्न (आहार), विदाहकारक, कब्जकारक, देर में पचने वाले आहार द्रव्य, कडुए, खट्टे, शीतल, नमकीन, मैथुन, अधिक परिश्रम, अधिक जोर से बोलना, गमनीय स्त्रियों को देखना, दिन में सोना, रात्रि जागरण, अधिक घूमना, सदैव एक ही स्थान पर बैठे रहना, सदोष घाव के रहते ही रोषण कर्म करना, विविध प्रकार के नस्यों के प्रयोग, ताम्बूल सेवन, अजीर्ण का बना रहना, तेज हवा, धूप, धूम का सेवन, बरसते हुए पानी में बाहर भीगना, धूल का पड़ना, भय क्रोध, वमन, अधिक प्रसन्नता, शोक, संयोग, विरुद्ध पदार्थों का सवेन, अधिक जल पीना, तीक्ष्ण, उष्ण, रूक्ष पदार्थों का सेवन, किसी से टकराना, घाव को खुजलाना, लकड़ी तथा नाखून आदि को चुभाना, भूखे रहना (उपवास करना), विषम उपचार (कभी-कोई और कभी कोई उपचार करना), इस प्रकार अपथ्यों का निषेध करता हुआ जो वैद्य यश का अभिलाषी होकर चिकित्सा करता है, वह व्रणशोथ, व्रण, सद्योव्रण तथा नाड़ीव्रण रोग में सफलता प्राप्त करता है ॥ ३८८-३९३ ॥

भग्नरोग में पथ्य

शीताम्बुसेचनं पङ्कप्रदेहो बन्धनक्रिया ।
शालिप्रियङ्गुगोधूमा यूषो मुद्गसतीनयोः ॥ ३९४ ॥
नवनीतं घृतं क्षीरं तैलं मांसरसो मधु ।
पटोलं लशुनं शिग्रु पत्तूरो बालमूलकम् ॥ ३९५ ॥
द्राक्षा धात्री वज्रवल्ली लाक्षा यच्चापि बृंहणम् ।
तत् सर्वं भिषजा नित्यं देयं भग्नाय जानता ॥ ३९६ ॥

शीतल जल की धारा देना, शुद्ध कीचड़ का लेप लगाना, जोड़ को बैठाते हुए, खपची लगाकर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बाँधना, शालीधान्य, प्रियंगु, गेहूँ, आदि का भात, रोटी खाना, मूंग, मटर का यूष पीना, दूध, मक्खन, घी का सेवन, तेल का सेवन, मांसरस का पीना, मधु, परबल, लहसुन, सहजन की फलियाँ, शालिंच का शाक, कच्ची कोमल मूली, मुनक्का, आँवला, हड़जोड़ का लेप, लाख, शरीर को पुष्ट करने वाले खान-पान, ये सब योग्य चिकित्सक रोगी को सेवन करने के लिये दिलाये।। ३९४-३९६ ॥

भग्नरोग में अपथ्य

लवणं कटुकं क्षारमम्लं मैथुनमातपम् ।
व्यायामं च न सेवेत भग्नो रूक्षान्नमेव च ॥ ३९७ ॥

अधिक नमकीन, कड़ुए क्षारयुक्त तथा खट्टे रसवाले पदार्थों, मैथुन कर्म, धूप सेंकना, व्यायाम (अधिक परिश्रम वाले कार्य) तथा रूखे अन्नों का भग्नपुरुष (जिसकी अस्थि टूट गयी हो) सेवन न करे ॥ ३९७ ॥

भगन्दररोग में पथ्य

पक्के पुनः शस्त्रवह्निक्षारकर्म यथाविधि ॥ ३९८ ॥
सर्वेऽपि शालयो मुद्गा विलेपी जाङ्गलो रसः ।
पटोलं शिग्रु वेत्राग्रं पत्तूरो बालमूलकम् ॥ ३९९ ॥
तिलसर्षपयोस्तैलं तिक्तं वर्गो घृतं मधु ।
एतत्पथ्यं यथादोषं नरैः सेव्यं भगन्दरे ॥ ४०० ॥

आम (कच्चे) भगन्दर रोग में विरेचन करायें, लेप लगायें, लंघन करायें, रक्तमोक्षण अथवा जौंक लगायें। यदि इन उपचारों से ठीक हो जाय तो रोगी का सौभाग्य है। यदि भगन्दर में पाक हो गया हो तो शस्त्र से चीरा लगाकर उपचार करें, अग्निकर्म (दागें), क्षारकर्म का यथाविधि प्रयोग अभ्यास किया हुआ चिकित्सक (क्षारसूत्रों का प्रयोग) करें। इस स्थिति में रोगी को सभी प्रकार के शालीधान्यों, मूंग आदि दालों के यूषों का सेवन करायें, विलेपी, जांगल देश के प्राणियों के मांसरस, परबल, सहजन की फलियाँ, वेत की कली की कोपल, शालिंचशाक, कोमल मूली, तिल तेल, सरसों का तेल, सभी तिक्तपदार्थ, घी, मधु, ये पथ्य हैं। इसका दोषानुसार भगन्दररोग में मनुष्यों को सेवन करना चाहिये ॥ ३९८-४०० ॥

भगन्दर रोग में अपथ्य

विरुद्धान्यन्नपानानि विषमाशनमातपम् ।
व्यायामं मैथुनं युद्धं पृष्ठयानं गुरूणि च ॥
संवत्सरं परिहरेदपि रूढव्रणो नरः ॥ ४०१ ॥

परस्पर विरोधी खान-पान, विषम भोजन (कभी कम-कभी अधिक) करना, धूप सेंकना, व्यायाम (किसी प्रकार का भी अधिक शारीरिक परिश्रम) करना, मैथुन (स्त्री तथा पुरुष दोनों के लिये निषिद्ध है), युद्ध करना, पृष्ठयान हाथी, (घोड़ा, ऊटँ के पीठ की सवारी करना), देर में पचने वाले पदार्थ, इन सभी पदार्थों का भगन्दर का घाव भर जाने पर भी एक वर्ष तक परहेज करता रहे ॥४०१ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उपदंशरोग में पथ्य

छर्दिर्विरेको ध्वजमध्यनाडीवेधो जलौकापरिपातनं च ।
सेक: प्रलेपो ज्यवशालयश्च धन्वामिषं मुद्गरसो घृतानि ॥ ४०२ ॥
कठिल्लकं शिग्रुफलं पटोलं शालिञ्चशाकं नवमूलकं च ।
तिक्तं कषायं मधुकूपवारि तैलं च हन्यादुपदंशरोगम् ॥ ४०३ ॥

इस रोग के प्रारम्भ में ही वमन-विरेचन द्वारा सर्वप्रथम संशोधन करें तथा लिंग के मध्य की नाड़ी को काटकर रक्तस्राव करायें अथवा जौक लगाकर रक्त चूसने दें । उष्णजल का सेंक करें, दोपनाशक लेप लगायें, जौ की रोटियाँ, शालीधान्य का भात खाने को दें, मरुभूमि में विचरण करने वाले पशु-पक्षियों के मांस रस दें, शाकाहारियों को मूंग का यूष, घृतपान, करेला, सहजन की फली, परवल, शालिंच का शाक, कोमल मूली, तिक्त तथा कसैला रसवाले पदार्थ खाने को दें, मधु, कुएँ का जल तथा तेल इन पदार्थों के सेवन से उपदंश रोग शान्त हो जाता है ॥४०२-४०३ ॥

वक्तव्य— दूषित योनि तथा लिंग के सम्पर्क से उत्पन्न होने वाला उपदंश रोग अन्य संसर्गज आदि कारणों से उत्पन्न रोग से अधिक कष्टकारक होता है, अत: चिकित्सा के पूर्व इसका सही-सही पता कर लेना चाहिये । चरक ने इसे 'ध्वजभंग' संज्ञा दी है । देखें— च. चि. १३० ।१६५-१६९ ।, इसमें अधिकांश रोगी उपदंश के ही होते हैं, किन्तु वे अपनी इस भूल को बतलाने में हिचकिचाते हैं । यह एक संक्रामक एवं पापरोग है । रोगयुक्त स्त्री अथवा पुरुष के मूत्रस्थान पर मूत्रत्याग करने मात्र से भी नीरोग पुरुष रोगी हो जाता है अथवा हो सकता है । इंस प्रकार के अन्य कारणों से भी सावधान रहें । इन नियमों का पालन करना भी इस रोग में 'पथ्य' कहा गया है ।

उपदंशरोग में अपथ्य

दिवा निद्रां मूत्रवेगं गुर्वन्नं मैथुनं गुडम् ।
आयासमम्लं तक्रं च वर्ज्जयेदुपदंशवान् ॥ ४०४ ॥

दिन में सोना, मूत्र के वेग को रोकना, देर में पचनेवाले अन्नों (आहारों) का सेवन, मैथुन, गुड, अधिक परिश्रम करना, अम्लपदार्थों का सेवन तथा मट्ठा इनका सेवन उपदंशरोग वाला पुरुष न करे, ये सभी अपथ्य होते हैं ॥ ४०४ ॥

वक्तव्य— इस रोग में यदि लिंगपाक हो जाता है, तो वह पाकात्यय के कारण गलकर झड़ जाता है, इसी तरह योनि भी गलकर विकृत हो जाती है । अत: प्रारम्भ में सावधानी से चिकित्सा करालें । इसका बुरा परिणाम कभी सन्तान को भी भोगना पड़ जाता है । इस रोग के बाद होने वाला गठिया असाध्य होता है ।

शूकरोग में पथ्य

लेपो विरेकोऽसृङ्मोक्ष: सर्पि: पानं च शालय: ।
यवा जाङ्गलमांसानि मुद्गयूष: कठिल्लकम् ॥ ४०५ ॥
पटोलं शिग्रु कर्कोटं पत्तूरं बालमूलकम् ।
वेत्राग्रमाषाढफलं दाडिमं सैन्धवं वरा ॥ ४०६ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कूपोदकं गन्धसारः कस्तूरी हिमबालुका ।
तिक्तं कषायं तैलं च स्यात् पथ्यं शूकरोगिणाम् ॥ ४०७ ॥

रोगनाशक विविध प्रकार के लेप, विरेचन, सिरावेध द्वारा रक्त निकालना, घृतपान करना, शालीधान के चावल तथा जौ का भात एवं रोटी आदि के रूप में प्रयोग करना, जांगल देश के पशु-पक्षियों के मांस, मूंग का यूष, करेला, परबल, सहजन की फलियाँ, ककोड़ा, शालिंच शाक, कच्ची मूली, वेत के अंकुर का अगला भाग, उड़द, पलाश का फल, दाड़िम, सेंधानमक, वरा (हरड़, बहेड़ा, आँवला), कुएँ का जल, कपूर, कस्तूरी, शीतल बालू, तिक्त तथा कषायरस प्रधान पदार्थ, तेल ये सभी शूक रोगियों के लिये पथ्य होते हैं ॥ ४०५-४०७ ॥

शूकरोग परिचय— नपुंसकता को दूर करने के लिये तथा लिंग वृद्धि के लिये जिन लेपों का प्रयोग किया जाता है, उन्हें शूक कहते हैं । ये निर्दोष तथा सदोष भेद से दो प्रकार के होते हैं । सौम्य औषधियों के लेपों के प्रयोग सौम्य होते हैं। इसके विपरीत संखिया विष से निर्मित मल्लतैल, जमालगोटा, भिलावा आदि के तेल प्रायः हानिकार होते हैं । इनकी शान्ति के लिये जो चिकित्सा की जाती है, उसी में उक्त पथ्यों का प्रयोग किया जाता है ।

आजकल लिंगवृद्धि के लिये साँडा तथा बीरबहूटी के तेलों के प्रयोग किये जाते हैं । जलशूक विष वाला एक प्राणिविशेष होता है । इसका वर्णन श्रीभावमिश्र ने किया है । देखें— भावप्रकाश म.खं. ५३ वां अधिकार । शूकदोषज १८ रोग होते हैं । शार्ङ्गधर ने इसके २४ भेद माने हैं ।

विशेष पथ्य— 'हितञ्च सर्पिषःपानं पथ्यं चापि विरेचनम् । हितः शोणितमोक्षश्च यच्चापि लघु भोजनम् ॥' अर्थ स्पष्ट है ।

शूकरोग में अपथ्य

मूत्रवेगं दिवा निद्रां व्यायामं मैथुनं गुडम् ।
विदाहि गुरु तक्रं च शूकदोषामयी त्यजेत् ॥ ४०८ ॥

मूत्र के वेग को रोकना, दिन में सोना, व्यायाम (किसी प्रकार का शारीरिक परिश्रम), मैथुन, गुड़ का अधिक सेवन, विदाह कारक पदार्थ, देर में पचने वाले भक्ष्य पदार्थ, मट्ठा, शूकरोगी इन्हें छोड़ दे ॥ ४०८ ॥

कुष्ठरोग में पथ्य

पक्षात् पक्षाच्छर्दनानि मासान्मासाद्विरेचनम् ।
नस्यं त्र्यहात्र्यहान्मासि षष्ठे षष्ठेऽस्रमोक्षणम् ॥ ४०९ ॥
सर्पिर्लेपश्चिरोत्पन्ना यवगोधूमशालयः ।
मुद्गाढकीमसूराश्च माक्षिकं जाङ्गलामिषम् ॥ ४१० ॥
आषाढफलवेत्राग्रं पटोलं बृहतीफलम् ।
काकमाची निम्बपत्रं लशुनं हिलमोचिका ॥ ४११ ॥
पुनर्नवा मेषशृङ्गं चक्रमर्ददलानि च ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भल्लातकं पक्वतालं खदिरश्चित्रको वरा ॥ ४१२ ॥
जातीफलं नागपुष्पं कुंकुमं प्रतनं हविः ।
कोषातकी करञ्जोऽपि तिलसर्षपनिम्बजम् ॥ ४१३ ॥
तैलं तथेङ्गुदोत्थं च लघून्यन्नानि यानि च ।
स्नेहाः सरलदेवाह्वशिंशपागुरुसम्भवाः ॥ ४१४ ॥
मूत्राणि गोखरोष्ट्राश्वमहिषीजनितानि च ।
कस्तूरिका गन्धसारस्तिक्तानि क्षारकर्म च ॥
यथादोषं समस्तानि पथ्यान्येतानि कुष्ठिनाम् ॥ ४१५ ॥

पन्द्रह-पन्द्रह दिन में कफ दोष की निवृत्ति के लिये वमन कराना और एक-एक महीने में उदर शुद्धि के लिये विरेचन कराना, तीन-तीन दिन में नस्य प्रयोग करना, छः-छः मास में सिरावेध द्वारा रक्तमोक्षण, घृतपान, लेप प्रयोग, सालभर पुराने जौ, गेहूँ, शालीधान्य के चावल, मूंग, अरहर, मसूर, मधु, जांगल प्राणियों के मांस, पलाश का फल, वेत्रांकुर, परबल, बड़ी कटेरी का फल, मकोय, नीम के कोमल पत्ते, लहसुन, हिलमोचिका (हरहुच), पुनर्नवा, काकड़ासिंगी, चकवड़ के पत्ते, भिलावा, ताड़का पका हुआ फल, खैरसार, चित्रक की त्वचा, वरा (हरड़, बहेड़ा, आँवला), जायफल, नागकेशर, केशर, पुराना घी, घिया तोरई, करंजफल, तिल, सरसों, नीम, इंगुदी इनके तेल और जो सुपाच्य अन्न (आहार योग्य पदार्थ) हों, चीड़, देवरारु, शीशम, अगुरु के स्नेह, गाय, गधी, ऊंटिनी, घोड़ी, भैंस के मूत्र, कस्तूरी, चन्दन सभी तिक्तरस प्रधान पदार्थ, क्षारकर्म, दोषानुसार ये सभी द्रव्य कुष्ठ रोगियों के लिये पथ्य कहे गये हैं ॥ ४०९-४१५ ॥

कुष्ठरोग में अपथ्य

पापानि कर्माणि कृतघ्नभावं निन्दां गुरूणां गुरुधर्षणं च ।
विरुद्धपानाशनमह्नि निद्रां चण्डांशुतापं विषमाशनं च ॥ ४१६ ॥
स्वेदं रतं वेगनिरोधमिक्षुं व्यायाममम्लानि तिलांश्च माषान् ।
द्रवान्नगुर्वन्ननवान्नभुक्तिं विदाहि विष्टम्भि च मूलकानि ॥ ४१७ ॥
सह्याद्रिविन्ध्याद्रिसमुद्भवानां तरङ्गिणीनामुदकानि चापि ।
आनूपमांसं दधि दुग्धमद्यं गुडं च कुष्ठामयिनस्त्यजेयुः ॥४१८ ॥

सभी प्रकार के पाप (अशुभ) कर्म, (यह निदान परिवर्जन रूप पथ्य है), किये गये उपकार को न मानना, गुरुजनों की निन्दा, गुरुजनों को अपमानित करना, विरुद्ध खान-पान, दिन में सोना, तेज धूप का सेवन करना, विषमाशन, स्वेदनकर्म, मैथुन, अधारणीय वेगों को रोकना, ईख तथा इसके विकारों का सेवन करना, सभी प्रकार के शारीरिक परिश्रम, अम्लरस प्रधान पदार्थों का सेवन, तिल, उड़द, पतले पेयों, देर में पचने वाले आहारों, नये अन्नों का, खाना, विदाह तथा विष्टम्भ (कब्ज) कारक पदार्थों का सेवन, मूली सह्य तथा विन्ध्यपर्वत से निकलने वाली नदियों के जल, अनूपदेशज प्राणियों के मांस, दही, दूध, मद्य, तथा गुड़, इन सब पदार्थों का सेवन कुष्ठ रोगी न करें ॥४१६-४१८ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विशेष त्याज्य द्रव्य— कुष्ठरोग में खट्टे, नमकीन तथा कड़ुए खान-पान हितकर नहीं होते। दूध, दही, आनूपदेश के प्राणियों के मांस, तिल तथा उड़द इनका विशेष रूप से त्याग करें।

शीतपित्तादि में पथ्य

छर्दिर्विरेचनं लेपोऽसृङ्मोक्षो जीर्णशालयः ।
जाङ्गलैरामिषैर्मुद्गैः कुलत्थैर्वा कृता रसाः ॥ ४१९ ॥
कर्कोटकं कारवेल्लं शिग्रुमूलकपोतिकाः ।
शालिञ्चशाकं वेत्राग्रं दाडिमं त्रिफला मधु ॥ ४२० ॥
कटुतैलं तप्तनीरं पित्तश्लेष्महराणि च ।
कटुतिक्तकषायाणि सर्वाणीति गणः सखा ॥
शीतपित्तोदर्दकोठरोगिणां स्याद्यथामलम् ॥ ४२१ ॥

वमन, विरेचन, रोगाक्रान्त स्थान पर लेप, सिरावेध द्वारा रक्त निकालना या जौंक लगाना, पुराने शालीधान्यों का सेवन, जांगलदेशीय प्राणियों के मांस, मूंग, कुलथी इनके यूष, ककोड़ा, (खेखसा), करेला, सहजन की फलियाँ, मूली, पोई का शाक, शालिंच का शाक, वेत का अग्रभाग, दाड़िम, हरड़, आँवला, मधु, सरसों का तेल, गंरम पानी, पित्त तथा कफनाशक औषधद्रव्य, कटु, तिक्त, कषाय रस प्रधान सभी द्रव्य, शीतपित्त, उदर्द तथा कोठ रोग में दोषानुसार ये द्रव्य पथ्य होते हैं ॥४१९-४२१ ॥

शीतपित्तादि में अपथ्य

क्षीरेक्षुजाता विविधा विकारा मत्स्योदकानूपभवामिषाणि ।
नवीनमद्यं वमिवेगरोधः प्राग्दक्षिणाशापवनोऽह्नि निद्रा ॥ ४२२ ॥
स्नानं विरुद्धाशनमातपं च स्निग्धं तथाम्लं मधुरं व्यवायः ।
गुर्वन्नपानानि च शीतपित्तकोठामयोदर्दवतां विषाणि ॥ ४२३ ॥

दूध, दही, घी, मक्खन, खोआ (मावा), छेना आदि, ईख का रस, राब, खॉंड़, गुड़, चीनी मिश्री आदि, सभी प्रकार की मछलियाँ, जलीय प्राणियों तथा अनूपदेशीय प्राणियों के मांस, नयी शराब, वमन तथा अधारणीय वेगों को रोकना, पूर्व तथा दक्षिण से बहने वाली हवा का सेवन, दिन में सोना, स्नान करना, विरुद्ध पदार्थों का सेवन, धूपसेंकना, स्नेहयुक्त तथा स्नेह में पकाये गये पदार्थ (व्यञ्जन), अम्ल तथा मधुर रस प्रधान सभी भोज्य पदार्थ, मैथुन, देर में पचने वाले खान-पान, ये सभी शीतपित्त, कोठ तथा उदर्द रोग वालों के लिये विष के समान अपथ्य (अहितकर) होते हैं ॥४२२-४२३ ॥

अम्लपित्तरोग में पथ्य

ऊर्ध्वगे वमनं पूर्वमधोगे तु विरेचनम् ।
द्वयोरन्नाशनं पश्चान्निरूहाश्च हि शालयः ॥ ४२४ ॥
यवगोधूममुद्गाश्च पुराणा जाङ्गलो रसः ।
जलानि तप्तशीतानि शर्करामधुसक्तवः ॥ ४२५ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कर्कोटकं कारवेल्लं पटोलं हिलमोचिका ।
वेत्राग्रं वृद्धकूष्माण्डं रम्भापुष्पं च वास्तुकम् ॥ ४२६ ॥
कपित्थं दाडिमं धात्री तिक्तानि सकलान्यपि ।
पानान्नानि समस्तानि कफपित्तहराणि च ॥
अम्लपित्तामये नित्यं सेवितव्यानि मानवैः ॥ ४२७ ॥

ऊपर की ओर को आने वाले अम्लपित्त के वेग में सबसे पहले वमन कराना चाहिये और नीचे की ओर को आने वाले इसके वेग में विरेचन, दोनों ही स्थितियों में रोगी को भोजन कराकर उसके बाद निरूहण बस्तिका प्रयोग करायें। भोजन में पुराने शालीधान्य के चावल, जौ, गेहूँ, मूंग, भात, रोटी, यूष के रूप में दें । जांगल देश के पशु-पक्षियों का मांस रस, खौलाकर शीतल किया हुआ जल, चीनी, मधु सत्तू, कर्कोटक (खेखसा), करेला, परबल, हिलमोचिका (हुरहुर), वेत के अंकुर का अग्रभाग, पुराना पेठा, केले के फूल, बथुआ, कैथ, दाड़िम, आँवला, तिक्त रस प्रधान सभी खान-पान तथा सभी कफनाशक औषध, आहार, विहार, इनका अम्लपित्तरोग में मनुष्यों को सेवन करना चाहिये ॥ ४२४-४२७ ॥

अम्लपित्तरोग में अपथ्य

नवान्नानि विरुद्धानि पित्तकोपकराणि च ।
वेगरोधं तिलान्माषान्कुलत्थांस्तैलभक्षणम् ॥ ४२८ ॥
अविदुग्धं च धान्याम्लं लवणाम्लकटूनि च ।
गुर्वन्नं दधि मद्यं च वर्ज्जयेदम्लपित्तवान् ॥ ४२९ ॥

सभी प्रकार के नये अन्न, परस्पर विरुद्ध भक्ष्य-भोज्य-पेय पदार्थ, पित्तदोष प्रकोपक सभी पदार्थ, अधारणीय वेगों को रोकना, तिल, उड़द, कुलथी, तेल सेवन, भेड़ का दूध, काँजी, नमकीन, खट्टे, कडुए रस प्रधान पदार्थ, देर में पचने वाले भक्ष्यपदार्थ, दही, मद्य, इन सबको अम्लपित्त का रोगी पुरुष छोड़ दे, क्योंकि ये अपथ्य होते हैं ॥ ४२८-४२९ ॥

विसर्परोग में पथ्य

विरेको वमनं लेपो लङ्घनं रक्तमोक्षणम् ।
पुराणा यवगोधूमकंगुषष्टिकशालयः ॥ ४३० ॥
मुद्गा मसूराश्चणकास्तुवर्यो जाङ्गलो रसः ।
नवनीतं घृतं द्राक्षा दाडिमं कारवेल्लकम् ॥ ४३१ ॥
वेत्राग्रं कुलकं धात्री खदिरो नागकेशरम् ।
लाक्षा शिरीषः कर्पूरं चन्दनं तिललेपनम् ॥ ४३२ ॥
हीबेरकं मुस्तकं च तिक्तानि सकलानि च ।
यथादोषमिदं पथ्यं सेवितव्यं विसर्पिभिः ॥ ४३३ ॥

विरेचन, वमन, रोग स्थान पर लेप लगाना, लंघन करना, सिरावेध कराकर रक्तमोक्षण करना, एक वर्ष पुराने जौ, गेहूँ, कंगुनी, सांठी के चावल, मूंग, मसूर, चना, अरहर, ये दालें, जांगलदेश के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

निवासी पशु-पक्षियों का मांस रस, मक्खन, घी, मुनक्का, दाड़िम, करेला, वेत की कली का अगला कोमल भाग, परबल, आँवला, खैरसार, नागकेशर, लाख, शिरीष, कपूर, चन्दन, तिलों को पीसकर लेप करना, हाऊबेर, नागरमोथा, सभी तिक्तरस प्रधान पदार्थ, इन सब पथ्यों का प्रयोग दोषों का विचार करके तदनुसार करें ॥४३०-४३३ ॥

अन्यत्र पथ्यापथ्य चर्चा— तिक्त वर्ग के सभी द्रव्य, वे सभी खान-पान जो विदाहकारक न हों, सभी रक्तशोधक द्रव्यों तथा विधियों का प्रयोग, चन्दन का लेप लगाना तथा जो घबड़ाहट कारक न हो ऐसे सभी आहार-विहार ये परम पथ्य होते हैं। इनके विपरीत सभी पदार्थ अपथ्य होते हैं और वे रोग को बढ़ाकर कष्ट देते हैं।

विसर्परोग में अपथ्य

व्यायाममह्नि शयनं सुरतं प्रवातं क्रोधं शुचं वमनवेगमसूयनं च ।
शाकं विरुद्धमशनं दधिकूर्च्चिकां च सौवीरमासुतमनेकविधं किलाटम् ।४३४।
गुर्वन्नपानमखिलं लशुनं कुलत्थान्माषांस्तिलान् सकलमांसमजाङ्गलं च ।
स्वेदं विदाहिलवणाम्लकटूनि मद्यं नार्कप्रभामपि विसर्पगदी भजेत ।४३५।

सभी प्रकार के व्यायाम, दिन में सोना, मैथुन, पुरवैया हवा का सेवन, क्रोध, शोक, वमन के वेग को रोकना, किसी की असूया (दूसरे के गुणों को दोषपूर्ण दृष्टि से देखना) करना, सभी प्रकार के पत्रशाक, संयोगविरुद्ध पदार्थों को खाना, दधिकूर्चिका (दूध के साथ दही को पकाकर बनाया गया पदार्थ), सौवीर (काँजी), अनेक प्रकार के आसव, किलाट (फटे हुए दूध का गाढ़ा भाग) देर में पचने वाले सभी प्रकार के खान-पान, लहसुन, कुलथी, उड़द, तिल, जौ, जांगल देश में जो उत्पन्न न हुए हों ऐसे पशु-पक्षियों के मांस, स्वेदन, विदाहकार पदार्थ, नमकीन, खट्टे तथा कडुए, रसवाले पदार्थ, मद्य तथा धूप (घाम) का सेवन करना, विसर्परोगी उक्त सभी का सेवन न करे ॥ ४३४-४३५ ॥

सामान्य परिचय– इस विसर्परोग में एक स्थान पर कुछ छोटी-छोटी फुन्सियाँ निकलती हैं, कुछ समय बाद वे इधर उधर फैलने लगती हैं, स्पर्श मात्र से फूट जाती हैं उनका स्राव जहाँ लगता है, वहाँ वे फैल जाती हैं। चरक ने कक्षा नाम के एक रोग की चर्चा की है। इसका आकार यज्ञोपवीत के सदृश होता है। इसे भी विसर्प मानना चाहिये। इस पर शास्त्रीयचिकित्सा से तो लाभ होता ही है, मन्त्र का प्रयोग भी इसमें सफल देखा गया है।

आयुर्वेद में निदानपरिवर्जन चिकित्सा का एक अंग है, यहाँ हम च. चि. २१ ।१६-२१ की ओर पाठकों का ध्यान आकृष्ट कर रहे हैं। इन पथ्यों में जिन भावों का वर्णन किया गया है, उन-उन का त्याग करना भी पथ्य सेवन ही है।

विस्फोटक रोग में पथ्य

विरेचनं छर्दिविलेपलङ्घनं पुरातनाः षष्टिकशालयो यवाः ।
मुद्गा मसूराश्चणका मकुष्ठका धन्वामिषं गव्यघृतं कठिल्लकम् ॥ ४३६ ॥
वेत्राग्रमाषाढफलं पटोलकं ज्योतिष्मती निम्बदलानि चन्दनम् ।
तैलं सिताभ्रं तिललेपनं घनं बालं च विस्फोटगदं विनाशयेत् ॥ ४३७ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विरेचन, वमन, विस्फोट के स्थान पर शमन लेप या दारण लेप, लंघन, एक वर्ष पुराने सांठी के चावल, जौ, मूंग, मसूर, चना, मोठ, मरुभूमि के पशु-पक्षियों के मांस, गाय का घी, करेला, वेत की कली का अगला भाग, पलाशबीज, परबल, मालकाँगनी, नीम के सुकोमल पत्ते, लाल चन्दन, तिल, तेल, कपूर, तिल का लेप, नागरमोथा, नेत्रबाला, ये सब विस्फोटनाशक पथ्य हैं ॥ ४३६-४३७ ॥

अन्यत्र पथ्य चर्चा– पुराने शाली चावल, जौ, मूंग, मसूर, अरहर, ये अन्न विस्फोट रोग में हितकर होते हैं, ऐसा प्राचीन मुनियों ने कहा है।

विस्फोट परिचय– विस्फोट को तथा मसूरिका को सामान्य बोलचाल में बड़ी तथा छोटी माता कहते हैं। इससे भी छोटी माता एक और होती है, जिसें आयुर्वेद में 'रोमान्तिका' या 'खसरा' कहते हैं। इनकी चिकित्सा में विशेष रूप से लोकाचार, देशाचार तथा कुलाचारों का आश्रय लिया जाता है। आधुनिक विचारधारा के लोग इसे नहीं मानते। ये रोग प्रायः वालकों को होते हैं, कभी कभी बड़ी अवस्था वालों में भी देखे जाते हैं।

विस्फोटक रोग में अपथ्य

स्वेदं व्यवायं व्यायामं क्रोधं गुर्वन्नमातपम् ।
वमिवेगं पत्रशाकं प्रवातं स्वपनं दिवा ॥ ४३८ ॥
ग्राम्यौदकानूपमांसं विरुद्धान्यशनानि च ।
तिलान् माषान् कुलत्थांश्च लवणाम्लकटूनि च ॥
विदाहि रूक्षमुष्णं च विस्फोटी परिवर्जयेत् ॥ ४३९ ॥

स्वेदन, मैथुन, व्यायाम, क्रोध, देर में पचने वाले खान-पान, धूप सेंकना, वमन के वेग को रोकना, सभी प्रकार के पत्रशाक, अधिक हवा का सेवन, दिन में सोना, ग्राम्य (पालतू), औदक (जल में रहने वाले), अनूपदेशज प्राणियों के मांस, संयोग विरुद्ध खान-पान, तिल, उड़द, कुलथी, नमकीन, खट्टे, कड़ुए रस वाले पदार्थ, विदाहकारक, रूक्षताकारक, उष्ण, इस प्रकार के आहार-विहार को विस्फोट रोगी त्याग दें ॥ ४३८-४३९ ॥

मसूरिकारोग में पथ्य

पूर्वं लङ्घनवान्तिरेचनसिरावेधाः शशाङ्कोज्ज्वला
जीर्णाः षष्टिकशालयोऽपि चणका मुद्गा मसूरा यवाः ।
सर्वेऽपि प्रतुदाः कपोतचटका दात्यूहक्रौञ्चादयो
जीवञ्जीवशुकादयोऽपि कुलकं काठिल्लमाषाढकम् ॥ ४४० ॥
कर्कोटं कदलं च शिग्रु रुचकं द्राक्षाफलं दाडिमं
मेध्यं बृंहणमन्नपानमखिलं कोलानि मांसो रसः ।
अक्ष्णोः सेकविधौ गवेधुमधुकोद्भूतं सुशीतोदकं
शम्बूकोदरकोषनीरमपि वा कर्पूरचूर्णानि वा ॥ ४४१ ॥
पक्को मुद्गरसोऽपि जाङ्गलरसः शालिञ्चशाकं घृतं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

निर्गुण्डीदलयक्षधूपविहितो धूपो मृदुर्युक्तितः ।
शश्वद्गोमयभस्मगुण्डनमथोऽशुष्केशिलापिष्टयो-
रालेपः पिचुमर्दपत्रनिशयोः शेषे व्रणोक्ताः क्रियाः ॥ ४४२ ॥
इत्थं सर्वदशाविभागविहितं पथ्यं यथादोषतः ।
संयुक्तं मुदमातनोति नितरां नृणां मसूरीगदे ॥४४३ ॥

मसूरिका रोग में सबसे पहले लंघन, फिर वमन, उसके बाद विरेचन तब शिरावेध (ये सभी कर्म बालकोचित नही हैं।) ये कर्म करें। चन्द्रमा के सदृश उज्ज्वल, पुराने सांठी के चावल, चना, मूंग, मसूर, जौ अन्न, सभी प्रकार के प्रतुद तथा कबूतर, गौरैया, दात्यूह (जलकाक), क्रौञ्च, चकोर, तोता, आदि पक्षियों के मांस, परबल, करेला, पलाश के बीज, ककोड़ा, केला, सहिजन की फलियाँ, बिजौरा नीबू, मुनक्का, अनार, बुद्धि तथा शरीरबर्धक सभी प्रकार के खान-पान, बेर, मांस रस (पाठभेद-'माषो रसः'– उड़द का जूस), आँखों को सेकने के लिये गरहेडुआ तथा मुलेठी का शीतल जल का सेचन, अथवा शंख के भीतर रहने वाले क्रिमि के रस का सेचन या कपूर के चूर्ण को बुरकना, पकी हुई मूंग की दाल का रस, जांगलदेश के प्राणियों का मांस रस, शालिंच का शाक, घी, मेउड़ी की पत्ती, राल तथा गुग्गुल इनके मिश्रण से निर्मित मृदु धूप का युक्ति पूर्वक प्रयोग करना, पूययुक्त मसूरिका में सुखाकर जलाये गये गोबर की भस्म को पत्थर से पीस कर लगाना, नीम के पत्तों तथा हल्दी को पत्थर पर पीसकर लेप लगाना, इनके अतिरिक्त शेष चिकित्सा व्रण शोधन-रोपण की भाँति करें, इस प्रकार सभी दशाओं में दोषानुसार पथ्य का वर्णन यहाँ कर दिया है। इनका समुचित प्रयोग करने से मसूरी रोगी को सुख मिलता है ॥४४०-४४३ ॥

अन्यत्र पथ्य चर्चा– मसूरी रोग से पीड़ित रोगी को सूखे, साफ, सुथरे घर में रखें, वह भारी, गरम वस्त्रों को ओढ़े, शीतल वायु, जल, आग तथा धूप सेंकना, इनको छोड़ दे। स्त्रीसहवास, दिन में सोना, इधर-उधर जाना, रात में जागना, थोड़े गुनगुने जल से स्वेदन करने से रोमान्ती नामक ज्वर शान्त हो जाता है, शेष पूर्ववत्।

मसूरिकारोग में अपथ्य

रतं स्वेदं श्रमं तैलं गुर्वन्नं क्रोधमातपम् ।
दुष्टाम्बु दुष्टपवनं विरुद्धान्यशनानि च ॥ ४४४ ॥
निष्पावमालुकं शाकं लवणं विषमाशनम् ।
कट्वम्लं वेगरोधं च मसूरीगदवांस्त्यजेत् ॥ ४४५ ॥

मैथुन, स्वेदन, सभी प्रकार का परिश्रम, तेलों का सेवन, देर में पचने वाले सभी प्रकार के खान-पान, क्रोध करना, धूप सेंकना, दूषित जल तथा दूषित वायु का सेवन, संयोग विरुद्ध खान-पान, उबले हुए धान्य, आलू आदि कन्द शाक, सभी पत्रशाक, सभी नमक, विषम भोजन, कटु तथा रस प्रधान भोज्य पदार्थ, मल-मूत्र आदि के वेगों को रोकना, मसूरिका रोग से पीड़ित पुरुष इन द्रव्यों का त्याग करें ॥ ४४४-४४५ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

क्षुद्ररोगों में पथ्यापथ्य

क्षुद्ररोगेषु सर्वेषु नानारोगानुकारिषु ।
दोषान् दूष्यानवस्थां च निरीक्ष्य मतिमान् भिषक् ॥ ४४६ ॥
तस्य तस्य च रोगस्य पथ्यापथ्यानि सर्वशः ।
यथादोषं यथादूष्यं यथावस्थं च कल्पयेत् ॥ ४४७ ॥

सभी प्रकार के क्षुद्र रोगों में जो अनेक प्रकार के रोगों से मिलते-जुलते जैसे लगते हैं, ऐसे रोगों में दोषों (वात आदि), दूष्यों (रस, रक्त आदि) को तथा उनकी वर्तमान स्थिति को बुद्धिमान् चिकित्सक विचार करके जिस-जिस दोष-दूष्य के प्रकोप से जो रोग उत्पन्न हुआ हो, उस दोष तथा दूष्य की स्थिति को समझकर सभी के पथ्य एवं अपथ्य की कल्पना कर लेनी चाहिये ॥ ४४६-४४७ ॥

अन्यत्र पथ्यापथ्य चर्चा— जो पदार्थ वातदोष को अनुलोम करते हैं, जो मल-मूत्र की गति को व्यवस्थित करते हैं, रक्त का संशोधन करने में समर्थ हैं और जो तीनों दोषों का शमन करने में समर्थ है। इस प्रकार के सभी द्रव्यों का क्षुद्ररोगों में पथ्य रूप में प्रयोग करना चाहिये। इनके विपरीत अपथ्य होते हैं, अतः उन्हें छोड़ दें ।

वक्तव्य— जिन रोगों को क्षुद्ररोगों की परिधि में बांधा गया है, वे सचमुच सभी क्षुद्र हैं, ऐसा मानकर नहीं चलना चाहियें। दूसरी बात रोग, अग्नि तथा शत्रु को कभी छोटा न समझें, पीड़ा की दृष्टि से रोग भले ही तर-तम दृष्टि से छोटे कहे जा सकते हैं, किन्तु यह रोग छोटा है, समझकर उसकी उपेक्षा कदापि न करें। इस वर्गीकरण में अग्निरोहिणी तथा विदारिका जैसे भयावह रोग भी परिगणित हैं।

मुखरोगों में पथ्य

स्वेदो विरेको वमनं गण्डूषः प्रतिसारणम् ।
कवलोऽसृक्स्रुतिर्नस्यं धूमः शस्त्राग्निकर्मणी ॥ ४४८ ॥
तृणधान्यं यवा मुद्गाः कुलत्था जाङ्गलो रसः ।
बृहत्प्रोष्ठी कारवेल्लं पटोलं बालमूलकम् ॥ ४४९ ॥
कर्पूरनीरं ताम्बूलं तप्ताम्बु खदिरो घृतम् ।
कटुतिक्तं च वर्गोऽयं मित्रं स्यान्मुखरोगिणाम् ॥ ४५० ॥

स्वेदन, विरेचन, वमन, गण्डूष, प्रतिसारण (नमक अथवा सोंठ, मरिच, पीपल, आदि कटु द्रव्यों से जो व्रण को घिसा जाता है, इस क्रिया को प्रतिसारण कहते है) कवल, रक्तनिर्हरण, नस्य, धूमपान, शस्त्रकर्म, अग्निकर्म (दागना), तृणधान्य, (साँवा आदि), जौ, मूंग, कुलथी, जांगलदेशीय प्राणियों के मांस रस, बड़ी मछली, करेला, परबल, कोमल मूली, कपूर घुला हुआ जल, पान, गरमपानी, कत्था, घी, कटु तथा तिक्तरस वाले पदार्थ ये सब मुख रोगवालों के मित्र (पथ्य) होते हैं ॥ ४४८-४५० ॥

मुखशरीर परिचय— दोनों होंठ, दातँ, दन्तमूल (मसूड़े), जीभ, तालु, सम्पूर्ण गला के अवयव, इस प्रकार मुख के सात अवयव होते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कवलग्रह— मुख में कवल को धारण करना, कवलग्रह, में द्रवद्रव्य उतना ही मुख में डाला जाता है, जिसे मुख के भीतर इधर-उधर हिलाया घुमाया जा सके। इसमें कल्क द्रव्यों का उपयोग किया जाता है। इसकी सामान्य मात्रा एक कर्ष मानी गयी है।

गण्डूष— इसके प्रयोग में इतना द्रव पदार्थ मुख के भीतर भर लिया जाता है, वह मुख के भीतर घुमाया नहीं जा सकता। उक्त कवल-गण्डूष प्रयोग भेद से चार प्रकार के होते हैं। यथा १. स्नैहिक, २. शमन. ३. शोधन और ४. रोपण। विशेष विधान आकरग्रन्थों में देखें।

मुखरोगों में अपथ्य

दन्तकाष्ठं स्नानमम्लं मत्स्यमानूपमामिषम् ।
दधिक्षीरं गुडं माषं रूक्षान्नं कठिनाशनम् ॥ ४५१ ॥
अधोमुखेन शयनं गुर्वभिष्यन्दकारि च ।
मुखरोगेषु सर्वेषु दिवा निद्रां विवर्जयेत् ॥ ४५२ ॥

दातून करना, स्नान करना, अम्ल रस प्रधान पदार्थों का सेवन, मछली भक्षण, अनूपदेशीय प्राणियों का मांस खाना, दूध, दही, गुड़, उड़द, रूक्षताकारक आहारों का सेवन, कठोर अन्न (चना आदि चबाकर) खाना, नीचे की ओर मुख लटका कर सोना, गुरु पदार्थ, अभिष्यन्दकारक पदार्थों का खाना, दिन में सोना इन्हें मुख रोगों में अपथ्य समझकर छोड़ दें ॥ ४५१-४५२ ॥

अन्यत्र पथ्यापथ्य चर्चा— जो खान-पान शीघ्र पच जाय, अग्निवर्धक हो तथा जो व्रण-विकार नाशक हो उसे मुख रोग में भी पथ्य कहा गया है, इसके विपरीत सभी अपथ्य हैं।

कर्णरोगों में पथ्य

स्वेदो विरेको वमनं नस्यं धूमः सिराव्यधः ।
गोधूमाः शालयो मुद्गा यवाश्च प्रतनं हविः ॥ ४५३ ॥
लावो मयूरो हरिणस्तित्तिरिर्वन्यकुक्कुटः ।
पटोलं शिग्रु वार्त्ताकं सुनिषण्णं कठिल्लकम् ॥ ४५४ ॥
रसायनानि सर्वाणि ब्रह्मचर्यमभाषणम् ।
उपयुक्तं यथादोषमिदं कर्णामयं हरेत् ॥ ४५५ ॥

स्वेदन, विरेचन, वमन, नस्य, धूमपान, सिरावेध, गेहूँ, शालीधान्य, मूंग, जौ, पुराना घी, लवा पक्षी, मोर, हरिण, तीतर, जंगली मुर्गा, परबल, सहजन की फलियाँ, बैंगन, चौपतिया, करेला, सभी रसायन जो रोगनाश करके यौवन प्रदान कारक हों, ब्रह्मचर्य का पालन (विशेष कर रुग्णावस्था में), मौन रहना, उक्त पथ्यों का प्रयोग दोषानुसार करने से सभी प्रकार के कान के रोग शान्त हो जाते हैं ॥ ४५२-४५५ ॥

वक्तव्य— स्वेदन से सिरावेध तक के कर्म शरीरशोधन के लिये महत्त्वपूर्ण होते हैं। स्वेदन कराने के बाद वमन-विरेचन कराने से शरीरवयवों में सटा हुआ श्लेष्मा (कफ) पिघल कर बाहर निकल जाता है। सिरावेध से दूषितरक्त निकल जाता है। शल्यचिकित्सा में सिरावेध को आधी चिकित्सा कहा गया है, इसी प्रकार बस्ति चिकित्सा भी है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कर्णरोगों में अपथ्य

विरुद्धान्यन्नपानानि वेगरोधं प्रजल्पनम् ।
दन्तकाष्ठं शिरः स्नानं व्यायामं श्लेष्मलं गुरु ॥
कण्डूयनं तुषारं च कर्णरोगी परित्यजेत् ॥ ४५६ ॥

संयोग विपरीत खान-पान, अधारणीय मल-मूत्र आदि के वेगों को रोकना (देखें–विशेष परिचय च.सू ७ सम्पूर्ण), अधिक या जोर-जोर से बोलना, दातून करना, सिरसहित नहाना, व्यायाम, कफवर्धक तथा गुरु पदार्थों का सेवन, कान को खुजलाना, वर्फ का सेवन कान का रोगी न करे ॥४५६ ॥

वक्तव्य— कान को खुजलाते समय लोहा, ताँबा, चाँदी, आदि की सलाइयों का प्रयोग सुखद समझा जाता है, किन्तु इसमें थोड़ी सी भी असावधानी घातक हो जाती है, अपने से खुजलाने में हाथ सुख-दुखः के अनुभव करता हुआ प्रवृत्त होता है, यही कार्य जब हम दूसरे को सौंप देते हैं तो अधिक हानि होने की सम्भावना हो सकती है, यह प्रायोगिक विषय है । शिरःस्नानम्– इसका आशय है, कहीं कान में पानी न चला जाय ।

नासारोगों में पथ्य

स्थितिर्निर्वातनिलये प्रगाढोष्णीषधारणम् ।
गण्डूषो लङ्घनं नस्यं धूमच्छर्दिः सिराव्यधः ॥ ४५७ ॥
कटुचूर्णं घ्राणरन्ध्रे निक्षिप्यान्तः प्रवेशनम् ।
स्वेदः स्नेहः शिरोऽभ्यङ्गः पुराणा यवशालयः ॥ ४५८ ॥
कुलत्थमुद्गयोर्यूषो ग्राम्यजाङ्गलजा रसाः ।
वार्त्ताकुं कुलकं शिग्रुं कर्कोटं बालमूलकम् ॥ ४५९ ॥
लशुनं दधि तप्ताम्बु वारुणी च कटुत्रयम् ।
कट्वम्ललवणं स्निग्धमुष्णं लघु च भोजनम् ॥
नासारोगे पीनसादौ सेव्यमेतद् यथामलम् ॥ ४६० ॥

ऐसे घर में निवास करना जहाँ हवा का झोंका सीधा न जाता हो, भारी पगड़ी को धारण करना, गण्डूष, लंघन, नस्य, धूमपान, वमन, सिरावेध, कटुद्रव्यों (त्रिकटु आदि) के चूर्णों को नासिका के छिद्र में डालकर साँस द्वारा ऊपर को खींचना, स्वेदन, स्नेहन, शिरोभाग में अभ्यंग, पुराने जौ, शालीधान्य, कुलथी तथा मूँग का यूष, ग्राम्य (पालतू) तथा जांगल देश में रहने वाले पशु-पक्षियों के मांस रस, बैगन, परबल, सहजन की फलियाँ, खेखसा, कोमल मूली, लहसुन, दही, गरम पानी, मद्य, कटुत्रय (सोंठ, मरिच, पीपल), कड़ुए, खट्टे, नमकीन, रस युक्त द्रव्य, स्निग्ध (स्नेह युक्त तथा स्नेह(घी आदि) में पकाये गये) पदार्थ, उष्ण, लघु (सुपाच्य) भोजन, पीनस आदि नासा रोगों में दोषानुसार ये द्रव्य पथ्य होते हैं ॥४५७-४६० ॥

वक्तव्य— नासिकाशारीर के आश्रित होने वाले रोगों को माधवनिदान आदि ग्रन्थों में देखें । यह पीनस रोग शीत तथा उष्ण दोनों के कारण होता है, अतः ऊपर दिये गये पथ्यों में भी शीत-उष्ण भेद से पथ्य दिये गये हैं, आप ध्यान से देखें, तदनुरूप प्रयोग करें ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एक उदाहरण– शीत के प्रकोप से उत्पन्न पीनस में दही को पेट भर खालें। दो-तीन घंटे के बाद आँख, मुख, नाक से कफ निकल कर एक दिन में रोग शान्त हो जाता है। अथवा भुने हुए चनों को भरपेट खायें किन्तु पानी दो-तीन घण्टा तक न पीयें, उसके बाद २-४ घूंट पी सकते हैं, सम्पूर्ण कफ सूख जायेगा। ये अनुलोम-प्रतिलोम चिकित्सा के उदाहरण हैं। नासारोगों में पठित प्रतिश्याय रोग को निदानार्थ कर कहा है, अतः सावधानी से इसका पथ्यादि उपचार करें।

नासारोगों में अपथ्य

विरुद्धान्नं दिवा स्वप्नोऽभिष्यन्दीनि गुरूणि च ।
स्नानं क्रोधं शकृन्मूत्रवातवेगान् शुचं द्रवम् ॥
भूशय्यामपि यत्नेन नासारोगी परित्यजेत् ॥४६१ ॥

संयोग विरुद्ध (मधुघृत) पदार्थों का सेवन, दिन में सोना, अभिष्यन्दकारक तथा गुरु पदार्थों का सेवन, शिरास्नान, क्रोध, मल, मूत्र, अपानवायु के वेगों को रोकना, शोक, द्रव, द्रव्यों का अधिक सेवन, भूमि पर सोना, नासारोगी इन अपथ्यों का सेवन कभी न करे ॥ ४६१ ॥

नेत्ररोगों में पथ्य

आश्च्योतनं लङ्घनमञ्जनं च स्वेदो विरेकः प्रतिसारणं च ॥
प्रपूरणं नस्यमसृग्विमोक्षः शस्त्रक्रिया लेपनमाज्यपानम् ॥ ४६२ ॥
सेको मनोनिर्वृतिरङ्घ्रिपूजा मुद्गा यवा लोहितशालयश्च ।
लावो मयूरो वनकुक्कुटश्च कूर्मः कुलिङ्गोऽपि कपिञ्जलश्च ॥ ४६३ ॥
कौम्भं हविर्वन्यकुलत्थयूषः पेया विलेपी लशुनं पटोलम् ।
वार्त्ताकुकर्कोटककारवेल्लं नवीनमोचं नवमूलकं च ॥ ४६४ ॥
पुनर्नवामार्कवकाकमाचीपत्तूरशाकानि कुमारिका च ।
द्राक्षा च कुस्तुम्बुरु माणिमन्थं लोध्रं वरा क्षौद्रमुपानहौ च ॥ ४६५ ॥
नारीपयश्चन्दनमिन्दुखण्डं तिक्तानि सर्वाणि लघूनि चापि ।
विजानता पथ्यमिदं प्रयुक्तं यथामलं नेत्रगदान्निहन्ति ॥४६६ ॥

आँखों में बार-बार जलीय औषध द्रव्यों को डालना, लंघन, अंजन प्रयोग, स्वेदन, नेत्र विरेचन कारक सुरमा आदि के प्रयोग, प्रतिसारण चूर्णों का प्रयोग, नेत्रपूरण अर्थात् आँख को औषध द्रव से भर देना, नस्य, रक्तमोक्षण, शस्त्रक्रिया, बिडालक लेप, घृतपान, औषधद्रव द्वारा सेचन कर्म, सांसारिक पदार्थों को देखने से अथवा अपथ्य आचरण के लिये प्रवृत्त मन को रोकना, पैरों को साफ सुथरा रखना, मूंग, जौ, सांठी के लाल चावल, लवा, मोर, जंगली मुर्गा, कछुआ, गौरैया, तीतर, कुम्भसर्पि, जंगली कुलथी का जूस, पेया, विलेपी, लहसुन, परबल, बैगन, खेखसा, करेला, कच्चा केला, कोमल मूली, पुनर्नवा, भांगरा, मकोय, शालिंच शाक, घीकुआर, मुनक्का, धनियाँ, सेंधानमक, लोध, हरड़, बहेड़ा, आँवला, मधु, जूता धारण करना, स्त्री का दूध (आँखों में डालने के लिये), चन्दन, कपूर, सभी तिक्त रसवाले द्रव्य, सुपाच्य आहार, बुद्धिमान् चिकित्सक द्वारा दोषानुसार प्रयुक्त ये पथ्य नेत्र सम्बन्धी रोगों को नष्ट कर देते हैं ॥ ४६२-४६६ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पाठभेद– दूसरे संस्करणों में 'सेको मनोवृत्तिरथाङ्घ्रिपूजा', ऐसा पाठ मिलता है। इसका अर्थ होगा 'सत्त्वावजय चिकित्सा', अंघ्रिपूजा–देव, ब्राह्मण, गुरुचरण पूजा। कौम्भं हविः– देखें–सु.सू.४५ ।१०७-१०९ । वन्यकुलत्थयूष– यह जंगली कुलथी नेत्ररोगों में वरदान स्वरूप है। लोकभाषा में इसे 'चाकसू' कहते हैं। चाकसू का शुद्ध रूप 'चक्षुष्य' माना जा सकता है, फिर इसका वर्णन ही क्या करना। तथापि इसके चूर्ण का प्रतिसारण करके देखें 'रोहे' शान्त हो जाते हैं।

अन्यत्र पथ्यापथ्य चर्चा– शालिधान्य, मूंग, जौ, दूध, परबल, गूलर, मुनक्का, तथा नेत्र को पुष्ट करने वाले पदार्थ, सुपाच्य खान-पान, पथ्य होते हैं, शेष अपथ्य।

नेत्र रोगों में अपथ्य

क्रोधं शुचं मैथुनमश्रुवायुविण्मूत्रनिद्रावमिवेगरोधान् ।
सूक्ष्मेक्षणं दन्तविघर्षणं च स्नानं निशाभोजनमातपं च ॥ ४६७ ॥
द्रवं रजो धूमनिषेवणं च दृक्स्वेदनं चापि विरुद्धमन्नम् ।
प्रजल्पनं छर्दनमम्बुपानं मधूकपुष्पं दधि पत्रशाकम् ॥ ४६८ ॥
कालिन्दपिण्याकविरूढकानि मत्स्यं सुरां मांसमजाङ्गलं च ।
ताम्बूलमम्लं लवणं विदाहि तीक्ष्णं कटूष्णं गुरु चान्नपानम् ॥ ४६९ ॥
नरो न सेवेत हिताभिलाषी रोगेषु सर्वेषु दृगाश्रयेषु ॥ ४७० ॥

क्रोध करना, सोच करना, मैथुन, अधिक आँसुओं का गिरना, अपानवायु, मल, मूत्र तथा वमन के वेगों को रोकना, सूक्ष्म पदार्थों (अक्षरों) को विशेष ध्यान से देखना, दातौन से दाँतों को अधिक घिसना, शिरःस्नान, रात में भोजन करना, धूप सेंकना, द्रव पदार्थों का अधिक सेवन, धूलि, धूमपान करना, आँखों पर स्वेदन करना, विरुद्ध खान-पान का सेवन, अधिक भाषण करना, वमन करना, अधिक जल पीना, महुआ के फूल, दही, सभी प्रकार के पत्रशाक, तरबूज, तिलकी खली, अंकुरित अन्न, मत्स्यमांस, सुरा सेवन, जांगलदेश के अतिरिक्त प्राणियों के मांसों का सेवन, पान, खट्टे, नमकीन, विदाहकारक, तीक्ष्ण, कड़ुए, उष्ण, गुरु खान-पान, अपना हित चाहने वाला मनुष्य नेत्र रोगों में उक्त अपथ्य पदार्थों का सेवन न करे ॥ ४६७-४७० ॥

शिरोरोगों में पथ्य

स्वेदो नस्यं धूमपानं विरेको लेपश्छर्दिर्लङ्घनं शीर्षबस्तिः ।
रक्तोन्मुक्तिर्वह्निकर्मोपनाहौ जीर्णं सर्पिः शालयः षष्टिकाश्च ॥ ४७१ ॥
यूषो दुग्धं धन्वमांसं पटोलं शिग्रु द्राक्षां वास्तुकं कारवेल्लम् ।
आम्रं धात्री दाडिमं मातुलुङ्गं तैलं तक्रं काञ्जिकं नारिकेलम् ॥ ४७२ ॥
पथ्या कुष्ठं भृङ्गराजः कुमारो मुस्तोशीरं चन्द्रिका गन्धसारः ।
कर्पूरं च ख्यातिमानेष वर्गः सेव्यो मर्त्यैः शीर्षरोगे यथास्वम् ॥ ४७३ ॥

स्वेदन, नस्य, धूमपान, विरेचन, लेपलगाना, वमन, लंघन, शिरोबस्ति (इसी को मूर्द्धबस्ति भी कहते हैं), शिरावेध द्वारा रक्तनिर्हरण, वह्निकर्म (दागना), उपनाह (पुल्टिस बाँधना), पुराना घी, (पुराने) शाली तथा साँठी के चावल, दालों के यूष, दूध, मरुभूमि के प्राणियों के मांस, परबल, सहजन,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मुनक्का, बथुआ, करेला, आम, आँवला, दाड़िम, बिजौरा नीबू, तेल, मट्ठा, काँजी, नारियल की गिरी, हरड़, कूठ, भँगरा, घीकुआँर, नागरमोथा, खस, चाँदनी रात, सफेद चन्दन, कपूर, इस सुप्रसिद्ध पथ्यवर्ग का सेवन दोषों की स्थिति का विचार करके शिरोरोगों में मनुष्यों को सेवन करना चाहिये ॥४७१-४७३ ॥

वक्तव्य— साधारण रूप से सिर में पीड़ा का कारण मलावरोध (कब्जियत) है। इसके लिये विरेचन रूपी पथ्य का सेवन करें। अन्य शिरोरोगों की शास्त्रीय विधि से चिकित्सा करते समय उक्त पथ्य सेवन पर ध्यान दें।

शिरोबस्ति परिचय— सिर की गोलाई के बराबर लम्बा आठ अंगुल चौड़ा एक चमड़ा लें, उसे सिर के चारों ओर लपेट कर सन्धि पर कसकर सी दें। उसके चारों ओर छिद्रों को उड़द की पीठी से लीप दें। उसके बाद स्थिर आसन से बैठे हुए उस रोगी के सिर पर गुनगुना तेल भर दें। इस तेल को ३ घंटा इसी प्रकार रहने दें, इससे वातिकवेदना शान्त हो जाती है। यह विधि वातज शिरोरोग की है। इसी प्रकार शीतल तेल भरकर पित्तज शिरोरोग में भी लाभ होता है।

अन्यत्र पथ्य चर्चा— जांगल प्राणियों का मांस, शालि आदि धान्यों के चावल, मूंग, उड़द अथवा कुलथी के यूष में कटु द्रव्यों (सोंठ, मरिच, पिप्पली आदि) में से किसी द्रव्य के चूर्ण को तथा घी डालकर इनकी शीतल खीर खायें।

और भी—शाली के चावल, जौ, मांसरस, बैगन, परबल, मुनक्का, दाड़िम, खजूर, दूध, निशापान, नदी में स्नान, सुगन्धित द्रव्यों का सेवन हितकर होता है। इनके विपरीत पदार्थ अहितकर होते हैं।

शिरोरोगों में अपथ्य

क्षवजृम्भामूत्रवाष्पनिद्राविड्वेगभञ्जनम् ।
दुष्टनीरं विरुद्धान्नं सह्यविन्ध्यसरिज्जलम् ॥
दन्तकाष्ठं दिवा निद्रां शिरोरोगी परित्यजेत् ॥४७४ ॥

छींकं, जँभाई, मूत्र, आँसू, नीद, तथा नल-मूत्र के वेगों को रोकना, दूषित जल, विरुद्ध भोजन, सह्याद्रि तथा विन्ध्याचल से निकलने वाली नदियों के जलों को पीना, दातून, करना तथा दिन में सोना इन सब का शिरोरोगी परित्याग कर दे ॥ ४७४ ॥

शीर्षाम्बुरोग निदान— मद्य के अधिक पीने से अतिशीत से, असात्म्य भोजन से, दूषित जल को पीने से, वातदोष के प्रकोप से, चोट लगने से, अँतड़ियों में क्रिमियों की उत्पत्ति होने से, सिर की स्नेहच्छद कला में बहुत जल का संचय हो जाता है। इस रोग को 'शीर्षाम्बुरोग' कहते हैं। इसकी चिकित्सा अत्यन्त कष्ट कर होती है। अर्थात् यह रोग कृच्छ्रतर साध्य होता है।

रोगोत्पत्तिकाल— यह रोग बचपन में अनेक प्रकार के अहितकर आहार-विहार का सेवन करने से दाँत निकलते समय बच्चों को हो जाया करता है।

पथ्यापथ्य विधान— इस रोग में शरीर पोषक तथा शीघ्र पच जाने वाले खान-पान का सेवन हितकर और इसके विपरीत अपथ्य होता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रदररोगों में पथ्यापथ्य

यत् पथ्यं यदपथ्यं च रक्तपित्तेषु कीर्तितम् ।
प्रदरेऽपि यथादोषं तत्तन्नारी भजेत्त्यजेत् ॥ ४७५ ॥

रक्तपित्तरोग में जो पथ्य तथा जो अपथ्य कहे गये हैं वे ही प्रदररोग में भी पथ्य तथा अपथ्य होते हैं। उन पथ्यों का सभी सेवन करे तथा उन अपथ्यों को स्त्री छोड़ दे ॥ ४७५ ।।

अन्यत्र पथ्यापथ्य चर्चा— क्षत (घाव) को भर देने वाले तथा शरीर को पुष्ट करने वाले जो जो खान-पान हैं,उन उनका सेवन पथ्य होता है और इसके विपरीत खान-पान अपथ्य होते हैं,उन्हें त्याग देना चाहिये इसमें भी दोषों का विचार कर लें ।

योनिरोगों में पथ्यापथ्य

पृथक् सर्वमलोत्थासु योनिव्यापत्सु विंशतौ ।
यानि पथ्यान्यपथ्यानि तानि तानि यथामलम् ।
योजयेद्वर्जयेच्चापि क्रमेण मतिमान् भिषक् ॥ ४७६ ॥

अलग-अलग दोषनुसार होने वाले बीस प्रकार के योनिरोगों में जो-जो पथ्य-अपथ्य कहे गये हैं,उन्हीं का बुद्धिमान् चिकित्सक दोषानुसार प्रयोग करें ॥ ४७६ ॥

वक्तव्य— चिकित्साग्रन्थों में स्थान स्थान पर पथ्यापथ्य विवेचन किया जाता है, तदनुसार यहाँ भी प्रयोग कर लेना चाहिये।

अन्यत्र पथ्यापथ्य चर्चा— शरीर को बढ़ाने तथा पुष्ट करने वाले , अग्निवर्धक, वायु को अनुलोमन करने वाले जो खान-पान हैं, उन-उन का विशेष रूप से सेवन करें। इनके विपरीत खान-पान को छोड दें।

गर्भिणी के लिये पथ्य

शालयः षष्टिका मुद्गा गोधूमा लाजसक्तवः ।
नवनीतं घृतं क्षीरं रसाला मधु शर्करा ॥ ४७७ ॥
पनसं कदलं धात्री द्राक्षाम्रं स्वादुशीतलम् ।
कस्तूरी चन्दनं माला कर्पूरमनुलेपनम् ॥ ४७८ ॥
चन्द्रिका स्नानमभ्यङ्गो मृदुशय्या हिमानिलः ।
सन्तर्पणं प्रिया वाचो विहाराश्च मनोरमाः ।
प्रियङ्करं चान्नपानं गर्भिणीभ्यो हितं भवेत् ॥ ४७९ ॥

शालिधान्य, साँठी धान्य, मूंग, गेहूँ, लावा (खील) के सत्तू, मक्खन, घी, दूध, रसाला (श्रीखण्ड), मधु, चीनी, कटहल, कच्चा केला, आँवला, मुनक्का, आम, मधुर रस, वाले पदार्थ, शीतवीर्य द्रव्य, कस्तूरी, चन्दन, सुगन्धित माला, कपूर का लेप, चाँदनी, स्नान, अभ्यंग (मालिश), सुकोमल शय्या, शीतल वायु, तृप्तिकारक खान-पान, मधुर भाषण, मनोरम विहार, सुखद खान-पान, गर्भिणियों के लिये हितकर होता है ॥ ४७७-४७९ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गर्भिणी के लिये अपथ्य

स्वेदनं वमनं क्षारं कलहं विषमाशनम् ।
असात्म्यं नक्तसञ्चारं चौर्यं चाप्रियदर्शनम् ॥ ४८० ॥
अतिव्यवायमायासं भारं प्रावरणं गुरु ।
अकालजागरस्वप्नं कठिनोत्कटकासनम् ॥ ४८१ ॥
शोकक्रोधभयोद्वेगवेगश्रद्धाविधारणम् ।
उपवासाध्वतीक्ष्णोष्णगुरुविष्टम्भि भोजनम् ॥ ४८२ ॥
रक्तनिस्सारणं श्वभ्रकूपेक्षां मद्यमामिषम् ।
उत्तानशयनं यच्च स्त्रियो नेच्छन्ति तत् त्यजेत् ॥ ४८३ ॥
यथा रक्तस्त्रुतिं शुद्धिं बस्तिमामासतोऽष्टमात् ।
एभिर्गर्भः स्त्रवेदामः कुक्षौ शुष्येन्म्रियेत वा ॥
भजेन्न नित्यं तिक्ताम्लकटूषणकषायकान् ॥ ४८४ ॥
वातलैश्च भवेद्गर्भः कुब्जान्धजडवामनः ।
पित्तलैः खलिती पिङ्गः श्वित्री पाण्डुः कफात्मभिः ।
अपथ्यमिदमुद्दिष्टं गर्भिणीनां महर्षिभिः ॥ ४८५ ॥

स्वेदन, वमन, क्षार प्रयोग, लड़ाई-झगड़ा, विषम भोजन, प्रतिकूल भोजन, रात में इधर-उधर घूमना, चोरी करना, अप्रिय दृश्य को देखना जिसका कुप्रभाव मन तथा गर्भ पर पड़ता हो, अधिक मैथुन करना, परिश्रम साध्य कर्मों को करना, शक्ति से अधिक भार को उठाना, भारी ओढ़ना अपने ऊपर लेना, असमय में जागना, असमय में सोना, कठोर तथा उकडू आसन पर बैठना, शोक, क्रोध, भय, घबड़ाहट, श्रद्धा, इनके वेगों को दबाना, उपवास करना, अधिक रास्ता चलना, तीक्ष्ण, उष्ण, देर में पचने वाले तथा कब्जकारक भोजनों का सेवन करना, सिरावेध कराकर रक्त निर्हरण करना, गड्ढा या कूप के भीतर देखने का प्रयत्न करना, मधुपान, मांस भक्षण करना, चित लेटना या जैसे सोना नहीं चाहतीं वैसे न सोयें, आठवाँ मास प्रारम्भ होने के दिन से शिरावेध कराकर रक्त न निकालें, वमन, विरेचन न करायें, बस्ति प्रयोग न करें ,इन विधियों से आम गर्भ गिर जाता है अथवा गर्भ में ही सूख जाता है या मर जाता है। उस गर्भिणी को तिक्त, कटु, दाहकारक तथा कषाय रस प्रधान खान-पान का सेवन न करायें। इन वातकारक पदार्थों के सेवन से गर्भस्थ शिशु कुब्ज (कुबड़ा), अन्धा, गूंगा, ठिगना (बौना) हो जाता है। पित्तकारक पदार्थों का सेवन करने से गंजा तथा पीले वर्ण वाला हो जाता है और कफदोष वर्धक खान-पान का सेवन करने से सफेद कुष्ठ वाला तथा पाण्डुवर्ण वाला होता है। प्राचीन महर्षियों ने गर्भिणियों के लिये ये अपथ्य कह दिये हैं ॥४८०-४८५ ॥

वक्तव्य— श्रद्धा विधारणम्— इसका तात्पर्य है कि गर्भकाल में जो दोहद की कामना होती है, उसको न कहना, इच्छा होने पर भी न कह पाना अर्थात् दोहद के वेग को रोकना, इससे भी गर्भस्थशिशु का विकास रुक जाता है। इसका वर्णन विस्तार से 'कौमारभृत्यशास्त्र' में देखें। राजा दिलीप प्रतिदिन सुदक्षिणा से उनकी इच्च्छाओं को पूछ-पूछ रि उनकी पूर्ति कर करते थे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सूतिका के लिए पथ्य

लङ्घनानि मृदुस्वेदो गर्भकोष्ठविशोधनम् ।
अभ्यञ्जनं तैलपानं कटुतीक्ष्णोष्णसेवनम् ॥ ४८६ ॥
दीपनं पाचनं मद्यं पुराणाः शालिषष्टिकाः ।
कुलत्था लशुनं शिग्रु वार्त्ताकुं बालमूलकम् ॥ ४८७ ॥
पटोलं मातुलुङ्गं च ताम्बूलं दाडिमद्वयम् ।
यानि श्लेष्मानिलघ्नानि विधातव्यानि तानि च ॥ ४८८ ॥
सप्ताहाद्बृहणं किञ्चिद् द्वादशाहात्तथामिषम् ।
सार्द्धे मासे व्यतिक्रान्ते त्याज्याहारादियन्त्रणा ॥ ४८९ ॥

लंघन (लघुभोजन), हलका स्वेदन, अपरा को निकालकर गर्भाशय की शुद्धि करना, तेल मालिश, तेलपान, कटु, तीक्ष्ण, उष्ण पदार्थों का सेवन कराना, अग्निवर्धक तथा आहार पाचक पदार्थों का सेवन कराना, मद्यपान, पुराने शाली तथा सांठी चावलों का सेवन, कुलथी, लहसुन, सहजन की फलियाँ, बैगन का भर्ता, कच्ची मूली, परबल, बिजौरा नीबू , पान, खट्टा-मीठा दाड़िम, जो जो कफ तथा वात नाशक खान-पान हों उनकी व्यवस्था करें, प्रसव होने के सात दिन बाद शरीर पुष्टि कारक खान-पान, बारह दिन के बाद यदि वह मांसाहरिणी हो तो मांस खान को दें, प्रसव के ४५ दिन बाद प्रसूता को भोजन आदि के बन्धन से मुक्त कर दें ।४८६-४८९ ॥

सूतिका के लिये अपथ्य

श्रमं नस्यं रक्तमुक्तिं मैथुनं विषमाशनम् ।
विरुद्धान्नं वेगरोधमसात्म्यमतिभोजनम् ॥ ४९० ॥
दिवा निद्रामभिष्यन्दि विष्टम्भि गुरुभोजनम् ।
योषितां प्रसवे प्राहुरपथ्यानि महर्षयः ॥ ४९१ ॥

अधिक परिश्रम करना, नस्य, सिरावेध द्वारा रक्त निकालना, मैथुन, विषम भोजन, संयोग विरुद्ध भोजन, अधारणीय वेगों को रोकना, मन के प्रतिकूल पदार्थों को खाना, अधिक भोजन करना, दिन में सोना, अभिष्यन्द, विष्टम्भ (कब्ज) कारक तथा देर में पचने वाले पदार्थों को खाना, ये सभी महर्षियों ने सूतिकाओं के लिये अपथ्य कहे हैं ॥ ४९०-४९१ ॥

सूतिकारोग में पथ्यापथ्य

सूतिकाख्येषु रोगेषु वातश्लेष्मोचितानि च ।
तत्तद्रोगानुकूल्येन पथ्यापथ्यानि निर्दिशेत् ॥ ४९२ ॥

सूतिका नामक रोगों में सामान्य रूप से वात-कफनाशक औषधों, आहारों तथा विहारों की व्यवस्था करके सूतिका को दें। उस काल में उत्पन्न हुए रोगों (ज्वर, अतिसार आदि के अनुसार पथ्य-अपथ्य का सूतिका के परिचारकों को निर्देश दें ॥ ४९२ ॥

अन्यत्र पथ्यापथ्य चर्चा— प्रसूता स्त्री, अपने स्वास्थ्य के अनुरूप उचित आहार-विहार का सेवन करे, ये पथ्य हैं। व्यायाम, मैथुन, क्रोध तथा शीतलपदार्थों का सेवन न करे। ये अपथ्य हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रसवकाल में पथ्य

गर्भसङ्गे तु कृष्णाहित्वग्भस्म मधुनाञ्जनम् ।
कट्यामास्फोटनं पाष्र्ण्योः स्फिचोर्गाढनिपीडनम् ॥४९३॥
वेण्याः स्पर्शस्तालुकण्ठे मूर्ध्नि स्नुक्क्षीरलेपनम् ।
भूर्जलाङ्गलिकीतुम्बीसर्पत्वक्कुष्ठसर्षपैः ॥ ४९४॥
पृथक् द्वाभ्यां समस्तैर्वा योनिधूपनलेपनम् ।
नारीणां प्रसवे पथ्यमिदमाहुर्मनीषिणः ॥ ४९५॥

जब स्वाभाविक रूप से गर्भस्थ शिशु के जन्म लेने में किसी प्रकार की रुकावट उत्पन्न हो जाय तब तेज प्रसव पीड़ा (जिसे 'आवीप्रादुर्भाव' कहते हैं) के होने पर काले साँप की केंचुल की भस्म को मधु में मिलाकर उसका अंजन लगायें, कमर पर थपकिया दें, एड़ियों तथा चूतड़ों को जोर से दबायें, तालु तथा कंठ में उसी की चोटी का बार-बार स्पर्श करायें, माथे पर सेंहुड़ के ताजे दूध को लगायें। भोजपत्र, कलिहारी, कडुवी तुम्बी, साँप की केंचुली, कूठ, सरसों इन द्रव्यों की स्वतन्त्र रूप से या दो द्रव्यों को मिलाकर अथवा सबकी एक साथ योनिमुख में धूप दें और इन्हीं द्रव्यों को पीसकर योनि के भीतर लेप लगायें, स्त्रियों के प्रसवकाल में ये सभी उपाय पथ्य (सुख प्रसवकारक) हैं॥ ४९३-४९५ ॥

बालरोगों में पथ्यापथ्य

यत् पथ्यं यदपथ्यं च नृणामुक्तं ज्वरादिषु ।
तत्तद्विधेयमौचित्याद्बालानां तेषु जानता ॥ ४९६॥

बड़ी अवस्था वाले पुरुषों के लिये ज्वर आदि रोगों में जो जो पथ्य तथा अपथ्य कहे गये हैं। उन्हीं पथ्यों तथा अपथ्यों का प्रयोग बालकों पर भी बुद्धिमान् चिकित्सक को कराना चाहिये ॥४९६ ॥

पारिगर्भिकरोग में पथ्यापथ्य

पूर्वं पथ्यमपथ्यं च मन्दाग्नौ यत् प्रकीर्त्तितम् ।
औचित्यात्ते भवेतां हि बालानां पारिगर्भिके ॥ ४९७॥

पहले मन्दाग्नि रोगी के लिये जो पथ्य-अपथ्य कहे गये हैं , इस पारिगर्भिक रोग में भी बालकों लिए वे उपयुक्त होते हैं॥ ४९७ ॥

बालग्रहरोग में पथ्यापथ्य

आगन्तून्मादिनां पथ्यमपथ्यं च यदीरितम् ।
औचित्याद् योजयेत्तत्तद्बालेषु ग्रहरोगिषु ॥ ४९८॥

आगन्तुक उन्माद रोगियों के लिये जो पहले पथ्य तथा अपथ्य कहे गये हैं, वे ही सब बालकों की ग्रहगृहीत स्थिति में भी उचित होने के कारण प्रयोग करें॥ ४९८ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विषरोगों में पथ्य

अरिष्टाबन्धनं मन्त्रक्रियाछर्दिर्विरेचनम् ।
कर्षणं शोणिताकृष्टिः परिषेकोऽवगाहनम् ॥ ४९९ ॥
हृदयावरणं नस्यमञ्जनं प्रतिसारणम् ।
उद्धर्त्तनः प्रधमनं प्रलेपो वह्निकर्म च ॥ ५०० ॥
उपधानं प्रतिविषं धूपः संज्ञाप्रबोधनम् ।
शालयः षष्टिकाश्चापि कोरदूषाः प्रियङ्गवः ॥ ५०१ ॥
मुद्गा हरेणवस्तैलं सर्पिर्जीर्णं नवं तथा ।
शिखितित्तिरिलावैणगोधाखुश्वाविदामिषम् ॥ ५०२ ॥
वार्त्ताकुं कुलकं धात्री निष्पावं तण्डुलीयकम् ।
मण्डूकपर्णी जीवन्ती सुनिषण्णोप्युपोदिका ॥ ५०३ ॥
कालशाकं सलशुनं दाडिमं च विकङ्कतम् ।
प्राचीनामलकं पथ्याकपित्थं नागकेशरम् ॥ ५०४ ॥
गोछागनरमूत्राणि तक्रं शीताम्बु शर्करा ।
अविदाहीनि चान्नानि सैन्धवं मधु कुंकुमम् ॥ ५०५ ॥
पश्चिमोत्तरवाताश्च हरिद्रा सितचन्दनम् ।
मुस्तं शिरीषः कस्तूरी तिक्तानि मधुराणि च ॥ ५०६ ॥
हेमचूर्णं च वर्गोऽयं यथावस्थं यथाविषम् ।
विषरोगेषु सर्वेषु प्रयोक्तव्यो विजानता ॥ ५०७ ॥

सर्वप्रथम सर्पदष्ट स्थान पर अरिष्टा बन्धन करें, मन्त्र प्रयोग, सर्पदष्ट पुरुष को अथवा जिसने विषभक्षण किया हो उसे वमन या विरेचन करायें, विष को सिंगी आदि लगाकर मुख से चूस कर खींच लेना, दष्टस्थान पर पच्छ लगाकर उस स्थान से खून को खींच लेना, दंशस्थान पर विषहर औषध द्रव्यों का परिसेचन, विषनाशक औषधों के द्रव में अवगाहन कराना, हृदय की रक्षा का उपाय, नस्य, अंजन, विषहर औषधों के चूर्णों को दंशस्थान पर रगड़ते रहना, उबटन लगाना, प्रधमन नस्य (इसका प्रयोग बेहोशी को दूर करता है।), विषहर लेप प्रयोग, दागना, उपधान (विषनाशक औषध द्रव्यों से भरा तकिया, इसके प्रभाव से विष अपने स्थान से हट जाता है।) प्रतिविष (स्थावर में जंगम का तथा जंगम में स्थावर का) प्रयोग, धूप, संज्ञा प्रबोधन (होश में लाने का प्रयत्न), शाली धान्य, सांठी धान्य, कोदों, कंगुनी, मूंग, मटर, तेल, पुराना घी, नया घी, मोर, तीतर, लवा पक्षी, काला हरिण, गोह, चूहा, साही इनका मांस, बैगन, परबल, आँवला, उबले हुए चना आदि अन्न, चौलाई, मण्डूकपर्णी, जीवन्ती, चौपतिया, पोई की पत्तियों का शाक, कालशाक, लहसुन, दाडिम, विकंकत (कंटाई), जलआँवला, कैथ, नागकेसर, गोमूत्र, बकरी का मूत्र, नरमूत्र, मट्ठा, शीतल जल, चीनी, जो विदाहकारक न हों ऐसे खान-पान, सेंधानमक, मधु, केसर, पश्चिम तथा उत्तर की ओर से आने वाली हवाएँ, हल्दी, सफेदचन्दन, नागरमोथा, सिरीष वृक्ष की छाल तथा उसके बीज, कस्तूरी, तीते तथा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मधुर रस, स्वर्णभस्म यह पथ्य वर्ग है। इसका प्रयोग योग्य चिकित्सक वातादि दोषों तथा विष भेदों का विचार कर सभी विषज रोगों में प्रयोग करें ॥ ४९९-५०७ ॥

वक्तव्य— सुश्रुत ने मूल रूप से विष के दो भेद माने हैं— १. दंष्ट्राविष (सर्प आदि) तथा २. स्थावरविष। अन्य सभी प्रकार के विषों का अन्तर्भाव इन्हीं में हो जाता है। विष के सम्बन्ध में चरक ने लिखा है—'विषं प्राणहरं तच्च युक्तियुक्तं रसायनम्'। च.चि.२४।६०।

अरिष्टाबन्धन— यह दो प्रकार का होता है—'मन्त्रेण रज्वादिभिर्वा विषोपरिबन्धः'। साँप आदि विषैले प्राणियों से हाथ पैर में काट देने पर अरिष्टा बाँधनी चाहिये। यह कपड़ा, चमड़ा, वृक्ष की कोमल छाल से बाँधी जाती है। इसे बाँधने पर विष बन्धन से ऊपर की ओर को नहीं चढ़ पाता।

मन्त्र प्रयोग— ये मन्त्र भयानक विष को भी शीघ्र नष्ट कर देते हैं। सत्यभाषण शील, ज्ञानी, तेजस्वी, तपस्वी ऋषियों के मन्त्रों से जितनी जल्दी विष नष्ट हो जाता है, उतनी जल्दी औषध प्रयोगों से नहीं होता।

विषरोगों में अपथ्य

क्रोधं विरुद्धाध्यशनं व्यवायं ताम्बूलमायासमपि प्रवातम्।
अम्लं च सर्वं लवणं च सर्वं स्वेदं च नानाविधमासुतानि ॥ ५०८ ॥
निद्रां भयं धूमविधिं क्षुधां च विषातुरो नैव भजेत् कदाचित् ॥ ५०९ ॥

क्रोध करना, संयोग विरुद्ध खान-पानों का सेवन करना, मैथुन, ताम्बूल सेवन, अधिक परिश्रम करना, तेज हवा का सेवन, सभी खट्टे तथा नमकीन पदार्थ, स्वेदन, अनेक प्रकार के सिरका में डालकर बनाये गये आचार, अधिक सोना, डरना, धूमपान, अधिक भूखा रहना इनका सेवन विष रोगी कभी न करे ॥ ५०८-५०९ ॥

संकररोगों में पथ्यापथ्य

एषां गदानां यदि संकरः स्यात्तत्र प्रयत्नेन भिषड्मनीषी।
उक्तेषु पथ्येष्वविरोधि यद्यत्तत्तत्प्रयुञ्जीत चिकित्सितेषु ॥ ५१० ॥
अपथ्यानि तु सर्वाणि तत्तद्रोगोदितानि च।
रुग्बलाबलविद्वैद्यो वर्जयेद् व्याधिसङ्करे ॥ ५११ ॥

यदि ऊपर कहे गये रोगों में से कुछ रोग एक दूसरे से मिल जायें तो उसे रोगसंकर कहा जाता है। ऐसी स्थिति में कुशल चिकित्सक उन-उन रोगों में कहे गये किन्तु परस्पर जिनका शास्त्रीय दृष्टि से विरोध न हो, ऐसे पथ्य द्रव्यों का चिकित्सा काल में प्रयोग कराये ॥ ५१०-५११ ।

वातजरोगों में पथ्य

अभ्यङ्गः परिमर्द्दनं च शमनं संस्नेहनं बृंहणं
स्नेहस्वेदनमासनी च शयनं संवाहनं बस्तयः।
नस्यं प्रावरणं समीरणपरित्यागोऽवगाहः शिरो-
बस्तिर्विस्मरणं दिवाकरकराः स्नानं च विस्वापनम् ॥ ५१२ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

द्रोणी तैलसमन्विता सरसता गाढोपनाहः सुरा ।
भूशय्या सुखशीलता च लवणस्वाद्वम्लसंज्ञारसाः ।
मज्जातैलवासघृतानि च नवा माषाः कुलत्थास्तिला
गोधूमाश्च समुद्भवास्तु कलमा ये शालयः षष्टिकाः ॥ ५१३ ॥
पेया धान्यजलं पयांसि कृशरा मण्डः सुखोष्णोदकं
गोमूत्रं नलदम्बुकं दधि पयः पेटी यवः कूर्चिका ।
आनूपा रुरुखड्गिकोलमहिषन्यंकूद्विपेन्द्रादयो
ग्राम्यागोऽश्वतरक्रमेलकखरच्छागाश्च वाहादयः ॥ ५१४ ॥
हंसोत्क्रोशशरारिसारसबकक्रौञ्चादयश्चौदका
गोधादर्दुरशल्यकप्रभृतयो ये बैलसंज्ञान्विताः ।
सर्पद्विट्कृकवाकुतित्तिरिकुलिङ्गा एव धन्वोद्भवाः
कुम्भीरोऽपि तिमिङ्गिलोऽपि मकरो गण्डूपदः कच्छपः ॥ ५१५ ॥
मत्स्या रोहितवर्म्मिमद्गुरशिलिन्दैरण्डशृङ्गील्लिश-
प्रोष्ठीगर्गरभाकुरप्रभृतयो येऽन्येऽम्बुजा जन्तवः ।
वार्त्ताकुं कुलकं च शिग्रु लशुनं द्राक्षाम्रमाम्रातकं
धात्री दाडिमम्लवेतसफलं कोलं कपित्थं शिवा ॥ ५१६ ॥
तालं चापि पचेलिमं बहुसुता गोकण्टको वास्तुकं
शुक्लाक्षी गणिकारिका च सरणी मन्दारपत्राण्यपि ।
ताम्बूलं सितशर्करा च सरलो बोलस्तुरुष्कोऽगुरु-
श्रीवासः सुरदारुगुग्गुलुरपि ग्रन्थ्याह्वयं कुंकुमम् ॥ ५१७ ॥
स्निग्धोष्णा विधयोऽपि हेमरजतं सीसं च संचूर्णितं
फुल्लोत्पाटलमल्लिकासुमनसां माला विशालापि च ।
तत्त्वज्ञानपुरस्कृतैर्मुनिवरैर्वैद्यैः सुनिर्द्धारितं
पानाहारविहारभेषजमिदं वातं प्रशान्तिं नयेत् ॥ ५१८ ॥

मालिश करना, शरीर के अवयवों को दबाना, मसलना,वातशामक प्रयोग, स्नेहपान, बृंहण (शरीर पुष्टिकारक पदार्थों का सेवन), स्नेहन, स्वेदन, बैठना, सोना, मुट्ठी-चम्पी करना, बस्तिप्रयोग, नस्य, भारी रजाई आदि को ओढ़ना, हवा का सेवन न करना, द्रोणी अवगाहन, शिरोबस्ति, मैं रोगी हूँ इस ओर ध्यान न देना, धूप का सेवन करना, गरम जल से स्नान, विशेष रूप से सोना, तैलपूर्ण द्रोणी (टब) में अवगाहन करना, वातनाशक रसों का सेवन, गाढोपनाह (शाल्वण आदि स्वेदविधि), मद्य, सुखद भूशय्या, सुखद एवं शीतल नमकीन, मीठे, खट्टे रसों का सेवन, मज्जा, तेल, वसा, घी (चारों प्रकार का स्नेह), नये उड़द, कुलथी, तिल, गेहूँ इनसे बनाये गये रुचिकर भक्ष्य पदार्थ, कलमधान्य, शालीधान्य, सोठी धान्य, वातनाशक पेय, काँजी, दूध, खिचड़ी, मांड, सुखद गरम जल, गोमूत्र, खस का जल, दही, नारियल, जौ, कूर्चिका, अनूप देश में रहने वाले रुरु (हरिणभेद), गेंडा,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सूअर, भैंसा, नीलगाय, हाथी आदि का मांस, ग्राम्य (पालतू) बैल (बिल में रहने वाले प्राणियों के मांस) गोह, मेंढ़क, साही (लम्बें काँटों वाला प्राणी), आदि खच्चर, ऊँट, गधा, बकरा, घोड़ा आदि पशुओं का मांस, पक्षियों का मांस– हंस, टिटिहा, शरारी, सारस, बगुला, क्रौंच (कुरु) आदि जल में रहनेवाले प्राणियों के मांस, कुम्भीर (घड़ियाल), तिमिंगिल नामक मछली, मगर, केंचुआ, कछुआ, रोहू मछली, वर्मी, महगुर, शिलिन्द, एरण्ड, सिंगी, इल्लिश, प्रोष्ठी, गर्गर, भाकुर आदि मछलियाँ और भी जो जलचर प्राणी हैं, उनके भी मांस ग्राह्य हैं। पक्षियों का मांस, मोर, मुर्गा, तीतर, गौरैया, ये प्राणी मरा देश के ग्राह्य हैं।

बैगन, परबल, सहजन की फलियाँ, लहसुन, मुनक्का, आम, आमड़ा, आँवला, दाड़िम, अम्लवेतस का फल, बेर, कैथ, हरड़, पका हुआ ताड़ का फल, सतावरी, गोखरू, बथुआ, क्षीरकाकोली, अरणी, प्रसारणी, मन्दार (हरसिंगार) के पत्ते, पान, चीनी या मिश्री, चीड़ की गोंद, बोलरस, तुरुष्क (सिह्लकवृक्ष), अगुरु, श्रीवास, देवदारु, गुग्गुलु, पिप्पलामूल, केसर, स्निग्ध (स्नेहयुक्त) तथा उष्ण सभी चिकित्सा विधियाँ, स्वर्णभस्म, रजतमस्म, सीसा भस्म, (इसी को नागभस्म भी कहते हैं, देखें– भा. प्र. धात्वदिवर्ग), खिले हुए पाटल, मल्लिका (मोतिया), आदि फूलों की बड़ी बड़ी मालाएँ, इन सबको तत्त्वज्ञानी प्राचीन ऋषियों, महर्षियों तथा वैद्यवर्यों ने वातरोगों में पथ्य के रूप में निर्धारित किया है, अतः इसका प्रयोग खान-पान, विहार आदि में करना चाहिये ॥ ५१७-५१८ ॥

वातजरोगों में अपथ्य

चिन्ता जागरणं प्रजल्पनमसृङ्मोक्षो वमिर्लङ्घनं
व्यायामो गजवाजिवाहनविधिः संधारणं मैथुनम् ।
आघातोऽप्यपतर्पणं प्रपतनं धातुक्षयः क्षोभणं
शोकश्चक्रमणं विरुद्धमशनं सम्पाकमुक्तक्रमः ॥ ५१९ ॥
वृद्धत्वं जलदागमोऽपि रजनीशेषोऽपराह्णोभयं
रूक्षात्यल्पकषायतिक्तकटुकक्षारातिशीताशनम् ।
ते सर्वे तृणधान्यनामविदिता ये चोडिका चामुटो
कंगूद्दालमकुष्ठकोद्रवयवश्यामकचूर्णादयः ॥ ५२० ॥
शिम्बी जम्बु च राजमाषचणका मुद्गाः कलाया बिसं
शालूकं क्रमुकं कशेरुतिलकं काठिल्लकं तिन्दुकम् ।
कर्कोटं नवतालशस्यमति वा तस्यास्थिमज्जाजलं
नादेयं च तडागजं च करकानि क्षारबीजानि च ॥ ५२१ ॥
पिण्याकः शिशिराम्बु रासभपयः पत्रोत्थशाकं त्रिवृद्-
भूनिम्बः कटुका करीरमखिलं शुष्कामिषं माक्षिकम् ।
धूमो बद्धमरुद्धुजः परिभवः खट्वा च निर्धारितं
पानाहारविहारभेषजमिदं स्याद्वातकोपे विषम् ॥ ५२२ ॥

चिन्ता करना, रात में अधिक जागना, सिरावेध द्वारा रक्त निकालना, वमन, लंघन, व्यायाम, हाथी-घोड़ा की सवारी करना, अधारणीय वेगों को रोकना, मैथुन, चोट लगना, भोजन द्वारा तृप्ति

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

का न होना, गिरना, रसादि धातुओं का क्षय होना, शरीर को झकझोरना, शोक, अधिक चलना, संयोग विरुद्ध पदार्थों को खाना, दोष का परिपाक तथा अपनी समस्थिति से घटना या बढ़ना, बादलों का छा जाना, प्रातःकाल या उषाकाल का समय या अपराह्णकाल, रूक्ष पदार्थों का सेवन, बहुत थोड़ा खाना, कसैला, तीता, कडुआ, क्षार पदार्थ तथा अत्यन्त शीतल पदार्थ को खाना, वे सभी तृणधान्य नाम से प्रसिद्ध हैं, जौ चोडिका, चामुट, कंगुनी, उद्दालक (वन कोदों), मोठ, कोदों, जौ, साँवा, इनका चूर्ण, सेम, जामुन, राजमाष, चना, मूंग, मटर, कमलनाल, कमलकन्द (भसीडा), सुपारी, कसेरू, मीठातिल, करेला, तेंदू, खेखसा, नया ताड़ का फल, उसकी गिरी या उसका जल, नदीका जल, तालाब का जल, ओला का जल, पलाश के बीज, तिल की खली, शीतल जल, गधी का दूध, सभी प्रकार के पत्रशाक, निशोथ, चिरायता, कुटकी, करीर, सुखाये गये सभी मांस, मधु, धुआँ का लगना, अपानवायु का रुकना, सभी की पीड़ाएँ, अपमान, बिछावन रहित खाट, निर्धारित खान-पान आदि ये द्रव्य वातप्रकोप में विष के समान हानिकारक होते हैं ॥ ५१९-५२२ ॥

वक्तव्य— 'क्षारबीजानि' यद्यपि 'मद्यबीज-किण्व' की भाँति कहीं 'क्षारबीज' का उल्लेख नहीं मिलता, हमारे विचार से 'मोखावृक्ष' को क्षारवृक्ष कहा गया है, किन्तु उसके बीजों के गुण-धर्म भी ऐसे नही हैं, जो वातजरोगों में विष के समान हों, इन सब के बाद हमें पालाश के बीज ही ऐसे मिलते हैं, जो इसमें अपथ्य हों। आप भी देखें, पलाशवृक्ष के रूप में तथा क्षारवर्ग में क्षार के रूप में भी प्रसिद्ध है। यह द्रविड़ प्राणायाम 'स्थितस्य गतिश्चिन्तनीया', इस दृष्टि से किया गया है। हेमचन्द्र कोष में क्षार के पर्याय इस प्रकार दिये हैं— 'क्षारः काचे रसे गुडे, भस्मनि धूर्ते लवणे।

पित्तजरोगों में पथ्य

सर्पिः पानविधिर्विरेचनमसृङ्मोक्षः सिताः शालयो
गोधूमास्तृणधान्यकानि चणका मुद्गा मसूरा यवाः
मण्डः पर्य्युषितः पयांसि च पयः पेटीक्षवो माक्षिकं ।
लाजाधन्वरसा घृतानि च सिता शीतोदकं चौद्भिदम् ॥५२३॥
कर्कोटं कदलं च कण्टकिफलं वेत्राग्रमाषाढकं
मृद्वीका कुलकं च कोमलतरं कूष्माण्डमिर्वारुकम् ।
तुम्बीपर्पटकोऽल्पमारिषदलं काठिल्लकं दाडिमं
धात्री कोमलतालशस्यमभयाखर्जूरमौदुम्बरम् ॥ ५२४ ॥
बिम्बश्चापि कषायतिक्तमधुराः सेव्यं मधूकं वरी
कांस्यायोरजतं च हेम कटुका निम्बस्त्रिवृच्चन्दन् ।
हर्म्यं भूमिगृहः सुशीतलवनं धारागृहं चन्द्रिका
रम्भाम्भोरुहनव्यपत्रशयनं शीताः प्रदेहा अपि ॥ ५२५ ॥
भूशय्या मणयः प्रदोषसमयो गीतं प्रियालिङ्गनं
स्नानं मित्रसमागमः प्रियकथा मन्दानिलोम्बूक्षणम् ।
वादित्रश्रवणं मनोरमतरा भावाः सुलास्येक्षणं
पुन्नागोत्पलपाटलाब्जसुमनः कह्लारपुष्पाणि च ॥ ५२६ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कर्पूरं च प्रतीरनीरमखिला शीता क्रिया चाश्रितं
पानाहारविहारभेषजमिदं पित्तं प्रशान्तिं नयेत् ॥ ५२७ ॥

विधिपूर्वक घृतपान करना, विरेचन, रक्तमोक्षण, मिश्री का सेवन, शाली धान्य, गेहूँ, तृणधान्य (साँवा, कोदों आदि), चना, मूंग, मसूर, जौ, बासी माड़, गाय, बकरी आदि के दूध, नारियल का दूध जैसा सुमधुर जल, विविध प्रकार के ईखों के रस, माक्षिक (मधु, यह भी मक्खियों के भेद से अनेक प्रकार का होता है।), लावा (खील), मरुभूमि के पशु-पक्षियों के मांस रस, घी, मिश्री, धरती को फाड़कर निकला हुआ शुद्ध शीतल जल, खेखसा, कच्चा केला, कण्टकिफला (ककड़ी-खीरा-इसके ऊपर काले रंग के छोटे छोटे कांटे जैसे होते हैं।), वेत की फुनगी, पलाश का फल, मुनक्का, परबल, कोमल (कच्चा) पेठा, खीरा, लौकी, पित्तपापड़ा, छोटी चौलाई की पत्तियों का शाक, करेला का शाक, दाडिम, आँवला, कोमल ताल की डोडी, हरड़, खजूर, गूलर के फूल, कुंदरू, कसैल, तीते, मीठे रसवाले सभी पदार्थ, खस, महुआ, सतावरी, कांसा, लोहा, चांदी, सोना इनकी भस्म, कुटकी, नीम, निशोथ, चन्दन, महल, भूमिगृह (तहखाना), अत्यन्त शीतल वन (गृहोद्यान), धारागृह, (जिसमें फौव्वारे बरस रहे हों), चाँदनी, केले के फलों से लदे हुए वृक्ष, कमल के ताजे पत्तों की शय्या, शीतल लेप, भूमि पर सोना, मणियों को धारण करना, सायंकाल का समय, मधुर गीतों को सुनना, प्रियतमा स्त्री का आलिंगन, विधिवत् स्नान करना, शुभचिन्तक मित्रों के साथ उठना-बैठना, बातचीत करना, मनोहर कहानियां सुनना-सुनाना, शीतल-मन्द-सुगन्ध हवा का सेवन, जल का छिड़काव, वाद्यों का सुनना, मनको प्रिय लगने वाले हाव-भाव युक्त नृत्य को देखते रहना, पुन्नाग नाम के सदाबहार वृक्ष का फूल, नीलकमल, पाढल पुष्प, कमल पुष्प, कह्लार- सफेद कमल, आदि फूल, कपूर नदी के तीर में स्थित कुआँ का जल, इनके अतिरिक्त सभी शीतल उपचार, शीतल खान-पान, विहार ये सब पित्त दोष का शमन करने वाले पथ्य हैं ॥ ५२३-५२७ ॥

पित्तजरोगों में अपथ्य

धूमः स्वेदनमातपो निधुवनं संधारणं क्रोधवत्
क्षारोऽध्वा गजवाजिवाहनविधिस्तीक्ष्णानि कर्माणि च ।
व्यायामोऽन्नविदाहकारिसमयो ग्रीष्मो विरुद्धाशनं
मध्याह्नोजलदात्ययोऽपि रजनीमध्यं च मध्यं वयः ॥ ५२८ ॥
व्रीहिर्वेणुफलं तिलोऽपि लशुनं माषः कुलत्थो गुडो
निष्पावो मदिरातसी प्रहिजलं धान्याम्लमुष्णोदकम् ।
जम्बीरं नलदम्बु हिंगु लकुचं मूत्राणि भल्लातकं
ताम्बूलं दधि सर्षपोऽपि बदरं तैलाशनं तिन्तिडी ॥ ५२९ ॥
कट्वम्लं लवणं विदाहि च भिषङ्मुख्यैः सुनिर्द्धारितं
पानाहारविहारभेषजमिदं पित्तप्रकोपे विष्मम् ॥ ५३० ॥

धूमपान, स्वेदन, धूप सेंकना, मैथुन, अधारणीय वेगों को रोकना, क्रोध करना, क्षारों का अधिक सेवन, मार्गगमन, हाथी, घोड़ा आदि की सवारी करना, सभी प्रकार के क्रूर कार्यों को करना, व्यायाम अर्थात् सभी प्रकार के शारीरिक परिश्रमों को करना, विदाहकारक खान-पान का सेवन,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गर्मी का समय, विपरीत पदार्थों को खाना, मध्याह्न (दोपहर) का समय, वर्षाऋतु का अवसान अर्थात् शरद् ऋतु, आधी रात, यौवनकाल, व्रीहिधान्य (जिनसे चावल प्राप्त होते हैं), बाँस के चावल, तिल, लहसुन, उड़द, कुलथी (गहत या घौत), शुद्ध, उबाले हुए चना आदि; मद्य, तीसी (अलसी), कूपजल, काँजी, गरम पानी, जम्बीरी नीबू, खस का जल, हींग, बड़हल, सभी प्रकार के मूत्र, भिलावा के फल, पान, दही, सरसों, बेर, तेल, तथा तेल से बने हुए पकवानों का सेवन, इमली, कडुए, खट्टे, नमकीन, विदाहकारक (जिनका सेवन कर लेने पर गला जलने लगता है। इनकें अतिरिक्त भी जो खान-पान, विहार, औषध योग विद्वान वैद्यों ने निर्धारित कर दिये हैं, वे सभी द्रव्य पित्तज रोगों में विष के समान अहितकर होते हैं ॥ ५२८-५३० ॥

कफज रोगों में पथ्य

छर्दिर्लङ्घनमञ्जनं निधुवनं प्रोद्वर्त्तनं स्वेदनं
चिन्ता जागरणं श्रमोऽतिगमनं तृड्वेगसन्धारणम् ।
गण्डूषः प्रतिसारणं प्रधमनं हस्त्यश्वयानक्रिया
धूमः प्रावरणं नियुद्धमतिसंक्षोभोऽपि नस्यं भयम् ॥ ५३१ ॥
रूक्षणोष्णा विधयः पुरातनभवा ये शालयः षष्टिका
निष्पावस्तृणधान्यकं च चणका मुद्गः कुलत्थो यवः ।
क्षारः सर्षपतैलमुष्णसलिलं धन्वामिषं राजिका
वेत्राग्रं कुलकं कठिल्लकफलं वार्त्ताकुमौदुम्बरम् ॥ ५३२ ॥
कर्कोटं लशुनं च मोचकुसुमं शक्राशनं शूरणो
निम्बोमूलकपोतिका च वरुणस्तिक्ता त्रिवृन्माक्षिकम् ।
ताम्बूलं नलदम्बु जीर्णमदिरा व्योषं वरा गोजलं
लाजाश्चापि सुभृष्टतण्डुलभवं भक्तं सुखोष्णालयः ॥ ५३३ ॥
कांस्यायोऽञ्जनमौक्तिकं च कटुकस्तिक्तः कषायो रसः
पानाहारविहारभेषजमिदं श्लेष्माणमुग्रं जयेत् ॥ ५३४ ॥

वमन, लंघन, अंजन (इनका प्रयोग नेत्रशारीर में स्थित कफ दोष को निकालने के लिये ही किया जाता है। सौन्दर्य के लिये लगाना भी इनका एक महत्व है), मैथुन, उबटन, स्वेदन (इस विधि से शरीरावयवों में सटा हुआ कफ अपना स्थान छोड़ देता है।) चिन्ता, जागरण, सभी प्रकार का परिश्रम, अधिक चलना, प्यास के वेग को रोकना गण्डूष, प्रतिसारण, प्रधमन नस्य का प्रयोग, हाथी, घोड़ा आदि की सवारी करना, धूमपान, मोटालिहाफ (रजाई) ओढ़ना, परस्पर द्वन्द्वयुद्ध करना, शरीर को अधिक झकझोरना, नस्य प्रयोग, भय, रूक्ष तथा उष्ण पदार्थों की सेवन विधियाँ, सालभर पुराने शालिधान्य, सांठी धान्य, उबले हुए धान्य, तृणधान्य (साँवा, कोदों आदि), चना, मूंग, कुलथी, जौ, सभी प्रकार के क्षार पदार्थ, सरसों का तेल, गरम जल, मरुभूमि के निवासी पशु-पक्षियों के मांस, राई, वेतकी कली का अगला भाग, परबल, करेला, बैंगन, गूलर के फल, ककोड़ा (खेखसा), लहसुन, केले का फूल, शक्राशन (भाँग), सूरन (जिमीकन्द), नीम, मूली, पोई का शाक, बरना, कुटकी, निशोथ, मधु, पान, खस का जल, पुरानी मद्य, सोंठ, मरिच, पीपल, हरड़, बहेड़ा, आँवला, गोमूत्र, लावा (खील),

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भुने हुए चावलों का भात, सुखद गरम गृह (आधुनिक उपकरणों से सम्पन्न घर), कांसा, लोहा का अञ्जन, मोती का सुरमा, कटु, तिक्त, कषाय रस, इन द्रव्यों का प्रयोग खान-पान-विहार में किया जाय तो ये सभी पदार्थ बढ़े हुए कफदोष का शमन करते हैं॥ ५३१-५३४ ॥

वक्तव्य— 'कांस्यायोऽञ्जन' इस पद्यांश से ग्रन्थकार का आशय स्पष्ट किया जा रहा है— सुरमा लगाने की विविध प्रकार की सलाइयाँ बाजार में मिलती हैं। जैसे— पत्थर, शीशा, तांबा, जस्ता, लोहा, काँसा, चाँदी, सोना। लेखन अंजन के लिये— लोहा, ताँबा, पत्थर की सलाई। स्नेहन अंजन के लिये— चाँदी तथा सोना की सलाई। रोपण अंजन के लिये— अंगुली का भी प्रयोग किया जा सकता है। यशद (जस्ता) तथा सीसा धातु की विधिवत् बनायी गयी सलाइयाँ, विशेषतः प्रयोग की जाती हैं। गुण-धर्म की वृद्धि से भावप्रकाश का धात्वादि वर्ग देखें। इनके पूर्ण गुणों का लाभ विधिवत् शोधन-मारण करने के बाद ही प्राप्त होता है, अन्यथा नहीं।

कफजरोगों में अपथ्य

स्नेहोऽभ्यञ्जनमासनाह्नि शयनं स्नानं विरुद्धाशनं
पूर्वाह्णः शिशिरो वसन्तसमयो रात्र्यादिराद्यं वयः ।
भक्तादौ च नवाऽन्नपानकरणं माषा नवास्तण्डुला
मत्स्यं मांसमपीक्षुदुग्धविकृतिस्तालास्थिमज्जा द्रवाः ॥ ५३५ ॥
पेया भव्यमुपोदिका च पनसं छत्राकमाषाढकं
खर्ज्जूराण्यनुलेपनान्यपि पयः पेटी पयः पायसः ।
स्वाद्वम्लं लवणं गुरूणि तुहिनं सन्तर्पणं चाश्रितं
पानाहारविहारभेषजमिदं स्याच्श्लेष्मकोपे विषम् ॥ ५३६ ॥

स्नेहपान, अभ्यंग, देर तक एक आसन पर बैठे रहना (प्रमेह रोग के कारणों में सबसे प्रथम कारण 'आस्यासुख' ही है, देखें प्रमेहरोग निदान), दिन में सोना, स्नान, विरुद्ध भोजन, पूर्वाह्ण का समय, शिशिर ऋतु, बसन्त ऋतु, रात्रि का पहला पहर, बाल्यावस्था, भोजन करने से पहले नये खान-पान का सेवन करना, उड़द, नये चावल, मछली का सेवन, मांस भक्षण, ईख के तथा दूध के विकारों का सेवन, ताड़ की गिरी, जलीय पदार्थ, पेया, कमरख, पोई का शाक, कटहर, छत्राक (संस्वेदज शाक-खुमी, मशरूम), पलाश का फल, खजूर, विविध प्रकार के चन्दन आदि के लेप, दूध से भरा हुआ नारियल का फल, दूध, खीर, मधुर, खट्टे, नमकीन, देर में पचने वाले भोजन, शीतल (बरफ तथा बरफ युक्त) पदार्थ, भोजन द्वारा अधिक तृप्ति कर लेना, इनसे सम्बन्धित खान-पान, विहार तथा औषध व्यवस्था कफदोष की वृद्धि में विष की भाँति अहितकर होती है ॥५३५-५३६ ॥

ग्रीष्मऋतु में पथ्य

कुन्देन्दुद्युतिशालिधान्यससिता मुद्गाः पुराणा यवा
गोधूमा अपि जाङ्गलाः खगमृगा यूषो रसालाऽपि च ।
स्वच्छाः पानकरागषाडवरसाः सक्तुः सिताम्भोयुतो

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भक्ष्याश्चन्द्ररुचः शशाङ्ककिरणा गोक्षीरनिर्वर्तिताः ॥ ५३७ ॥
गव्यं माहिषमेव वापि ससितं दुग्धं हविः शर्करा
मद्यं वारियुतं तथाम्लमपि वा पक्कं च रम्भाफलम् ।
मृद्वीका पनसं रसालमपि च स्वादूनि चत्वार्य्यमू-
न्यन्नं स्वादुलघुद्रवं सुशिशिरं स्निग्धं समस्तं च यत् ॥ ५३८ ॥
पाथः पाटलिवासितं लघुतरं स्वच्छं हिमं वारि वा
व्योमव्यापिमहीरुहेषु विकसत्पत्रप्रसूनेषु च ।
प्रौढामोदमनोहरेषु परितः संरुद्धसूर्यांशुषु
क्रूरप्राणिविवर्ज्जितेषु मधुपध्वानादिरम्येषु च ॥ ५३९ ॥
दाहोन्माथिषु काननेषु तटिनीतीरे स्फुरत्सैकते
शीते वेश्मनि सेव्यचन्दनजलैः सिक्ते सचन्द्रातपे ।
कह्लारोत्पलपद्मपल्लवकृते तल्पे प्रसूनाञ्चिते
मध्याह्ने शयनं स्थले जलधरे धारागृहे वा स्थितिः ॥ ५४० ॥
क्रीडा वारिषु कामिनीभिरथवा सार्द्धं वयस्यैस्ततो
रात्रौ मारुतचन्द्रिकाभिलषिते सुप्तिश्च सौधाङ्गणे ।
वासः सूक्ष्मतरं मृणालवलयं कर्पूरवच्चन्दना-
लेपो रत्नविभूषणं व्यजनजो वातो जलार्द्रानिलः ॥ ५४१ ॥
कर्पूराभरणं प्रतीरसलिलं मुक्तास्त्रजो मल्लिका
माला पक्षत एव मैथुनविधिः स्नानं च निद्रा दिवा ।
गीतं मञ्जुकलस्वनाश्च शिशिरो भृङ्गाः शुकाः सारिकाः
पानाहारविहारभेषजमिदं ग्रीष्मे हितं स्यान्नृणाम् ॥ ५४२ ॥

कुन्द पुष्प तथा चन्द्रमा की कान्ति के सदृश सफेद शाली धान्य के चावलों का भात मिश्री के साथ खाना, मूंग का यूष, पुराने जौ, गेहूँ, जांगल देशीय पशु-पक्षियों के मांस रस, 'रसाला'-शिखरिणी, (स्वच्छ छाने गये), पानक, राग (आचार), षाडव, रस (शर्बत), पानी तथा मिश्री युक्त सत्तू, चन्द्रमा की कान्ति के सदृश और चन्द्रकिरणों से शीतल की गयी मिठाइयाँ जिनका निर्माण गाय के दूध (खोया-मावा) द्वारा हुआ हो, जिसे बर्फी या कलाकन्द कहते हैं, गाय या भैंस का मिश्री मिला हुआ दूध, घी, चीनी, पानी मिली हुई शराब, खटाई, पके हुए केले के फल, मुनक्का, कटहल, आम, चारों प्रकार के (चर्व्य, चोष्य, लेह्य, पेय) स्वादिष्ट खान-पान, मधुर, सुपाच्य, पानी जैसे शीतल द्रव, सभी स्निग्ध पदार्थ, पाटल के फूलों से सुगन्धित जल, लघुतर (सुपाच्य) साफ एवं सुशीतल जल, गगनचुम्बी पत्तों तथा फूलों से युक्त जिनसे सूर्य की किरणें भी रुक गयी हों, अतएव जहाँ का वातावरण आमोदक एवं मनोहर को गया हो, ऐसे चारों ओर स्थित वृक्षों की सघन छाया में, जहाँ हिंसक (शेर, बाघ आदि) प्राणी न हों, जहाँ भौरों के गूँजने से वातावरण सुरम्य हो गया हो, गर्मी को शान्त करने वाले वनों अथवा बगीचों में अथवा नदी के किनारे पर जहाँ बालू चमक रही हो, खस तथा चन्दन के सुगन्धित जलों से सींचे जाने के कारण शीतल घर में, चन्द्रमा की चाँदनी में,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कह्लार, उत्पल, पद्म (ये सब कमल के भेद हैं) इनके कोमल पत्तों की शय्या में फूल बिछाकर दोपहर में शयन करना, अथवा मेघाच्छादित स्थान पर या फौवारों से युक्त उद्यान में निवास कर समान अवस्था वाली स्त्रियों अथवा मित्रगणों के साथ जलक्रीडा करना, रात्रि में महल की छत पर जहाँ चाँदनी छिटकी हो और हवा बह रही हो शयन करना, अन्यन्त हलके सूक्ष्मवस्त्रों को धारण करना, कमल नाल के कंकणों को धारण करना, कपूर युक्त चन्दन का लेप करना, रत्नजटित आभूषण धारण करना (ये शीतल होते हैं), भीगे हुए पंखे की हवा का सेवन, कपूर के टुकड़ों को आभूषण की भाँति शरीर में धारण करना, नदी के किनारों के कूपों का जल, मोती की मालाएँ, मल्लिका (बेला) की माला, इन दिनों पन्द्रह दिन में एक बार स्त्री सहवास करना, स्नान, दिन में सोना, गीत, मनोहर, पञ्चम स्वर में गाना, शीतल स्थान, का निवास, भौंरे, शुक तथा सारिकाएँ, शीतल खान-पान, विहार ये सभी पदार्थ ग्रीष्मऋतु में मनुष्यों के लिये पथ्य होते हैं ॥ ५३७-५४२ ॥

ग्रीष्मऋतु में अपथ्य

व्यायामं सूर्य्यकिरणं कट्वम्ललवणं स्त्रियम् ।
उष्णोपयुक्तान् रूक्षादीन् ग्रीष्मे नित्यं विवर्जयेत् ॥ ५४३ ॥

सभी प्रकार के दंड-बैठक आदि शारीरिक व्यायाम (परिश्रम), धूप में घूमना या घाम का सेवन करना, कड़ुए, खट्टे, नमकीन, रस प्रधान पदार्थों का सेवन, मैथुन, गरमागरम रूक्ष आदि (विदाह कारक) पदार्थों का ग्रीष्मऋतु में सदा त्याग करना चाहिये ॥ ५४३ ॥

वर्षाऋतु में पथ्य

पूर्वं संशुद्धिरास्थापनमपि प्रतनाः शालयो धन्वमांसं
जीर्णं गोधूमधान्यं पललभवरसा मध्वरिष्टं पुराणम् ।
यूषः संदीपनानि द्रवपरिविहितं दोषसाधारणं च
स्निग्धोष्णंक्षौद्रमिश्रं लघुतरमशनं मस्तुसौवर्चलाढ्यम् ॥ ५४४ ॥
दिव्याम्भः सारसाम्भः क्वथितहिमजलं कौपनीरं पटूनि
स्वादून्यम्लानि वस्त्रं तनुतरममलं धूपितं गन्धमाल्यम् ।
हर्म्यं चाक्लेदिभूमिर्नभसि च शयनं शीकरोष्णप्रहीणे
पादाभ्यामप्रयाणं जलधरसमये पथ्यमेतन्नृणां स्यात् ॥ ५४५ ॥

इन दिनों सबसे पहले वमन, विरेचन तथा आस्थापन बस्तियों के प्रयोग से शरीर की शुद्धि करना, पुराने शालीधान्यों का भोजन में प्रयोग, मरुभूमि में रहने वाले पशु-पक्षियों के मांस रस का सेवन, पुराने, गेहूँ, जौ आदि अन्न, पुराना मधु (मद्य), अरिष्ट आदि, मूंग आदि दालों के रस, जो जठराग्नि को प्रदीप्त करने वाले हों, वात आदि दोषों के अनुसार साधारण पेया, विलेपी आदि पदार्थ, स्निग्ध, (तेल-घी मिले हुए), उष्ण तथा मधु मिश्रित हलके (शीघ्र पच जाने वाले), मस्तु (दही का पानी, या दही को घोलकर बनाया गया मट्ठा में काला नमक मिलाकर पीयें। आकाशीय जल, जिसे विधिवत् लेकर रखा गया हो, तालाब का जल अथवा उबाल कर छानकर रखा गया जल, कुएँ का जल, नमकीन, मधुर तथा खट्टे, रस प्रधान पदार्थ, पतले स्वच्छ तथा धूप में सुखाये वस्त्र धारण

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

करना, सुगन्धित पदार्थ, ताजे फूलों की मालाएँ, जिसमें गीलापन नहो ऐसा साफ-सुथरा घर, तथा आँगन, घर की छत पर सोना जहाँ वर्षा की फुहार न पड़े, और उष्णता का अनुभव न हों, नंगे पैरों न चलना, ये सब वर्षाऋतु में मनुष्यों के लिये पथ्य कहे गये हैं ॥ ५४४-५४५ ॥

वर्षाऋतु में अपथ्य

आयासं सूर्य्यकिरणमुदमन्थं नदीजलम् ।
अवश्यायं दिवा निद्रां व्यवायं शीतमारुतम् ॥ ५४६ ॥
शीतोपहितरूक्षादींस्तीक्ष्णादीन् शीतसंहितान् ।
नरो यत्नेन वर्षासु सर्वनेतान् विवर्जयेत् ॥ ५४७ ॥

किसी प्रकार का भी अधिक परिश्रम करना, सूर्य के प्रकाश में इधर-उधर घूमना, उदमन्थ (पानी में सत्तू घोलकर उसमें घी मिलाया हुआ घोल), नदियों का जल, ओस का सेवन, दिन में सोना, मैथुन, ठंड़ी हवा का सेवन, ठंडे, रूखे, तीक्ष्ण, (कड़ुए) पदार्थों का शीतल सेवन, मनुष्य उक्त अपथ्यों का सेवन वर्षाकाल में न करे ॥ ५४६-५४७ ॥

शरद्ऋतु में पथ्य

कुष्ठोक्तं च घृतं विरेचनमसृङ्मोक्षः सिताः शालयो
गोधूमा मृगपक्षिणो मरुभवा मुद्गा यवाः षाडवाः ।
स्वच्छो मांसरसो घृतं मधु पयो धात्री पटोलं सिता
लघ्वन्नानि कषायतिक्तमधुराः पित्तापहं चेक्षवः ॥ ५४८ ॥
कर्पूरं सरसीजलं हिमजलं हंसोदकं चन्दनं
सौधं चारु च चन्द्रिका तनुतरं वस्त्रं सुगन्धाः स्रजः ।
मुक्तादाम च रूक्षशीतविधयो गीतं च नृत्येक्षणं
पानाहारविहारभेषजमिदं पथ्यं शरद्युत्तमम् ॥ ५४९ ॥

कुष्ठचिकित्सा में वर्णित तिक्त घृत, विरेचन, सिरावेध द्वारा रक्तमोक्षण, शाली धान्य के सफेद चावल, गेहूँ, मरुभूमि में उत्पन्न तथा निवासी पशु-पक्षियों के मांस, मूँग, जौ, राग-षाडव, स्वच्छ मांस का रस, घी, मधु, दूध, आँवला, परबल, मिश्री, हलके खान-पान, कसैले, तीते, मधुर रस वाले आहार पदार्थ, ये पित्तनाशक होते हैं। सभी प्रकार के ईखों के रस, कपूर, तालाब का जल, बरफ या ओला का जल, हंसोदक (जिस जल पर दिन भर सूर्य की एवं रातभर चन्दमा किरणें पड़ती रहती हैं, उसे 'हंसोदक' या 'अंशूदक' कहते हैं।), चन्दन, चूना से पोता गया सुन्दर महल, चाँदनी, पतले (हलके) वस्त्र, सुगन्धित मालाएँ, मोतियों की माला, रूखे तथा शीतल उपचार, गीत सुनना, नाच देखना, ये सभी खान, पान, विहार, शरद्ऋतु में पथ्य होते हैं ॥ ५४८-५४९ ॥

शरद् ऋतु में अपथ्य

सौहित्यं दधि तैलमर्ककिरणः प्राङ्मारुतः काञ्जिकं
मद्यं कूपजलं वसा च तुहिनं क्षाराश्च माषास्तिलाः ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आनूपादिकमांसमह्नि शयनं तीक्ष्णानि रूक्षान्विता
वर्गोऽयं शरदि प्रकाममहितोनृणां भवेत् सर्वदा ॥ ५५० ॥

तृप्तिपूर्वक भोजन करना, दधि सेवन, तेल तथा सूर्य की किरणों का सेवन, पुरवैया हवा का सेवन, काँजी, मद्य, कुआँ का जल, वसा (चर्बी), बर्फ, सभी प्रकार के क्षार पदार्थ, उड़द, तिल, अनूप-देश के प्राणियों का मांस, दिन में सोना, तीक्ष्ण तथा रूखे पदार्थ, ये सभी द्रव्य शरदृऋतु में मनुष्यों के लिये अपथ्य होते हैं ॥ ५५० ॥

हेमन्त एवं शिशिर में पथ्य

तैलैर्वातहरैः सुगन्धमिलितैरभ्यञ्जनं सर्वत-
स्तैलैर्मूर्द्धनि बस्तयश्च कुशलैः सार्द्धं नियुद्धानि च ।
पादाघात इतो यथाविधिकृतं स्नानं लघूष्णाम्बरं
धूपश्चागुरुणापि कुंकुममदालेपो नवान्नानि च ॥ ५५१ ॥
स्वाद्वम्लं लवणं च माषविकृतिर्गोधूमजा पिष्टका
इक्षुक्षीरसमुद्भवा विकृतयो मद्यानि तैलं वसा ।
आनूपाश्च बिलेशयाश्च प्रसहा ग्राम्याह्वयाश्चौदकाः
स्निग्धोष्णानिचभोजनानि रविरुक्स्वेदः सुखोष्णोदकम् ॥
पादत्राणमपि क्षपासु च पुनः कोष्णं सगर्भं गृहं
शय्या तूलवती प्रिया रसवती कान्तास्फुरद्यौवना ।
स्त्रीभोगोऽपि च वल्लकाजिनकुथक्षौमप्रवेण्यावृति-
र्हेमन्ते शिशिरे च पथ्यमुदितं पूर्वैर्भिषग्भिर्नृणाम् ॥ ५५२ ॥

वातनाशक तथा सुगन्धित तेलों से सम्पूर्ण शरीर में मालिश, इन्हीं तेलों से शिरोबस्ति को धारण करना, स्निग्ध बस्तियों का प्रयोग, कुशल खिलाड़ियों के साथ द्वन्द्वयुद्ध (कुश्ती) करना, पैरों से विधिपूर्वक दाँव-पेंच दिखाना, स्नान करना, हलके गरम वस्त्रों को धारण करना, अगुरु की धूप का सेवन, केसर-कस्तूरी का लेप लगाना, नये अन्नों का सेवन, मधुर, खट्टे, नमकीन रस प्रधान पदार्थों का सेवन, उड़द की पीठी के बने हुए पक्वान्न, गेहूँ के आटे से बनी पूड़ी-कचौड़ियाँ आदि, ईख के रस तथा दूध से बने हुए विविध खान-पान, मद्य, तेल, वसा, (घी, मज्जा), अनूप देश के, बिल में रहने वाले, प्रसह, ग्राम्य (पालतू) तथा जल में रहने वाले प्राणियों के मांस, घी तेल में बने हुए गरमागरम भोजन, धूप सेंकना, सुखद गरम पानी का सेवन, जूते धारण करना, रात्रि में गरम गर्भगृह में रुई भरे हुए गद्दा में सोना, रजाई को ओढ़ना, शृंगाररस से युक्त कमनीय युवती प्रिया के साथ सोना, सहवास (मैथुन) करना, कंबल, मृगचर्म, गलीचा, रेशमीवस्त्र, ऊनीवस्त्र इनको ओढ़ना-बिछाना, ये सभी हेमन्त तथा शिशिर ऋतुओं में प्राचीन चिकित्सकों ने पथ्य कहे हैं ॥ ५५१-५५२ ॥

हेमन्त-शिशिर में अपथ्य

तुषारमुदमन्थं च प्रवातं प्रमिताशनम् ।
कषायकटुतिक्तानि लघ्वन्नं वातलानि च ॥ ५५४ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रूक्षादीन् शीतसंयुक्तान् प्रार्थयेन्नात्मनोऽहितम् ।
हेमन्ते शिशिरे चापि न भजेत सदा नरः ॥ ५५५ ॥

तुषार (हिमकण), उदमन्थ (पानी में घोला हुआ सत्तू), तेज हवा, नपातुला खान-पान, कसैले, कड़ुए, तीते रस प्रधान पदार्थों का सेवन, हलका खान-पान, वातवर्धक आहार-विहार, रूक्ष, तीक्ष्ण भोजन पदार्थ जो ठंड़े हो गये हों, ऐसे पदार्थों का सेवन अपना हित चाहने वाला व्यक्ति हेमन्त तथा शिशिर ऋतु में कभी न करें ॥ ५५४-५५५ ॥

वसन्तऋतु में पथ्य

छर्द्दिर्लङ्घनमञ्जनं प्रधमनं व्यायाम उद्वर्त्तनं
गण्डूषः प्रतिसारणं च कवलो हस्त्यश्वयानं श्रमः ।
पादाघात इति क्रमेण विजिते श्लेष्मप्रकोपे सति
स्नानं चन्दनकुंकुमागुरुशशिप्रालेपनं च स्त्रियः ॥ ५५६ ॥
गोधूमा यवशालयश्चिरभवाः प्रत्नं हविर्जाङ्गलं
साराम्भो जलदाम्बु वा मधुजलं वा शृङ्गवेराम्बु वा ।
क्षौद्रं तप्तजलानि चापि कटुकस्तिक्तः कषायो रसो
रूक्षोष्णा विधयः प्रियाभिरथवा सार्द्धं वयस्यैर्जनैः ॥ ५५७ ॥
माध्वीकासवसीधुपानमनिशं क्रीडा विलासो नवः
प्रोद्यत्पल्लवलोहितेषु विकसत्पुष्पेषु रम्येषु च ।
प्रेङ्खत्पञ्चमकोकिलेषु मदनव्यापारवर्द्धिष्वपि ॥ ५५८ ॥
शाखाच्छादितभानुभानुषु महासत्कुट्टिमोद्भासिषु
व्योमव्यापिपरागरेणुषु वहत्स्रोतोनदीवारिषु ।
सर्वप्राणिप्रियंवदेषु दक्षिणमरुद्व्याधूयमाणेषु च ॥ ५५९ ॥
मध्याह्ने विपिनेषु चित्रकथनैर्मित्रैश्च सार्द्धं स्थितिः
पानाहारविहारभेषजमिदं नृणां वसन्ते हितम् ॥ ५६० ॥

वमन, लंघन, अंजन, प्रधमननस्य, व्यायाम, (दंड-बैठक आदि समस्त शारीरिक श्रम कारक कर्म), उबटन, गण्डूष धारण, प्रतिसारण कर्म, कवलधारण, हाथी-घोड़ा आदि की सवारी करना, किसी प्रकार का परिश्रम, पैरों से रौंदना या पैरों के दाँव-पेंच, इन कार्यों से कफदोष को जीत लेने पर स्नान, चन्दन, केशर, अगर, कपूर का लेप, युवती स्त्रियों के साथ हास-परिहास, पुराने गेहूँ, जौ, शाली के चावल, पुराना घी, जांगल देश के प्राणियों का मांस, सरोवर का जल, वर्षा (धारा) जल, मधु का शर्बत, अदरख का जल, मधु, गरमजल, कड़ुआ, तीता तथा कषैला रस प्रधान पदार्थ, रूक्ष तथा उष्ण पदार्थों का सेवन, युवती स्त्रियों अथवा अपनी मित्र मण्डली के साथ आमोद-प्रमोद करना, महुआ का मद्य अथवा सीधु नामक मद्य का प्रतिदिन सेवन, क्रीड़ा, नये-नये हाव-भाव, विलास, नये लाल किसलयों वाले तथा विकसित फूलों से युक्त रमणीय वृक्षों में, प्रौढा स्त्रियों की मनोहर प्रसन्नताओं में, मद्य से मत्त भौरों की गुञ्जार में, कोकिलों की उस स्वर लहरी में जो कामकलाप को बढ़ाने में

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सहायक है, जहाँ वृक्षों की शाखाओं की छाया से सूर्य की किरणे ढक गयी हैं, उन स्थानों में, जहाँ संगमर्मर विछे हैं, उन फर्शों पर, जहाँ फूलों का पराग उड़कर आकाश तल पर फैल गया हो, ऐसे उद्यानों में स्रोतों से निकले हुए नदियों के बहते हुए जलों में, जहाँ सभी प्राणी मधुरभाषण करते हों, विरहीजनों के प्राणों को जलाने वाली प्रखर अग्नियों में स्नान करके जहाँ आनन्द की प्राप्ति होती हो, जहाँ मलयानिल प्राणियों के हृदयों को झकझोर दे रहा हो, ऐसे मध्याह्न काल में वनों या उद्यानों (बगीचों) में श्रुतिमधुर कथाओं को कहने सुनने से, मित्रों के बीच में बैठकर खान-पान तथा विहार करना ये सब बसन्त ऋतु में मनुष्यों के लिये पथ्य हैं ॥ ५५६-५६० ॥

वसन्तऋतु में अपथ्य

स्वाद्वम्लं लवणं शीतं स्निग्धं च गुरुभोजनम् ।
दिवा निद्रां न सेवेत वसन्ते मतिमान्नरः ॥ ५६१ ॥

मीठे, खट्टे, नमकीन, शीतल, घी आदि के स्नेह में पके हुऐ पदार्थ, गुरु (देर में पचने वाले) भोजन, दिन में सोना, इस सभी भावों को बुद्धिमान् पुरुष वसन्तऋतु में त्याग कर दे ॥ २६१ ॥

वैद्यों के लिये निर्देश

एकद्वित्रिमलोद्भूते ज्वरादौ कथितेष्वपि ।
पथ्येष्वेतेषु सर्वत्र विचार्य्य मतिमान् भिषक् ॥ ५६२ ॥
वातघ्नं वातजे पथ्यं पित्तघ्नं यच्च पित्तजे ।
श्लेष्मघ्नं श्लेष्मजे चापि द्विदोषघ्नं द्विदोषजे ॥ ५६३ ॥
त्रिदोषघ्नं त्रिदोषोत्थे यथादोषं विवर्जयेत् ।
अपथ्यानि पुनश्चात्र यान्युक्तानि गदे गदे ।
तानि सर्वाण्यपि सदा तत्र तत्र विवर्जयेत् ॥ ५६४ ॥

एक दोषज (वातज, पित्तज, कफज), दो दोषज या द्वन्द्वज (वातपित्तज, वातकफज, पित्तकफज), तथा त्रिदोषज अर्थात् सन्निपातज ज्वर आदि रोगों में जो पथ्य अथवा अपथ्य कहे गये हैं। उनकी विचार परम्परा का आश्रय लेकर बुद्धिमान् चिकित्सक को सभी स्थानों में पथ्य एवं अपथ्य का विचार कर लेना चाहिये।

विचारसरणि निर्देश– वातजरोग हो तो उसमें वातनाशक पथ्य, पित्तजरोग हो तो उसमें पित्तनाशक पथ्य, कफजरोग हो तो उसमें कफनाशक पथ्य, दोदो दोषों से युक्त रोगों में द्विदोषनाशक पथ्य और त्रिदोष में त्रिदोषनाशक पथ्य दें। अर्थात् पथ्य प्रयोग कराते समय दोष विचार अवश्य कर लें, तदनुसार पथ्य दें और उसके विपरीत को अपथ्य समझें। इस सम्पूर्ण ग्रन्थ में जो प्रत्येक रोग के पथ्य एवं अपथ्य कहे गये हैं, इन सबका भी उन उन रोगों में दोषानुसार प्रयोग करें ॥५६२-५६४ ॥

प्रस्तुत ग्रन्थोक्त रोग-सूची

ज्वरोऽतिसारो ग्रहणीगदोऽर्शो मन्दानलोऽजीर्णगदो विषूची ।
विलम्बिका चालसकः कृमिश्च पाण्ड्वामयः शोणितपित्तरोगः ।५६५ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

क्षयश्च कासः श्वसनं च हिक्का स्वरामयोऽरोचकरुग्वमिश्च ।
तृष्णा च मूर्च्छापि मदात्ययश्च दाहार्त्तिरुन्मादगदश्च यस्मात् ॥ ५६६ ॥
अपस्मृतिर्वातगदोऽनिलास्र स्तस्मादुरुस्तम्भरुगामवातः ।
शूलान्युदावर्तगदश्च तस्मादानाहरोगोऽपि च गुल्मरोगः ॥ ५६७ ॥
हृदामयः कृच्छ्रगदोऽथ मूत्राघाताश्मरीमेहगदोऽपि मेदः ।
अथोदरं शोथगदश्च वृद्धिर्ब्रध्नामयोऽथो गलगण्डरोगः ॥ ५६८ ॥
ग्रन्थ्यामयश्चार्बुदगण्डमालापचीगदाश्लीपदविद्रधी च ।
व्रणोथ शोथो व्रणरुक् च सद्यो व्रणाश्च नाडीव्रणरुक् च भग्नः ॥ ५६९ ।
भगन्दरश्चाप्युपदंशरोगः शूकाख्यकः कुष्ठगदस्ततः परम् ।
शीतातुरः पित्तमुदर्दकोठौ तथाम्लपित्तं च विसर्परोगः ॥ ५७० ॥
विस्फोटकश्चैव मसूरिका च क्षुद्राख्यरोगो मुखकर्णयो रुक् ।
नासामयो नेत्रगदः शिरोरुङ् नारीगदो बालगदो विषार्त्तिः ॥ ५७१ ॥
तत्संकरोऽस्मात्पवनश्च पित्तं कफस्ततो ग्रीष्मऋतुश्च वर्षा ।
शरद्धिमोऽतः शिशिरो वसन्तः क्रमादमीषां परिकीर्तितानि ॥ ५७२ ॥

ज्वर, अतिसार, ग्रहणी रोग, अर्श, (बबासीर), मन्दाग्नि, अर्जीण, विसूचिका, (हैजा), विलम्बिका, अलसक (गुम हैजा), कृमिरोग, पाण्डुरोग, रक्तपित्त, क्षय, कास, श्वास, हिक्का, स्वरभेद, अरोचक, छर्दि (वमन), तृष्णा, मूर्च्छा, मदात्यय, दाह, उन्माद, अपस्मार, वातरोग, वातरक्त, ऊरुस्तम्भ, आमवात, शूल, उदावर्त, आनाह, गुल्मरोग, हृद्रोग, मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात, अश्मरी (पथरी), प्रमेह, मेदोरोग, उदर रोग, शोथ, अण्डवृद्धि, वृद्धि (ब्रध्न) रोग, गलगण्ड, गन्थिरोग, अर्बुद (कैन्सर), गण्डमाला, अपची, श्लीपद, विद्रधि, व्रणशोथ, व्रण, सद्योव्रण, नाड़ीव्रण, भग्नरोग, भगन्दर, उपदंश शूकरोग, कुष्ठ, शीतपित्त, उदर्द, कोठरोग, अम्लपित्त, सर्परोग, विस्फोटक, मसूरिका, क्षुद्ररोग, मुखरोग, कर्णरोग, नासारोग, नेत्ररोग, शिरोरोग, स्त्रीरोग, बालरोग, विषरोग, संकररोग, वातजरोग, पित्तजरोग, कफजरोग, ग्रीष्मऋतु, वर्षाऋतु, शरद्ऋतु, शिशिरऋतु, वसन्त ऋतु, इन में होने वाले रोगों के पथ्यापथ्य इसमें कहे हैं ॥ ५६५-५७२ ॥

इतिमहामहोपाध्यायविश्वनाथकविराजंविरचितं डॉ.ब्रह्मानन्दत्रिपाठिकृतया पथ्यपथ्याटीकया विराजितं पथ्यापथ्यविनिर्णयं सम्पूर्णम् ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रथमं परिशिष्टम्

मधुराम्ललवणा वातघ्नाः । मधुरतिक्तकषायाः पित्तघ्नाः ।
कटुतिक्तकषायाः श्लेष्मघ्नाः ॥ १ ॥

मधुर, अम्ल, लवणरस वातनाशक होते हैं। मधुर, तिक्त, कषाय रस पित्तानाशक होते हैं और कटु, तिक्त, कषाय रस कफनाशक होते हैं॥ १ ॥

वक्तव्य— इस विषय को समझने के लिये च.वि. १ का सम्पूर्ण अध्ययन स्थिरबुद्धि से करें। चरक का एक मत यह भी है– 'सर्वरसाभ्यासो बलकराणाम्', तथा' हरीतकी पथ्यानाम् । देखें-'च.सू. २५ । ४० । इसके आगे मधुर आदि रसों का विस्तृत इतिहास अथवा उनके गुण-धर्म च.सू. २६ । ४३-४४ । में देखें।

मधुररस के गुण

तत्र मधुरो रसो रसरक्तमांसमेदोऽस्थिमज्जौजःशुक्रस्तन्यवर्द्धनश्चक्षुष्यः केश्यो वर्ण्यो बलकृत्सन्धानः शोणितरसप्रसादनो बालवृद्धक्षतक्षीणे हितः षट्पदपिपीलिकानामिष्टतमस्तृष्णामूर्च्छादाहप्रशमनः षडिन्द्रियप्रसादनः कृमिकफकरश्चेति ॥२॥

मधुररस— रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि (हड्डी), मज्जा, ओज, शुक्र, स्तन्य (दूध) को बढ़ाने वाला, आँखों के लिये हितकारी, बालों के लिये हितकर, शरीर के विशेकर मुख के वर्ण को सुरूप करने वाला, शारीरिक बल को बढ़ाने वाला, टूटी हुई अस्थि को जोड़ने वाला, रस, रक्त को पुष्ट करने वाला, बालक, वृद्ध, क्षत तथा क्षीणों के लिये हित (पथ्य), भौरों, चींटियों का अधिक प्रिय लगने वाला, तृष्णा, मूर्च्छा तथा दाह का शमन करने वाला, मन सहित छहों इन्द्रियों को पुष्ट करने वाला क्रिमि तथा कफविकारों को बढ़ाने वाला होता है॥ २ ॥

वक्तव्य– ये छहों रसों के पाठ संग्रहकर्ता ने च.सू.२६ से लिये हैं, मिलाकर देखें, जो कुछ परिवर्तन है, उसका दायित्व संग्रहकर्ता का है।

मधुररस का अतियोग

स एवंगुणोऽप्येक एवात्यर्थमासेव्यमानः कासश्वासालसकवमथुवदनमाधुर्यस्वरोपघातकृमिगलगण्डानापादयति तथार्बुदश्लीपदबस्तिगुदोपलेपाभिष्यन्दप्रभृतीन् जनयति ॥३ ॥

उक्त प्रकार के गुणों वाला भी यह अकेला मधुर रस जब अधिक सेवन करलिया जाता है, तो वह कास, श्वास, अलसक (गुमहैजा), वमन, मुख के भीतर मीठापन, स्वरोपघात, क्रिमिरोग,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गलगण्ड (घेंघा), केंसर, श्लीपद (फीलपाँव), बस्तिरोग, गुदप्रदेश में चिपचिपापन, अभिष्यन्द आदि रोगों को उत्पन्न कर देता है ॥ ३ ॥

अम्लरस के गुण

अम्लोजारणः पाचनः पवननिग्रहणोऽनुलोमनः कोष्ठविदाही बहिःशीतः क्लेदनः प्रायशो हृद्यश्चेति ॥ ४ ॥

अम्ल (खट्टा) रस– खाये हुए भोजन को पचाने में सहायक होता है, पाचन, वायु को रोकने वाला तथा वायु का अनुलोमन करता है, कोष्ठ में दाह करता है, बाहर से शीतल है, क्लेदन (गीला करने वाला), प्रायः हृदय को प्रिय लगता है। यहाँ प्रायः शब्द से यह सबको रुचिकर नहीं होता. ऐसा भाव है ॥ ४ ॥

अम्लरस का अतियोग

स एवंगुणोऽप्येक एवात्यर्थमुपसेव्यमानो दन्तहर्षनयनसंमीलनरोमसंवेनकफ-विलयनशरीरशैथिल्यान्यापादयति तथा क्षताभिहतदग्धदष्टभग्न-शूनरुग्णप्रच्युतावमूत्रितविसर्पितच्छिन्नभिन्नविद्धोत्पिष्टादीनि पाचयत्याग्नेय-स्वभावात् परिदहति कण्ठमुरो हृदयं चेति ॥ ५ ॥

उक्त प्रकार के गुणों वाला भी यह अकेला अम्लरस जब अधिक सेवन किया जाता है, तो वह दन्तहर्ष, नेत्रों का मुद जाना, रोमांच होना, कफ को पिघला देना, शरीर को ढीला कर देता है। तथा इस रस का गरम स्वभाव होता है, इसलिये यह घाव, चोट लगे हुए, जले हुए, सर्प आदि द्वारा डसे हुए, टूटे, शोथ युक्त, पीड़ित, गिरे हुए, विषैले प्राणियों के मूत्र लगे हुए स्थान पर, विषैले प्राणियों द्वारा छुए गये स्थान पर, छिन्न, भिन्न, विद्ध, कुचले गये अंगों को पका देता है और यह कंठ, छाती तथा हृदय में दाह पैदा कर देता है ॥ ५ ॥

लवण रस के गुण

लवणः संशोधनः पाचनो विश्लेषणः क्लेदनः शैथिल्यकृदुष्णः सर्वरसप्रत्यनीको मार्गविशोधनः सर्वशरीरावयवमार्दवकरश्चेति ॥ ६ ॥

लवणरस- संशोधन, पाचन, विश्लेषण (मल-मूत्र आदि को अलग करने वाला), क्लेदन (गीला करने वाला), ढीला करने वाला, उष्णवीर्य , सभी रसों को उभाड़ने वाला, स्रोतों को शुद्ध करने वाला, शरीर के सभी अवयवों को कोमल करने वाला होता है ॥ ६ ॥

लवणरस का अतियोग

स एवंगुणोऽप्येक एवात्यर्थमासेव्यमानो गात्रकण्डूकोठशोफवैवर्ण्यपुंस्त्वोपघा-तेन्द्रियोपतापान् तथा मुखाक्षिपाकं रक्तपित्तवातशोणिताम्लीका-प्रभृतीनापादयति ॥७ ॥

उक्त प्रकार के गुणों वाला भी लवण रस जब इसका अधिक सेवन किया जाता है तो शरीर में खुजली, कोठ (चकत्ते), सूजन, शरीर भर में कुरूपता, नपुंसकता, सभी इन्द्रियों को कष्ट, मुख तथा आंखों में पाक, रक्तपित्त, वातरक्त, खट्टी डकारों का आना आदि रोगों को उत्पन्न कर देता है ॥ ७ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कटुरस के गुण

कटुको दीपनः पाचनो रोचनः शोधनः स्थौल्यालस्यकफकृमिविषकुष्ठकण्डूपशमनः सन्धिबन्धविच्छेदनोऽवसादनः स्तन्यशुक्रमेदसामुपहन्ता चेति ॥ ८ ॥

कटुरस-अग्नि को प्रदीप्त करता है, भोजन को पचाता है, भोजन के प्रति रुचि को बढ़ाता है, स्रोतों का शोधक है, स्थूलता, आलस्य, कफ, क्रिमि, विष, कुष्ठ, खुजली, इनको शान्त करता है। शरीर के बन्धनों को ढीला कर देता है, ग्लानिकारक है, दूध, शुक्र तथा मेदोधातु को नष्ट करने वाला है ॥ ८ ॥

कटुरस का अतियोग

स एवं गुणोऽप्येक एवात्यर्थमुपसेव्यमानो भ्रममदगलताल्वोष्ठशोषगात्रसन्तापबल विघातकम्पतोदभेदकृत् करचरणपार्श्वपृष्ठप्रभृतिषु च वातशूलानापादयति ॥९ ॥

उक्त प्रकार के गुणों वाला भी कटुरस जब अकेला इसका अधिक सेवन किया जाता है, तो भ्रम (चक्करों का आना), मद (नशा) का होना, गला, तालु, होंठ, इनका सूखना, शरीर में जलन होना, बल का नाश, कँपकपी, सुई चुभने की जैसी पीड़ा, हड्डियों में फटने की जैसी पीड़ा, हाथ, पैर, पसलियों, पीठ आदि अवयवों में वातजशूल को पैदा कर देता है ॥ ९ ॥

तिक्तरस के गुण

तिक्तश्छेदनो रोचनो दीपनः शोधनः कण्डूकोठतृष्णामूर्च्छाज्वरप्रशमनः स्तन्यशोधनो विण्मूत्रक्लेदमेदोवसापूयोपशोषणश्चेति ॥ १० ॥

तिक्तरस–मल का छेदक, रुचिको बढ़ाने वाला, अग्नि को प्रदीप्त करने वाला, स्रोतों को शुद्ध करता है, खुजली, चकत्ता, तृष्णा, मूर्च्छा, ज्वर को शान्त करता है, स्त्रियों के दूध को शुद्ध करता है, मल-मूत्र, क्लेद (गीलापन), मेदोधातु, चर्बी तथा पूय को सुखाता है ॥ १० ॥

तिक्तरस का अतियोग

स एवंगुणोऽप्येक एवात्यर्थमुपसेव्यमानो गात्रमन्यास्तम्भाक्षेपकार्दितशिरःशूलभ्रमतोदभेदच्छेदास्यवैरस्यान्यापादयति ॥ ११ ॥

उक्त प्रकार के गुणों वाला भी तिक्तरस जब अकेला इसका अधिक सेवन किया जाता है, तो शरीर तथा मन्या (गले के पिछले भाग की दो सिराएँ) में जकड़न, आक्षेपक, अर्दित (मुख प्रदेश का लकवा), शिरःशूल (सिरपीड़ा), भ्रम, सुई चुभने की सी पीड़ा, फटने तथा कटने की सी पीड़ा, मुख का फीका पड़ना, इन रोगों को उत्पन्न कर देता है ॥ ११ ॥

कषायरस के गुण

कषायः संग्राहको रोपणः स्तम्भनः शोधनो लेखनः शोषणः पीडनः क्लेदोपशोषणश्चेति ॥१२ ॥

कषाय रस–मल संग्राहक, घाव को भरने वाला, स्तम्भन, शोधन, लेखन, शोषण, पीडन, गीलेपन को सुखाने वाला होता है ॥ १२ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कषायरस का अतियोग

स एवंगुणोऽप्येक एवात्यर्थमुपसेव्यमानो हृत्पीडास्यशोषोदराध्मानवाक्यग्रहमन्यास्तम्भगात्रस्फुरणचुमचुमायमानाकुञ्चनाक्षेपणप्रभृतीञ्जनयति ॥१३ ॥

उक्त प्रकार के गुणों वाला भी कषायरस, जब अकेला इसका अधिक सेवन किया जाता है, तो हृदय में पीड़ा, मुख का सूखना, उदर में अफरा, वाणी का लड़खड़ाना, मन्या का जकड़ जाना, शरीरावयवों का फड़कना, शरीर में चुनचुनाहट, शरीर के अवयवों में सिकुड़ने का जैसा आभास, हाथ-पैरों का पटकना आदि लक्षण पैदा होने लगते हैं ॥ १३ ॥

ग्रन्थकर्ता का परिचय

विद्वद्धर्त्तुरुमापतेः प्रबिलसत्कीर्त्तेः प्रपौत्रस्तु यः
पौत्रः श्रीतपनस्य सत्कविमणेः सद्वैद्यचूडामणेः ।
श्रीगौरीनरसिंहसेनतनयो निःशेषतन्त्रोद्धवं
पथ्यापथ्यविनिश्चयं समतनोत् श्रीविश्वनाथःसुधीः ॥

विद्वानों में प्रमुख जिनका सुयश चारों ओर फैला है ऐसे श्री उमापतिसेन के प्रपौत्र, वैद्य चूड़ामणि, कविकुल श्रेष्ठ श्रीतपन सेन के पौत्र श्री गौरीनरसिंह सेन के पुत्र श्रीविश्वनाथ कविराज ने समस्त आयुर्वेद शास्त्र से संग्रह करके इस 'पथ्यापथ्यविनिश्चय' ग्रन्थ की रचना की ॥१४॥

इति श्रीमहामहोपाध्यायश्रीविश्वनाथकविराजविरचिते पथ्यापथ्यविनिर्णये प्रथमं परिशिष्टं सम्पूर्णम् ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

द्वितीयं परिशिष्टम्

स्नेहपान की व्यवस्था लक्षण

स्नेहश्चतुर्विधः प्रोक्तो घृतं तैलं वसा तथा ।
मज्जा च तं पिबेन्मर्त्यः किञ्चिदभ्युदिते रवौ ॥ १ ॥
स्थावरो जङ्गमश्चैव द्वियोनिः स्नेह उच्यते ।
तिलतैलं स्थावरेषु जङ्गमेषु घृतं वरम् ॥ २ ॥

स्नेह चार प्रकार का कहा गया है—घृत, तेल, वसा, मज्जा । इनको थोड़ा सूर्योदय हो जाय उसके बाद आवश्यकतानुसार पीना चाहिये ।

स्नेह की योनियाँ—ये दो प्रकार की होती हैं–१. स्थावर और २. जंगम । स्थावरस्नेहों में तिल तैल उत्तम होता है और जंगमस्नेहों में घी श्रेष्ठ होता है, यह सामान्य परिभाषा है ॥ १-२ ॥

पञ्चकर्म

प्रथमं वमनं पश्चाद्विरेकश्चानुवासनम् ।
एतानि पञ्चकर्माणि निरूहोनावनं तथा ॥ ३ ॥

ये आयुर्वेदोक्त पंचकर्म हैं–पहले वमन, विरेचन, अनुवासन-बस्ति, निरूहण बस्ति तथा नस्य कर्म ॥ ३ ॥

वक्तव्य– पंचकर्मों में चरक ने सर्वप्रथम स्नेहन, स्वेदन का विधान किया है, उसके बाद वमन, विरेचन आदि संशोधनों के प्रयोग का निर्देश दिया है। यथा-'स्नेहमग्रे प्रयुञ्जीत ततः स्वेदनमन्तरम् । स्नेहस्वेदोपपन्नस्य संशोधनमथेतरत्' ॥ च.सू. १३ । ९९ । कायचिकित्सा के क्षेत्र में पञ्चकर्म चिकित्सा श्रेष्ठ है, किन्तु इसको करने तथा कराने वाले विरल हैं । ध्यान दें– सामान्य रूप से वमन अथवा विरेचन विना स्नेहन, स्वेदन के भी कराये जाते हैं, किन्तु इस प्रकार कराये गये वमन-विरेचन से वैसी सफलता नहीं मिलती, जैसी होनी चाहिये, इसके लिये देखें–सम्यग्वान्त तथा सम्यग् विरिक्त के लक्षण ।

वमन-विरेचन काल

शरत्काले वसन्ते च प्रावृट्काले च देहिनाम् ।
वमनं रेचनं चैव कारयेत् कुशलोभिषक् ॥ ४ ॥
बलवन्तं कफव्याप्तं हल्लासादिनिपीडितम् ।
तथा वमनसात्म्यं च धीरचित्तं च वामयेत् ॥ ५ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शरद्‌ऋतु, वसन्तऋतु, प्रावृट्‌ऋतु में वमन तथा विरेचन का प्रयोग कुशल चिकित्सक को कराना चाहिये। वमन कराने योग्य व्यक्ति– जो पुरुष बलवान् तथा कफदोष से व्याप्त हो, जिसे बार-बार मिचली आ रही हो, उसे वमन कराना अनुकूल पड़ता हो तथा जो धीर पुरुष हो उसी को वमन कराना चाहिये ॥ ४-५ ॥

वक्तव्य— लोकव्यवहार में जो ऋतुओं की व्यवस्था है, उसमें 'प्रावृट्' नाम की कोई ऋतु नहीं है। आयुर्वेदीय दृष्टि से दोष संशोधन का जो ऋतुक्रम निर्दिष्ट है, वह इस प्रकार है– वैशाख-ज्येष्ठ-ग्रीष्म, आषाढ़-श्रावण-प्रावृट्, भाद्रपद-आश्विन-वर्षा, कार्तिक-मार्गशीर्ष-शरत्, पौष-माघ–हेमन्त, फाल्गुन–चैत्र–वसन्त। देखें–सु. सू. ६ ।६एवं १०। उक्त ऋतुओं में भी जो वमन-विरेचन के योग्य न हों, उन्हें ये कर्म न करायें।

वमन का पूर्वकर्म

पाययित्वा यवागूं वा क्षीरतक्रदधीनि च।
असात्म्यैः श्लेष्मलैर्भोज्यैर्दोषानुत्क्लेश्य देहिनाम्।
स्निग्धस्विन्नाय वमनं दत्तं सम्यक् प्रवर्तते ॥ ६ ॥

सर्वप्रथम रोगी को स्नेहन-स्वेदन कराकर, यवागू (पतली खिचड़ी), दूध, दही, मट्ठा इस प्रकार के तरल पेयों को पर्याप्त पिलाकर असात्म्य (रोगी की प्रकृति के प्रतिकूल) कफवर्धक भोज्य पदार्थों को खिलाकर तथा कफदोष को उभाड़ कर दिया गया वमनकारक औषध द्रव्य समुचित वमन कराता है, अर्थात् इस विधि से कराया गया वमन सफल होता है ॥ ६ ॥

विरेचन प्रयोग

स्निग्धस्विन्नाय वान्ताय दद्यात्सम्यग्विरेचनम्।
अवान्तस्य त्वधः स्रस्तो ग्रहणीं छादयेत्कफः ॥ ७ ॥
मन्दाग्निं गौरवं कुर्याज्जनयेद्वा प्रवाहिकाम्।
अथवा पाचनैरामं बलासं परिपाचयेत् ॥ ८ ॥
ऋतौ वसन्ते शरदि देहशुद्धौ विरेचयेत्।
अन्यदात्ययिके कार्ये शोधनं शीलयेद्बुधः ॥ ९ ॥

स्नेहन तथा स्वेदन कर्म कराने और वमन कराने के बाद ही रोगी को यथाविधि विरेचन कराना चाहिये। विना वमन कराये हुए यदि विरेचन कराया जाता है तो स्नेहन-स्वेदन क्रियाओं से पिघला हुआ कफ विरेचक औषध से नीचे की ओर को आकर ग्रहणी को ढक देता है। इसके कारण अग्निमन्द पड़ जाता है, शरीर में भारीपन होकर प्रवाहिका रोग की उत्पत्ति हो जाती है, ऐसी स्थिति में कफपाचक औषधों के प्रयोग से उस आम कफ को पचाकर समाप्त करना चाहिये।

विरेचन का विशेष काल– शरीर की शुद्धि कराकर वसन्त तथा शरद ऋतु में सुविधानुसार रोगी को विरेचन कराना चाहिये, यदि कोई आवश्यक कार्य आ जाय अर्थात् स्वास्थ्य की विषमता को देखकर कभी भी शोधन (विरेचन) का प्रयोग किया जा सकता है ॥ ७-९ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बस्ति परिचय

बस्तिर्द्वैधानुवासाख्यो निरूहश्च ततः परम् ।
यः स्नेहो दीयते स स्यादनुवासननामकः ॥ १० ॥
कषायक्षीरतैलैर्यो निरूहः स निगद्यते ।
बस्तिभिर्दीयते यस्मात्तस्माद्बस्तिरिति स्मृतः ॥ ११ ॥

बस्ति दो प्रकार की होती है—१. अनुवासबस्ति और २. निरूहणबस्ति। परिचय-बस्तियन्त्र द्वारा गुदमार्ग से भीतर जो स्नेह का प्रवेश कराया जाता है, उसे अनुवासनबस्ति कहते हैं, कषाय (क्वाथ या काढ़ा का रस), दूध, तेल इनको मिलाकर जो बस्ति प्रयोग किया जाता है, उसे 'निरूहण बस्ति' कहते हैं। इनका प्रयोग बस्ति यन्त्र द्वारा किया जाता है, अतः इन्हें बस्ति कहते हैं ॥ १०-११ ॥

वक्तव्य– व्यवहार के लिये अथवा उसकी विशेषताओं को सूचित करने के लिये एक वस्तु के अनेक नाम रख दिये जाते हैं। तदनुसार निरूहण बस्ति के भी अनेक नाम निर्धारित किये गये हैं। यथा– दोषहर, संशमन, लेखन, शोधन, पिच्छिलबस्ति तथा आस्थापन बस्ति। दूसरी है– अनुवासबस्ति– विरेचन कराने के बाद जब रोगी बलवान् हो गया हो उसके खान-पान का क्रम ठीक हो, तभी उसे इसका प्रयोग करायें, एक बस्ति और है, जो स्त्री तथा पुरुषों के मूत्रमार्ग भी दी जाती है, उसे उत्तरबस्ति कहते हैं। इसे विस्तार से यथास्थान देखें।

फलवर्तिप्रयोग

घृताभ्यक्ते गुदे क्षिप्ता श्लक्ष्णा स्वाङ्गुष्ठसन्निभा ।
मलप्रवर्तिनी बर्तिः फलवर्त्तिश्च सा स्मृता ॥
सूत्रैर्विनिर्मिता स्निग्धा शोधनद्रव्यसंयुता ॥ १२ ॥

गुदद्वार पर अंगुली से घी या कोई स्नेह, चुपड़कर रोगी के अँगूठा के बराबर मोटी तथा चिकनी बत्ती का भीतर प्रवेश करा दें। इसे फलवर्ति या मलप्रवर्तिनी वर्ति कहते हैं। इस वर्ति का निर्माण धागों तथा शोधन (मलविरेक) द्वारा किया जाता है, यह स्पर्श में स्निग्ध होती हैं ॥ १२ ॥

वक्तव्य— इसका प्रयोग गुदमार्ग में मल को निकालने के लिये, पुरुष तथा स्त्री के मूत्र मार्ग में से मूत्र को निकालने एवं योनिमुख में से आर्तव को निकालने के लिये किया जाता है।

नस्यकर्म

नस्यं तत्कथ्यतेधीरैर्नासा ग्राह्यं यदौषधम् ।
नावनं नस्य कर्मेति तस्य नामद्वयं मतम् ॥ १३ ॥
नस्यभेदो द्विधा प्रोक्तो रेचनं स्नेहनं तथा ।
रेचनं कर्षणं प्रोक्तं स्नेहनं बृंहणं मतम् ॥ १४ ॥

नासा या नासिका के छिद्रों द्वारा जो औषधचूर्ण या द्रव भीतर की ओर को प्रवेश कराये जाते हैं, उसे नस्य (नासिका के लिये हितकर) कहते हैं। आयुर्वेदशास्त्र में इसके नस्य तथा नावन दो नाम हैं।

नस्य के भेद— इसके दो भेद हैं– १. रेचन और २. स्नेहन। रेचन नस्य के प्रयोग से दोष

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बाहर निकाले जाते हैं और स्नेहन नस्य नासिका के अवयवों को पुष्ट करने में सहायक होता है ॥१३-१४॥

वक्तव्य— रेचन तथा स्नेहन नस्यों के कारण भेद से अनेक भेद होते हैं।

धूमपान

धूमस्तु षड्विधः प्रोक्तः शमनो बृंहणस्तथा ।
रेचनः कासहा चैव वामनो व्रणधूपनः ॥ १५ ॥
शमनस्य तु पर्यायौ मध्यः प्रायौगिकस्तथा ।
बृंहणस्य तु पर्यायौ स्नेहनो मृदुरेव च ।
रेचनस्यापि पर्यायौ शोधनस्तीक्ष्ण एव च ॥ १६ ॥

सामान्य रूप से धूमपान छः प्रकार का होता है—१. शमन, २. बृंहण, ३. रेचन, ४. कासघ्न, ५. वामक, ६. व्रणधूपन। शमन धूमपान के दो भेद १. मध्य तथा २. प्रायोगिक। बृंहण धूमपान के दो भेद— १. स्नेहन एवं मृदु। रेचन धूमपान के दो भेद— १. शोधन और २. तीक्ष्ण।

गण्डूष प्रयोग

स्नेहक्षीरकषायादिद्रवैः सम्पूर्णमाननम् ।
आपूर्य स्थीयते तावद्विधिर्गण्डूषधारणे ॥ १७ ॥
कफपूर्णास्यता यावच्छेदो दोषस्य वा भवेत् ।
नेत्रघ्राणस्रुतिर्यावत्तावद्गण्डूषधारणम् ॥ १८ ॥

१. चार प्रकार के स्नेहों (घी, तेल, चर्बी, वसा) में से कोई स्नेह, दूध, मुखशोधक क्वाथों के रस से मुख को भरकर जब तक वह द्रव मुख के भीतर रोका जा सके तब तक उसे रोके रहना चाहिये, यह गण्डूष धारण की विधि है। २. जब तक कफ से मुख न भर जाय या जब तक बढ़े हुए दोष की शान्ति न हो जाय अथवा जब तक आँखों तथा नाक के छिद्रों से अश्रुओं तथा जल न चूने लगे तब तक गण्डूष धारण किये रहना चाहिये ॥ १७-१८ ॥

वक्तव्य— उक्त दो प्रकार की गण्डूष धारण विधियों में पहली विधि द्वारा गण्डूष के द्रव्यों का तथा उसकी मात्रा का निर्देश किया गया है और दूसरी विधि से काल एवं लक्षण निर्देश किया गया है। गण्डूष को ही कुल्ला या कुल्ली भी कहते हैं। यह द्रव (जलीय) द्रव्य प्रधान होता है।

कवल प्रयोग

वातपित्तकफघ्नस्य द्रव्यस्य कवलं मुखे ।
अर्धं निःक्षिप्य संचर्व्य निष्ठीवेत्कवले विधिः ॥ १९ ॥
कवलः कुरुते काङ्क्षां भक्ष्येषु हरते कफम् ।
तृष्णां शोषं च वैरस्यं दन्तचालं च नाशयेत् ॥ २० ॥

बढ़े हुए वात, पित्त, कफ दोषों का शमन करने के लिए उक्त दोषों के नाशक औषध द्रव्यों के कवल (कौर या ग्रास) को मुख में रखकर उसे आधा चबाकर उस रस को कुछ समय तक मुख के भीतर रोक कर बाद में थूक दें, यह कवल धारण विधि है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कवल धारण के लाभ— इससे भोजन के प्रति इच्छा बढ़ती है, यह मुख के कफ दोष को हटाता है, इसके अतिरिक्त तृष्णाविकार, मुख का बार-बार सूखना, मुख का फीकापन तथा दाँतों का असमय में हिलना इन रोगों को नष्ट करता है ॥ १९-२० ॥

वक्तव्य—अन्यत्र गण्डूष एवं कवल का विधान इस प्रकार वर्णित है—गण्डूष में प्रयुक्त होने वाला द्रव (जलीय पदार्थ) मुख में इतना भर लिया जाता है, जो मुख में हिलाया न जा सके। इसके विपरीत कवल में इतना द्रव डाला जाता है, जो सरलता से मुख के भीतर हिलाया जा सके। गण्डूष द्रव पदार्थों का होता है और कवल कल्क किये हुए पदार्थों का होता है। गण्डूष के द्रवों में यदि चूर्ण डालना हो तो एक कोल (आधा तोला) और कवल में कल्क एक तोला परिमाण में डाला जाता है।

प्रतिसारण प्रयोग

दन्तजिह्वामुखानां यच्चूर्णकल्कावलेहकैः ।
शनैर्घर्षणमङ्गुल्या तदुक्तं प्रतिसारणम् ॥ २१ ॥
वैरस्यं मुखदौर्गन्ध्यं मुखशोषं तथा तृषाम् ।
अरुचिं दन्तपीड़ां च निहन्ति प्रतिसारणम् ॥ २२ ॥
हीने जाड्यकफोत्क्लेशावरसज्ञानमेव च ।
अतियोगान्मुखे पाकः शोषस्तृष्णावमिः क्लमः ॥ २३ ॥

प्रतिसारण परिभाषा— दाँत, जीभ, मुख में चूर्ण (मंजन), कल्क (चटनी), अवलेह (चाटने योग्य पदार्थ) को अंगुली से धीरे-धीरे घिसने का नाम प्रतिसारण कर्म है।

प्रतिसारण के लाभ— इसके प्रयोग से मुख की विरसता (फीकापन), मुख से दुर्गन्धि का आना, मुख का बार-बार सूखना, प्यास लगना, भोजन के प्रति अरुचि तथा दाँतों (मसूड़ों) में होने वाली पीड़ा नष्ट हो जाती है। ये प्रतिसारण के सम्यग्योग के लक्षण हैं।

प्रतिसारण का हीनयोग— इससे मुख में जड़ता (अकर्मण्यता), कफ का बार-बार उभड़ना तथा रसों के समुचित ज्ञान का न होना ये लक्षण होते हैं।

प्रतिसारण का अतियोग— इसके अधिक प्रयोग करने से मुख के भीतर पक जाना, मुख का सूखना, प्यास का लगना, वमन होना तथा शरीरावयवों में सुस्ती ये लक्षण होते हैं ॥ २१-२३ ॥

वक्तव्य—गण्डूष चार प्रकार का होता है- १.स्नैहिक, २. शमन, ३. शोधन, ४. रोपण। परिचय- १. स्नैहिक गण्डूष- किसी भी स्नेह के प्रयोग से किया जाता है। २. शमनगण्डूष-वातज रोगों में मधुर तथा शीतल द्रव्यों का प्रसादन या शमन गण्डूष होता है। ३. शोधनगण्डूष- पित्तज विकारों में कटु, अम्ल, लवण तथा उष्ण द्रव्यों का शोधन गण्डूष प्रयुक्त होता है। ४. रोपणगण्डूष- कफज रोगों में कषाय, तिक्त, मधुर तथा गुनगुने द्रव्यों का रोपण गण्डूष होता है।

जिन औषध द्रव्यों के द्वारा गण्डूष की रचना का निर्देश दिया गया है, उन्हीं से वात आदि दोषों के अनुसार कवल तथा प्रतिसारण योग भी बनाये जाते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्वेदन प्रयोग

स्वेदश्चतुर्विधः प्रोक्तस्तापोष्मस्वेदसंज्ञितः ।
उपनाहो द्रवः स्वेदः सर्वे वातार्तिहारिणः ॥ २४ ॥
स्वेदौ तापोष्मजौ प्रायः श्लेष्मघ्नौ समुदीरितौ ।
उपनाहस्तु वातघ्नः पित्तसङ्गे द्रवो हितः ॥ २५ ॥

स्वेदन कर्म चार प्रकार के होते हैं– १. तापस्वेद, २. ऊष्मस्वेद, ३. उपनाहस्वेद, ४. द्रवस्वेद ये सभी स्वेदनकर्म वातदोषज पीड़ा को शान्त करने वाले होते हैं। प्रायः तापस्वेद तथा ऊष्मस्वेद कफनाशक कहे गये हैं। उपनाहस्वेद वातनाशक होता है तथा द्रवस्वेद पित्तज विकार में हितकर होता है ॥ २४-२५ ॥

वक्तव्य– चरक में १३ प्रकार के स्वेदनों का वर्णन इस प्रकार किया है– संकर, प्रस्तर, नाडी, परिषेक, अवगाहन, जेन्ताक, अश्मघन, कर्षू:, कुटी, भू, कुम्भिका, कूप, होलाक। च. सू. १४ ।३९-४० तथा सु. चि. ३२ में देखें।

लेपन प्रयोग

आलेपस्य तु नामानि लेपो लेपनलिप्तकौ ।
दोषघ्नो विषहा वर्ण्यः स च लेपस्त्रिधा मतः ॥ २६ ॥
त्रिप्रमाणश्चतुर्भागत्रिभागार्धाङ्गुलोन्नतः ।
आर्द्रो व्याधिहरः स स्याच्छुष्को दूषयतिच्छविम् ॥२७ ॥

लेप के पर्यायवाची शब्द– आलेप, लेप, लेपन, लिप्तक। यह लेप तीन प्रकार का होता है– १. दोषहा (वात आदि दोषों का नाशक), २. विषहा– विषविकारों का नाशक तथा ३. वर्ण्य– देह तथा मुख मंडल के वर्ण को निर्मल करने वाला। लेप के तीन प्रमाण– १. चतुर्भाग (१ अंगुल मोटा), २. त्रिभाग (पौन अंगुल मोटा), ३. अर्धांगुल (आधा अंगुल मोटा)। आर्द्र-शुष्क विचार– गीला लेप रोगनाशक होता है, मुख पर लगाया हुआ लेप सूखने पर छवि को विकृत कर देता है ॥ २६-२७ ॥

वक्तव्य– लेपों का विशेष वर्णन देखें-सु. सू. १७ तथा १८ अध्याय ।

रक्तस्रावणविधि

शोणितं स्रावयेज्जन्तोरामयं प्रसमीक्ष्य च ।
प्रस्थं प्रस्थार्धमथवा प्रस्थार्धार्धमथापि वा ॥ २८ ॥
शरत्काले स्वभावेन शोणितं स्रावयेन्नरः ।
त्वग्दोषग्रन्थिशोथाद्या नश्यन्ति रुधिरोद्भवाः ॥ २९ ॥
दोषेष्वेषु प्रक्षणैर्वा जलौकालावुकादिभिः ।
अथवापि शिरामोक्षैः कारयेद्रक्तपातनम् ॥ ३० ॥

रोगी के रोग का विचार कर तथा उसकी शारीरिक स्थिति को देखकर सिरावेध कर रक्त निकालना चाहिये। मात्रा निर्देश– १. प्रस्थ, आधा प्रस्थ अथवा चौथाई प्रस्थ रक्त निकालना

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चाहिये। शरद् ऋतु में स्वाभाविक रूप से रक्त निकालना चाहिये। इससे त्वचा विकार, गाँठें, सूजन आदि रक्त विकार स्वयं शान्त हो जाते हैं। वात आदि दोषों की स्थानीय विकृति होने पर उस स्थान पर उस्तुरा आदि से पच्छ लगा (छील) कर जौंक, लौकी, तुम्बी, सींग आदि को लगाकर रक्त को चूस लें अथवा सिरावेध करके रक्त को निकाल लेना चाहिये ॥ २८-३० ॥

नेत्रप्रसादनकर्म

सेक आश्च्योतनं पिण्डी बिडालस्तर्पणं तथा ।
पुटपाकोऽञ्जनं चैभिः कल्पैर्नेत्रप मुपाचरेत् ॥ ३१ ॥

नेत्रों के उपचार– १. सेक, २. आश्च्योतन, ३. पिण्डी, ४. बिडालक, ५. तर्पण, ६. पुटपाक, ७. अञ्जन। इन नेत्र चिकित्सा विधियों से नेत्र की चिकित्सा करें ॥ ३१ ॥

सेचनकर्म

सेकस्तु सूक्ष्मधाराभिः सर्वस्मिन्नयने हितः ।
मीलिताक्षस्य मर्त्यस्य प्रदेयश्चतुरङ्गुलः ॥ ३२ ॥

रोगी की दोनों आँखों को बन्द कराकर चार अंगुल ऊपर से नेत्र दोष नाशक औषधों के क्वाथ रस की पतली धारा सभी प्रकार की आँखों के ऊपर छोड़ने को सेक या सेचन कर्म कहते हैं। यह कर्म सभी प्रकार के नेत्र रोगों में हितकर होता है ॥३२ ॥

आश्च्योतनकर्म

क्काथक्षौद्रासवस्नेहबिन्दूनां यत्तु पातनम् ।
द्व्यङ्गुलोन्मीलिते नेत्रे प्रोक्तमाश्च्योतनं हि तत् ॥ ३३ ॥

खुली हुई आँखों में दो अंगुल ऊँचे से नेत्र दोष नाशक क्वाथ रस, मधु (शहद), औषध सिद्ध घीया तेल की बूंदों को टपकाने का नाम आश्च्योतन या आश्चोतन कर्म है ॥ ३३ ॥

पिण्डी प्रयोग

युक्तभेषजकल्कस्य पिण्डी कवलमात्रया ।
वस्त्रखण्डेन सम्बद्धा नेत्रेऽभिष्यन्दनाशिनी ॥ ३४ ॥

जिस प्रकार का नेत्र रोग हो तदनुकूल औषध द्रव्य को जल के साथ पीसकर गाढ़ा कल्क तैयार कर एक तोला की पिण्डी तैयार करें। रोगी की आँखों को बन्द कराकर उनके ऊपर इन पिण्डियों को रखकर वस्त्रखंड (पट्टी) से बाँध देने पर, इससे अभिष्यन्दरोग शान्त हो जाता है ॥३४ ॥

बिडालकलेप

बिडालको बहिर्लेपो नेत्रपक्ष्मविवर्जितः ॥ ३५ ॥

नेत्रों के बाहर पलकों को बचाकर जो लेप लगाया जाता है, उसे 'बिडालक' कहते हैं ॥३५ ॥

तर्पणप्रयोग

वातातपरजोहीने वेश्मन्युत्तानशायिनः ।
अभितो माषचूर्णेन क्लिन्नेन परिपिण्डितौ ॥ ३६ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

समौ दृढौ च सम्बोधौ कर्तव्यौ नेत्रकोशयोः ।
पूरयेद्घृतमण्डेन विलीनेन सुखोदकैः ॥ ३७ ॥
सर्पिषा शतधौतेन क्षीरजेन घृतेन वा ।
निमग्नान्यक्षि पक्ष्माणि यावत् स्युस्तावदेव हि ॥ ३८ ॥
पूरयेन्मीलिते नेत्रे तत उन्मीलयेच्छनैः ।
भिषग्भिरेष विख्यातस्तर्पणास्योदितो विधिः ॥ ३९ ॥

हवा, धूप तथा धूल से रहित घर या चिकित्सालय में रोगी को चित्त लिटा या सुलाकर उसके नेत्रों के चारों ओर साने हुए उड़द के आटा से बाढ़ या मेंढ सी बना दें । दोनों घेरे समान हों, दृढ़ हों, तर्पण द्रव्य को रोकने में समर्थ हों । तदनन्तर शुद्ध पिघले हुए घी के माँड से या गुनगुने जल से या शतधौत घी से या दूध से निकाले हुए घी से भर दें, उसके बाद धीरे-धरे आँखों की पलकों को खोलें तथा बन्द करें, ऐसा बार-बार करते रहें, चिकित्सकों द्वारा कही गयी यह उत्तम तर्पण की विधि है ॥ ३६-३९ ॥

वक्तव्य— श्रीभावमिश्र ने नेत्ररोगधिकार में कुछ पाठभेद के साथ उक्त विधि का वर्णन, इसके काल, मात्रा आदि का विस्तृत वर्णन किया है और यह भी निर्देश दिया है कि किन-किन परिस्थितियों में तर्पण का प्रयोग नहीं करना चाहिये, यह विषय द्रष्टव्य है ।

पुटपाक प्रयोग

द्वे बिल्वे स्निग्धमांसस्य परं द्रव्यपलं मतम् ।
द्रवस्य कुडवोन्मानं सर्वमेकत्र पेषयेत् ॥ ४० ॥
तदेकत्र समालोड्य पत्रैः सुपरिवेष्टितम् ।
पुटपाकविधानेन तत्पश्चात् तद्रसं बुधैः ॥ ४१ ॥
तर्पणोक्तेन विधिना यथावदवधारयेत् ।
दृष्टिमध्ये निषेच्यः स्यान्नित्यमुत्तानशायिनः ॥ ४२ ॥

पुटपाक विधि— घी से स्निग्ध मांस दो विल्व (८ तो.), परिमाण में अन्य द्रव्य १ पल (४ तो.), द्रव दव्य १. कुडव (१६तो.) इन सबको एकसाथ मिलाकर पीस कर गोला वनाकर पत्तों में लपेट कर उसमें कपड़मिट्टी लगाकर सुखाकर पुटपाक के विधान से पका लें । स्वांग शीतल होने पर धीरे से मिट्टी, पत्ते आदि हटाकर उसका रस किसी पात्र में निचोड़ कर डाल लें । फिर इस रस को युक्त तर्पणविधि से रोगी को चित्त लिटाकर उसकी आँखों में डालना चाहिये ॥४०-४२ ।

अंजन प्रयोग

अथ सम्पक्वदोषस्य प्राप्तमञ्जनमाचरेत् ।
अञ्जनं क्रियते येन तद्द्रव्यं चाञ्जनं मतम् ॥ ४३ ॥

नेत्र स्थित दोषों के पकजाने पर अंजन का प्रयोग करना चाहिये । जिस द्रव्य से आँखें आँजी जाती हैं, उसे अंजन कहते हैं ॥ ४३ ॥

इति पथ्यापथ्यविनिर्णयस्य द्वितीयं परिशिष्टं समाप्तम् ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तृतीय परिशिष्ट

दिनचर्या

दीर्घजीवन की प्राप्ति के लिये प्रत्येक स्वस्थ पुरुष को प्रातःकाल उठना चाहिये और अपने शरीर के सम्बन्ध में विचार करे, कि मैं स्वस्थ एवं सुखी कैसे रह सकता हूँ। उसके बाद सावधानी से मल-मूत्र का त्याग कर, मल मार्गों को साफ करके धो डालें। प्रतिदिन कुछ देर टहलें।

दन्तधावन

उसके बाद कसैले, कड़ुए, तीते रस वाले वृक्षों की पतली शाखा को तोड़कर दाँतों से या पत्थर से कूचकर कोमल कूची से इस प्रकार दातून करें, जिससे मसूड़े न हिलें। आजकल ब्रश, टूथपेस्ट इनका अधिक प्रचार है, यदि अनुकूल हों तो इनका सेवन करें, क्योंकि शहरों में उचित ढंग की दातूनें सुलभ नहीं हो पातीं। अतः दाँतों की सुरक्षा अवश्य करें।

दातूनों की श्रेष्ठता— जीर्ण रसवाले दातूनों में नीम, कसैली दातूनों में बबूल तथा मौलसिरी, मधुर दातूनों में महुआ और कड़ुवी दातूनों में ड़िठौरी (करंज) की दातून श्रेष्ठ होती है।

दातून का निषेध— अजीर्ण रोगी, जिसे उलटियाँ हो रही हों, श्वास, कास, ज्वर, तृष्णा, मुख पाक, हृदय, नेत्र, शिर तथा कर्णरोगी पुरुष को रोग क़ाल में दातून नहीं करनी चाहिये।

अञ्जन प्रयोग

प्रतिदिन लगाने के लिये कालासुरमा हितकर होता है। आँखों में कफदोष का संचय न हो, इस दृष्टि से पाँचवे, सातवें या आठवें दिन रात्रि के समय रसाञ्जन का घिसकर प्रयोग करें। इसके बाद वह व्यक्ति नस्य, गण्डूष, कवल, धूमपान का प्रयोग करने के बाद धूमपान का सेवन करे।

धूमपान

धूमपान छः प्रकार का कहा गया है—१.शमन, २.बृंहण, ३.रेचन, ४.क़ासहा, ५.वमन (वमन कराने वाला), ६. व्रणधूपन (घावों में धुआँ लगाना)। इनमें शमन धूम के दो नाम हैं— १. मध्यम और २. प्रायोगिक। बृंहण धूम के दो नाम— १. स्नैहिक और २. मृदु। रेचन धूम के भी दो नाम हैं— १. शोधन और २. तीक्ष्ण।

धूमपान के अयोग्य व्यक्ति— श्रान्त, भीत, दुःखी, दत्तबस्ति, विरिक्त, रात में जागा हुआ, पिपासित, दाहपीड़ित, तालुशोषी, उदररोगी, शिरोरोगी, तिमिररोगी, वमनरोगी, आध्मानपीड़ित, उरःक्षत, प्रमेह रोगी, पाण्डुरोगी, गर्भिणी, रूक्ष, क्षीण, जिसने दूध, मधु, घी, आसव में से कुछ भी पिया हो, जिसने रोटी-भात खाया हो, दही मछली का भोजन किया हो, बालक, वृद्ध, कृश ये धूमपान न करें। विशेष—इन्हें बीड़ी, सिगरेट, हुक्का आदि भी न पीने दें।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ताम्बूल सेवन का समय

स्त्री सहवास काल में, प्रातः सोकर उठने पर, स्नान करने के बाद, भोजन के बाद, वमन कर लेने के बाद, युद्ध में जाते समय, विद्वानों की सभा में तथा राजा की सभा में पान का सेवन करें।

राजनिघण्टु में ताम्बूल वर्णन

१.नागवल्ली, २ श्रीवाटी. ३.अम्लवाटी. ४.सतसा, ५. सप्तसिरा, ६. अम्लसरा, ७. पटुलिका, ८ ह्लेसणीया, पान की इतनी जातियों का वर्णन किया गया है। इसके बाद कृष्ण-पत्र तथा सफेद पत्र भेद से आगे चलकर दो भेद और किये हैं, इन्हें भी देखें, साथही चूना, कत्था, सुपारी के साथ पान सेवन का भी उल्लेख किया गया हैं। देखें– रा.नि. आम्रादिवर्ग। भावप्रकाश में बंगदेशीय ताम्बूल के गुणों का वर्णन मिलता है– यह पाचन, पित्तकारक, उष्ण तथा कफनाशक कहकर सामान्य ताम्बूल के गुणों का वर्णन किया गया है।

ताम्बूल सेवन निषेध

निम्नलिखित व्यक्तियों को पान का सेवन नहीं करना चाहिये—क्षत (व्रणरोगी), रक्तपित्त, रूक्षता से युक्त, अभिष्यन्द आदि नेत्र रोगी, विष, मूर्च्छा, मद तथा शोथ रोग से पीड़ित। इसके साथ सुर्ती आदि जहरीली तथा नशीली वस्तुओं का भी सेवन न करें।

उबटन प्रयोग

प्रतिदिन में शरीर में सरसों के तेल की मालिश करनी चाहिये। इससे अकालपलित (असमय में बालों का सफेद होना), शरीर की थकावट तथा वातविकार शान्त हो जाते हैं। सिर तथा पैरों पर तेल की मालिश अवश्य करें। कान के छिद्रों में तेल अवश्य डाला करें। पैरों में उबटन कराने से निद्राभंग विकार शान्त हो जाता है।

उबटन का निषेध— कफविकार द्वारा पीड़ित पुरुष, वमन-विरेचन कराया हुआ तथा अजीर्ण रोगी को उबटन नहीं कराना चाहिये।

व्यायाम

आजकल व्यायामकर्म प्राकृत चिकित्सा का एक अंग हो गया है। इसका सूत्र है– 'प्राक्श्रमाच्च विवर्जयेत्', अर्थात् थकावट आने या प्रतीत होने के पहले इसे छोड़ दें। सभी प्रकार के परिश्रम व्यायाम की परिधि में आते हैं। व्यायाम की परिभाषा बतलाते हुए च.सू.७/३१ में लिखा है कि शरीर की वह क्रिया जिससे शरीर शक्ति सम्पन्न तथा सुदृढ़ होता है, उसे शरीर व्यायाम कहते हैं। इसे मात्रा के अनुसार करना चाहिये। इसी प्रकार का एक बौद्धिक व्यायाम भी है।

व्यायाम का निषेध— वातज, पित्तज रोगों से युक्त पुरुष, बालक, वृद्ध तथा अजीर्ण रोग से पीड़ित व्यक्ति व्यायाम न करे।

स्नान कर्म

उबटन करने के बाद ही स्नान करना चाहये। यह स्नान शीतकाल में गुनगुने जल से करें किन्तु उष्ण जल से सिर को न धोयें। उष्ण जल से सिर धोने से आँखों, तथा बालों की शक्ति क्षीण हो जाती है क्यों कि आँखे तेजमय होती हैं, अतः इनकी रक्षा करें।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्नान कर्म का निषेध—अर्दित (मुख मण्डल का लकवा) आँखों कानों, मुख रोगियों, अतिसार, अफरा, पीनस, अजीर्ण रोगियों को स्नान नहीं करना चाहिये तथा भोजन करने के तत्काल बाद भी स्नान न करें।

प्रसाधन कर्म

रोम या लोम, नाखून, दाढ़ी, मूछों को कटवाते रहें, पैरों, मल-मूत्र के मार्गों को साफ रखें, प्रतिदिन स्नान करें, सुगन्धित उपकरणों का उपयोग करें, स्वच्छ वस्त्रों को धारण करें और सौम्य वेश धारण करें।

रात्रियात्रा निषेध

रात्रि के समय यात्रा न करें, यदि आवश्यक हो तो हाथ में डंडा या लाठी लें, सिर पर पगड़ी, टोपी या अंगोछा रखकर किसी सहायक के साथ जायें।

हितकर निर्देश

भोजन पचजाने तथा भूख लगने पर हितकर भोजन को प्रमाण के अनुसार खायें, मल-मूत्र आदि के वेग को न उभाड़े। यदि इनके वेग उभड़ गये हों तो पहले इनसे निपटकर तब दूसरा कार्य करें, साध्य रोग की चिकित्सा हो रही हो तो उसे पूरा करके ही तब दूसरा कार्य करें, सभी पापकर्मों को शरीर, वाणी, मन से छोड़ दें।

सर्वत्र आत्मभाव रखें

समय पर हितकारक तथा परिमित भाषण करें, जिससे उसका आशय स्पष्ट हो जाय तथा भाषा सरल एवं स्पष्ट हो। सभी प्राणियों को अपने समान देखें, भले ही वह कीड़े-मकोड़े तथा चींटी ही क्यों न हों। और जो व्यवहार अपने को अच्छा लगता हो, वैसा ही व्यवहार दूसरों के साथ भी करें।

ऋतुचर्या का वर्णन मूलग्रन्थ में श्लोक ५३७ से ५६१ तक विस्तार से किया है।

ऋतुसन्धि विचार

बीतने वाली ऋतु के अन्तिम सप्ताह और आनेवाली ऋतु का प्रथम सप्ताह का काल ऋतुसन्धि काल कहा जाता है। इस काल में पहली ऋतु को चर्या को क्रमशः छोड़कर अगली ऋतु की चर्या धीरे-धीरे प्रारम्भ कर देनी चाहिये।

चिकित्सा के चार पाद

१. **चिकित्सक के लक्षण**— चिकित्साशास्त्र में जिसकी निर्मल बुद्धि और कर्माभ्यास में जो पीयूषपाणि हो, जिसने उन-उन रोगों की अनेक बार चिकित्सा की हो और उनमें सफलता प्राप्त की हो, अपने कार्य में कुशल हो तथा साफ सुथरा हो ये उत्तम चिकित्सक के लक्षण कहे गये हैं।

२. **औषध द्रव्य के लक्षण**— विशेषकर काष्ठौषधियाँ सालभर के भीतर की हों, सड़ी, गली, कीड़ों द्वारा खायी गयी न हों, घुनी न हों और उनका समय पर तोड़ कर या उखाड़ कर संग्रह किया गया हो।

३. **परिचारक के लक्षण**— इसी को उपस्थाता (प्रतिक्षण रोगी की देख रेख में रहने वाला)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

या कल्पक कहते हैं। इसका पहला गुण है– रोगी के साथ आत्मीयता का भाव, दूसरा गुण है– चिकित्सक द्वारा निर्दिष्ट औषध तथा पथ्य की समुचित व्यवस्था करना, तीसरा गुण है– रोगी को समय-समय पर औषधि तथा पथ्य आदि देते रहना और उसे सान्त्वना देते रहना।

४. रोगी के लक्षण— रोगी का प्रथम गुण है— वह वैद्य पर श्रद्धा एवं विश्वास करता हो और आज्ञाकारी हो, दूसरा गुण है— औषध सेवन में तत्पर हो, स्वाद-अस्वाद जैसा भी पथ्य दिया जाय उसका सेवन करे, स्वयं भी किसी प्रकार कोई अपथ्य न करे।

वातादि में पथ्य

कफं दुर्जनवत्तीक्ष्णं वातं स्नेहममित्रवत्।
पित्तं जामातरमिव मधुरैः शीतलैर्जयेत्॥

कफ दोष की चिकित्सा दुर्जन की भाँति तीक्ष्ण (सोंठ, मरिच, पीपल आदि) द्रव्यों से करें, वातजविकारों की मित्र की भाँति स्नेहन चिकित्सा करें। पित्तज विकारों की चिकित्सा जामाता की भाँति मधुर एवं शीतल पदार्थों से करें। सुभाषितअष्टांगहृदय।

शुक्तपरिचय

कन्द, मूल, फल, आदि को नमक तथा तेल मिलाकर किसी पात्र में रख दें, जब इसमें खट्टापन आ जाय तब इसे शुक्त या काँजी कहते हैं॥

सीधुपरिचय

ईख के रस को पकाकर पात्र में रखकर जो मद्य की भाँति सन्धान किया जाता है, उसे पक्वरस सीधु कहते हैं। इसी का एक भेद और है- अपक्व रसों से निर्मित को शीतरस सीधु कहते हैं, इसी को 'सिरका' भी कहते हैं।

सुरा परिचय

पके हुए चावल, जौ आदि अन्नों के सन्धान से बनी हुई मद्य को 'सुरा' कहते हैं।

सुरा के भेद— १. सुरामण्ड में (शत प्रतिशत मद्यांश रहता है) इसे **प्रसन्ना** (स्प्रिट) कहते हैं। २. कादम्बरी प्रसन्ना की अपेक्षा घनी जलीयांश युक्त होती है। ३. इसकी अपेक्षा निम्न श्रेणी के मद्य को **जगल** कहते हैं। ४. इससे भी गाढ़े मद्य को **मेदक** कहते हैं। ५. जिसमें थोड़ी मद्य की गन्ध रहती है, उसे **सुराबीज** तथा **किण्वक** कहते हैं।

वारुणी का लक्षण

जो मद्य ताड़ एवं खजूर के रस का सन्धान करके तैयार किया जाता है। उसे 'वारुणी कहा जाता है। वास्तव में ताड़ी को ही वारुणी कहा जाता है। सूर्योदय के पहले उतार कर पीने पर इसका स्वाद मीठा होता है, चार-पाँच पहर के बाद यह रस खट्टा हो जाता है।

आसव-अरिष्ट भेद

जल आदि द्रव पदार्थ में गुड़, धाय के फूल आदि द्रव्यों को चिरकाल (सन्धानकाल) तक रहने देने से जो संधित द्रव तैयार होता है, उसे आसव, अरिष्ट आदि नाम से कहा जाता है। ये उन औषधों के कार्यों को शीघ्र कर दिखाते हैं, अतएव इसे 'आसव' कहते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दोनो में भेद— कच्ची औषधियों को मात्रानुसार जल में डालकर सन्धान द्वारा जो द्रव तैयार किया जाता है, उसे आसव कहा जाता हैं। जल में औषधों का क्वाथ करकें जो मद्य तैयार किया जाता है, उसे अरिष्ट कहते हैं, इन दोनों की ही मात्रा ४ तोला मात्र है।

आसव, अरिष्ट निर्माण की यह परिभाषा चरक, सुश्रुत सम्मत नही है। देखें—च.चि.२४ आसव से अरिष्ट को उत्तम मानने में कारण निर्देश करते हुए सुश्रुत ने कहा है—'अरिष्टो द्रव्य-संयोगसंस्कारादधिको गुणैः'। सु.सू. २३/१९४।

तर्पण

धान के लावा (खील) का सत्तू जल में या ईख के रस में घोलने पर 'तर्पण' कहा जाता है। यह तृप्ति कारक होता है तथा मल को बाँधता है।

आश्च्योतनविधि

सभी प्रकार के नेत्र रोगों में सबसे पहले आश्च्योतन कराना चाहिये। इसके प्रयोग से आखों में होने वाली गढ़न, चुभन, खुजली, बार-बार आँसू निकलना, जलन तथा लालिमा नष्ट हो जाती है। वातज तथा कफज दोषों में आश्च्योतन द्रव को गुनगुना करके डालें शेष अवसरों पर शीतल ही डालना चाहये।

नेत्रतर्पण

वमन-विरेचन द्वारा शरीर की तथा शिरोविरेचन द्वारा शिरप्रदेश की शुद्धि हो जाने के बाद जहाँ सीधा हवा का प्रवेश नहो ऐसे स्थान पर नेत्ररोगी को, लिटाकर प्रातः एवं सायं काल नेत्र तर्पण का प्रयोग करें।

पुटपाक प्रयोग

पुटपाक द्वारा औषध रस का प्रयोग भी उन्हीं नेत्र रोगों में करना चाहिये, जिनमेंतर्पण प्रयोग विहित है। वातज्ञ नेत्र रोगों में स्नेहन पुटपाकरस, कफज नेत्ररोगों में लेखन रस, दृष्टि की कमजोरी में, वातज, पित्तज तथा रक्तज नेत्र रोगों में तथा स्वस्थ नेत्रों में प्रसादन पुटपाकरस का प्रयोग करना चाहिये।

पुटपाकविधि

पुटपाक करने के लिये मांस तथा औषधियों के कल्कों को अलग अलग बिल्व मात्र (४-४तोला) लेकर पीसकर कल्क (चटनी, जैसा) बनालें, स्नेहन के लिये इस द्रव्य पिण्ड को एरंड के पत्तों से लपेटें, लेखन कर्म के लिये बरगद के पत्तों से लपेटें तथा प्रसादन कर्म के लिये कमल के पत्तों से लपेट कर धागा से बाँध दें। इसके ऊपर चिकनी मिट्टी का लेप लगाकर सुखालें, सूख जाने पर इसे धाय के, धामन के अथवा सूखे गोबर के कंडों की आंग में पकायें, जब पुट पाक का वर्ण जलते हुए अंगारों के सदृश लाल हो जाय, तब रसे आग में से निकाल कर शीतल हो जाने दें। शीतल हो जाने पर उसमें मिट्टी को उतार कर शेष द्रव्य का रस निचोड़ लें। इन रसों का ऊपर निर्दिष्ट विधि से यथायोग्य प्रयोग करें।

रसधारण काल— लेखन पुटपाक के रस को १०० मात्रा तक, स्नेहन पुटपाक क्रे रस को २०० मात्रा तक तथा प्रसादन पुटपाक के रस को ३०० मात्रा काल तक रोगी धारण करे। यह मात्रा काल उतनी चुटकी बजाने के काल के बराबर होता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सिरावेध परिचय

यह कर्म रक्तसार पुरुषों में ही वमन, विरेचन की भाँति किया जाता है, सिरावेध एक प्रयोगात्मक कर्म है। आचार्य की देखरेख में अनेक बार भली भाँति इसका अभ्यास कर के तभी स्वतन्त्र रूप से प्रयोग करना चाहिये। यह सिरावेध आवश्यकतानुसार सिर, हाथों, पैरों आदि स्थान की सिरा को दबाकर जब वह ऊपर को उठजाय तब कुठारिका शस्त्र से करें। इसमें रक्त निर्हरण की मात्रा-बलवान् युवा पुरुष जो अनेक दोषों से घिरा हो उसका यदि सिरावेध करके रक्त निकालना हो तो उसका सबसे अधिक प्रमाण १ प्रसृत (८तो०) है।

उष्णोदक विधि

प्रायः ज्वर आदि रोगों में पथ्य के रूप में पकाया हुआ जल पीने को दिया जाता है। अतः यहाँ उसे पकाने की विधि लिखी जा रही है, जल को पकाते पकाते आठवां अंश, चतुर्थांश या आधा भाग शेष रहने पर जो जल बचता है, उसे उष्णोदक कहते हैं। कभी-कभी यह आठकटोरी का जल ही दोषपाचन कराकर रोगी को रोगमुक्त कर देता है।

उष्णोदक के गुण— यदि उक्त उष्णोदक रात में सोते समय पिलाया जाय तो कफदोष, आमवात, मेदोदोष को नष्ट करता है तथा बस्ति, मूत्राशय को शुद्ध करता है, जठराग्नि को प्रदीप्त करता है, खाँसी, श्वास तथा ज्वर रोगों को नष्ट करता है।

मण्ड निर्माण विधि

जिस द्रव्य (चावल आदि) का मांड़ बनाना हो उससे चौदह गुना अधिक जल में बनाया जाय तथा सिक्थ (सीठी) से रहित द्रव पदार्थ को माँड कहते हैं, इसमें सोंठ का चूर्ण तथा सेंधानमक डाल कर पीना चाहिये, तब यह दीपन (अग्निवर्धक) एवं पाचन होता है, इसके अनेक भेद हैं। यथाअष्टगुणमण्ड, यवमण्ड, लाजमण्ड।

भक्तनिर्माण विधि

१६ तोला चावलों को चौदह गुने जल में भली भाँति पकायें, पक जाने पर माँड़ को छानकर निकाल दें। इस माँड़ निकले हुए चावलों का भक्त (भात) कहते हैं। यह भात मधुर एवं सुपाच्य होता है। उक्त माड़ को फेंकना नही चाहिये, इसमें घी तथा हलका नमक मिलाकर पी लेना चाहियें यह माँड़ श्वेतप्रदर की महौषधि है।

यवागू निर्माण विधि

चार पल (१६तो.) औषध द्रव्य को ६४पल (३सेर १६तो.) जल में पकायें, इसका आधा जल जब पकते-पकते शेष रह जाय तब उस क्वाथ जल में गाढ़ी (खिचड़ी जैसी पतली) यवागू तैयार करें। विस्तार से— आहार द्रव्य (चावल आदि) की अपेक्षा छः गुना जल में 'यवागू' बनायी जाती है, इससे कुछ गाढ़ी चौगुने या पचगुने जल में बनायी हुई 'कृशरा' या 'पतली खिचड़ी' कही जाती है। चावल तथा मूंग अथवा उड़द की दाल तथा तिलों को मिलाकर बनायी गयी 'यवागू' हितकर होती है, यह मल को बाँधती है, शक्ति को बढ़ाती है, तृप्त करती है तथा वातविकार को नष्ट करती है, उक्त सभी भेद यवागुओं के हैं। चावल, दाल, तिल आदि का परिमाण ऊपर दिया है, इनमें जो जल डाला जाय वह सम्बन्धित रोगहर औषधियों के साथ पकाया गया होना चाहिये।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विलेपी निर्माण विधि

आहार द्रव्यों से चौगुने पानी में तैयार की गयी गाढ़ी सीठी युक्त विलेपी (लपसी) कही जाती है। यह तृप्ति कारक होती है। रस आदि धातुओं की बढ़ाने वाली, हृदय को शक्ति देने वाली, मधुर तथा पित्तदोष को नष्ट करती है।

पेया विधि

आहार द्रव्य (चावल आदि) से चौदह गुना जल द्वारा पकायी गयी बहुत पतली थोड़ी मात्रा में सीठी युक्त पेय को 'पेया' कहते हैं, ये उत्तरोत्तर हलके होते हैं।

यूषविधि

कल्क किया (चटनी की भाँति पीसा गया) हुआ द्रव्य (मूंग, कूलथी आदि) एक पल (४तो.) सोंठ, पिप्पली प्रत्येक आधा तोला, एक प्रस्थ जल में पकायें। इसे 'द्रवयूष' कहते हैं, पाकविधान के अनुसार यूष दो प्रकार का होता है—१. कृत (संस्कृत-छौंका गया तथा मसालों से युक्त) और २. अकृत (असंस्कृत उक्त के विपरीत अर्थात् सादा), साधारण बोलचाल में यूष को दाल का पलता पानी कहा जा सकता है।

खडयूष विधि

मठा में कैथ का गूदा, अमलोनियाँ, कालीमिर्च, जीरा, चीता के जड़ की छाल, साबूत मूंग डालकर 'खडयूष' तैयार करें। इसमें उक्त तीक्ष्ण द्रव्यों को ६-६ माशा लें और साधारण द्रव्यों को १-१ पल (४-४ तो.) लें। इनको १ प्रस्थ मठा में पकाकर छान लें, यह 'खडयूष' तैयार है।

काम्बलिक विधि

दही, नमक, स्नेह (तेल), तिल एवं उड़द की पीठी मिलाकर जो तैयार किया जाता है, उसे 'काम्बलिकयूष' कहते हैं। यह भी एक यूष भेद ही हैं। इसीलिये कहा गया है— 'कल्पना-विधिभिस्तैस्तैः प्रियत्वं गमयेत् सुधीः', अर्थात् उसी पथ्य द्रव्य को कभी किसी विधि से और कभी किसी विधि से बनाकर रोगी को दें, जिससे रोगी रुचि के साथ उसे खाले।

त्रिविध देश लक्षण

आनूपदेश—जिस देश में जल अधिक बरसता हो, झील, सरोवर नदी, नाले, कुआँ आदि अधिक हों नग (पहाड़ तथा पेड़ पौधे) अधिक हों, कफ तथा वात दोष के कारण होने वाले रोग जहाँ अधिक होते हों, वह 'आनूपदेश' है।

जांगलदेश— जिस देश में अनूपदेश की तुलना में जल, वृक्ष, पहाड़ आदि कम हों, पित्त, रक्त तथा वात दोष सम्बन्धी रोग अधिक मात्रा में होते हों, वह जांगलदेश या धन्व (मरु) भूमि है।

साधारण देश— उक्त आनूप, जाँगल या धन्वभूमि देशों के लक्षण जिस देश में दिखलायी दें, वह साधरण देश है।

इन देशों का विचार औषध संग्रह काल में, रोग निर्णय काल में और रोग के साध्य-असाध्य विचार में किया जाता है। इस दृष्टि से समस्त भूमण्डल इन देशों की परिधि में आ जाता है। इन देशों का विवरण देखें— च.वि. ३/४७-४८; च.क्र.१/८, अत्रिसंहिता तथा राजनिघण्टु-आनूपादि वर्ग प्रथम।

--------------*

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

- एलोपैथिक डायग्नोसिस एण्ड ट्रीटमेण्ट । डॉ॰ जहानसिंह चौहान
- अष्टाङ्गहृदयम् । हिन्दी व्याख्या विशेष वक्तव्यादि संवलित । डॉ॰ ब्रह्मानन्द त्रिपाठी
- माधवनिदानम् । 'मधुकोश' व्याख्या संवलित । 'माधवविमर्शिनी' हिन्दी व्याख्या सहित। डॉ॰ अनन्तराम शर्मा । (1-2 भाग)
- द्रव्यगुण विज्ञान । डॉ॰ मानसी देशपाण्डे । (1-2 भाग)
- चरकसंहिता । 'चरक-चन्द्रिका' हिन्दीव्याख्या, विशेषवक्तव्यादि संवलित । डॉ॰ ब्रह्मानन्द त्रिपाठी (1-2 भाग)
- चरकसंहिता । 'वैद्यमनोरमा' हिन्दीव्याख्या विशेषवक्तव्यादि संवलित । आचार्य विद्याधर शुक्ल एवं डॉ॰ रविदत्त त्रिपाठी । (1-2 भाग)
- सुश्रुतसंहिता । 'सुश्रुतविमर्शिनी' हिन्दीव्याख्या, विशेषवक्तव्यादि संवलित । डॉ॰ अनन्तराम शर्मा । (1-3 भाग)
- शार्ङ्गधरसंहिता । हिन्दी टीका सहित । डॉ॰ ब्रह्मानन्द त्रिपाठी
- शार्ङ्गधरसंहिता । हिन्दी टीका सहित । पं॰ दुर्गादत्तशास्त्री
- अनङ्गरङ्ग । कल्याणमल्ल । हिन्दी टीका सहित । (सचित्र) डॉ॰ रामसागर त्रिपाठी
- आयुर्वेदीय रोगी-रोग परीक्षा पद्धति । डॉ॰ गोविन्द प्रसाद उपाध्याय
- आयुर्वेदीय-पंचकर्म-चिकित्सा । प्रधान सम्पादक- डॉ॰ मुकुन्दीलाल द्विवेदी
- आयुर्वेदीय मानस रोग चिकित्सा । गोविन्द प्रसाद उपाध्याय
- आसवारिष्टसंग्रह । कविराज देवसिंहजी विट्ठल
- तमिलों का सिद्ध चिकित्सा सम्प्रदाय । डॉ॰ रामनिवास शर्मा
- (सरस) दोषधातुमल-विज्ञान । डॉ॰ बसन्तकुमार श्रीमाल
- योग एवं यौगिक चिकित्सा । (सचित्र) प्रो॰ रामहर्ष सिंह
- रसमञ्जरी । वैद्यनाथतनयशालिनाथ कृत हिन्दी टीका सहित । पं॰ नारायणप्रसाद मुकुन्दराम
- रसेन्द्रसारसंग्रह । हिन्दी टीका सहित । टीकाकार-पं॰ रामतेज पाण्डेय
- वैद्यचिन्तामणि (बल्लभाचार्य) । हिन्दी टीका सहित । डॉ॰ रामनिवास शर्मा
- शङ्करनिघण्टु । हिन्दी । राजवैद्य पं॰ शङ्करदत्त गौड़
- सामान्य रोग की सरल चिकित्सा । डॉ॰ रामनिवास शर्मा

चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान
दिल्ली

RGD New Delhi

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi